## ऐतिहासिक गौरव ग्रन्थमाला के
## अभिभावक

श्रीमान् १०८ श्री० चौलुक्य चूडामणि द्विज हार्डनेम महारावल महाराना
श्री इन्द्रसिंह जी प्रतापसिंह जी बहादुर, वासना नरेश ।
[ जिन्होंने सर्व प्रथम चौलुक्य जाति के ऐतिहासिक गौरव के उद्धार में हाथ बटाया है

Plate No I A

श्रीमान युवराज श्री गिरीन्द्र सिंहजी ( लालजी साहब ) बहादुर ग्रास।

# श्री चौलुक्य चन्द्रिका

## लाट नवसारिका-नन्दिपुर-वासुदेवपुर खंड

विक्रम ७०० से १४४९ पर्यन्त

## मूल शासन पत्रों और शिला प्रशस्तियों
का
## संग्रह और विवेचन

---


संग्रहिता अनुवादक और विवेचक

**श्री० विद्यानन्द स्वामी श्रीवास्तव्य**

भूतपूर्व सदस्य विहार व्यवस्थापिका सभा, अवसर प्राप्त रिसर्च स्कालर जसवन्त स्टेट,
पत्र श्री भगवान चित्रगुप्त, काश्मीर में कायस्थ जाति, वलभी मैत्रका की
जातीयता, आइकनों ग्रैफीकल ग्यर्स रेक्टीफाइड—परमार
चन्द्रिका, वेद, रामायण और महाभारत कालीन भारत
तथा अन्यान्य ऐतिहासिक ग्रंथों के लेखक।



पौष पूर्णिमा, विक्रम १९९३

प्रथम बार १०००

चौलुक्यों की राजकीय वाराह मुद्रा।
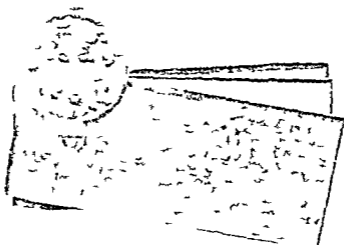


चौलुक्यों के ताम्र शासन का स्वरूप।

बादामी-गुफा - वर्ती चौलुक्या के कुलदेव भगवान वाराह की मूर्ति।

बादामी—गुफा ३ वर्ती चौलुक्यों के कुलदेव भगवान वाराह की मूर्ति।

हिन्दुस्तानी प्रिंटिंग प्रेस
२६४ गोविन्दवाडी, कालवादेवी रोड, बम्बई २
में
शारदाकुमार श्रीवास्तव्य
द्वारा
मुद्रित

प्रकाशक
ऐतिहासिक गौरव ग्रन्थमाला
पोदार ब्लोक
सान्ताक्रुज
( बी बी एण्ड सी आय रेलवे )

श्रीमान महाराज देवेन्द्र सिंहजी बहादुर नालागढ़ (अलवर) कुलभूषण।

श्रीमान्

१०८ श्री

बुन्देल वंश विभूषण

श्री सवाई देवेन्द्र विजयसिंहजू देव

नातीराजा साहब बहादुर अजयगढ़

बुन्देलखण्ड

के

कर कमलों में:-

यह ग्रन्थ

सादर

समर्पित

विनयावनत-

बी एस श्रीवास्तव्य।

श्रीयुत सी एम श्रीवास्तव्य।
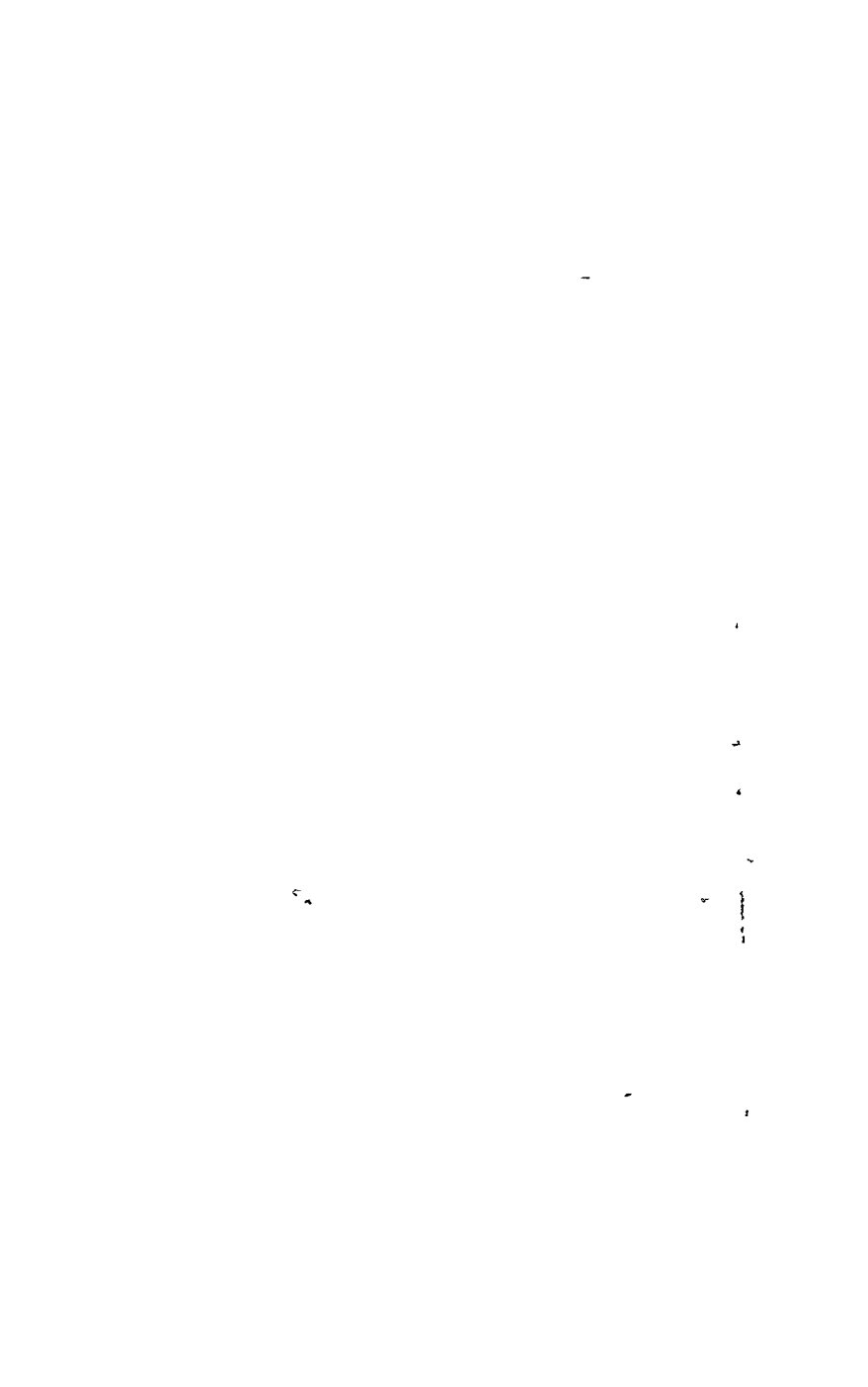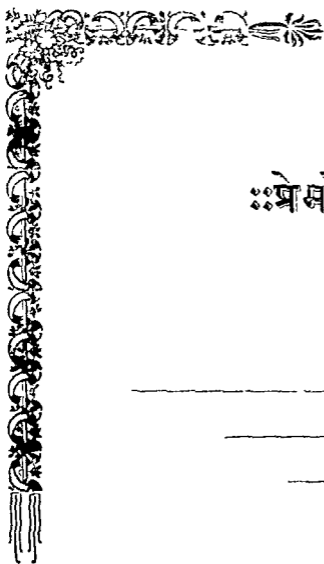
# ::प्रेमोपहार::

# प्राक्कथन।

किसी भी जाति और देशके पुरावृत्त का विवेचन करने के पूर्व यह परम आवश्यक है कि उस जाति के वंश—वंशसंस्थापक और अभ्युदय आदि तथा उसके पूर्वजो की जन्मभूमि और वर्तमान देशके साथ संबंध प्रभृति एवं उस देशके नाम करण और उस देशके पुराकालीन राजाओं तथा उसके मानचित्र और सीमा प्रभृतिका सांगोपांग विचार कर लिया जाय। अत एव दक्षिण गुजरात अर्थात् लाट प्रदेशके चोलुक्यों के पुरावृत विवेचन म प्रवेश करनेके पूर्व हम दक्षिण गुजरात, अर्थात लाट प्रदेश के नाम करण और पूर्ववर्ती राजवंशादि का प्रथम विचार करते है।

## गुर्जर और लाट।

भारतीय पुराण-रामायण तथा महाभारत आदि किसीभी एतिहासिक ग्रंथमें गुजरात और लाट प्रदेशका नाम नहीं पाया जाता। प्रत्युत जिस भूभागको सम्प्रति गुजरात (दक्षिण और उत्तर) लाट कहते है उसको आनर्त ओर परान्त नामसे अभिहित पाते है। महाभारतकालीन आनर्त और परान्त प्रदेशको भिन्न करनेवाली नर्मदा थी और अपरान्तको विलग करनेवाली कावेरी थी। इससे प्रकट होता है कि सम्प्रति जिस भूभागको दक्षिण गुजरात या लाट कहते है। वह उस समय परान्त नामसे अभिहित था।

महाभारतके पश्चात मौर्य साम्राज्यकी स्थापना के कुछ पूर्व अर्थात यूनानी वीर अलिक्सुन्दर के आक्रमण कालसे भारतीय इतिहासकी ज्ञात अवधिका प्रारंभ होता है। यदि कहा जाय कि ज्ञात एतिहासिक कालके प्रारंभमें मौर्यवंशका साम्राज्यमूर्य वास्तवमें भारत चक्रवर्तीत्व सौभाग्यको प्राप्त था तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि इसके अधिकारमें पौराणिक भरतखण्डकी और

से छोर पर्यन्त था। और मौर्यवंशका परम प्रख्यात राजा अशोक था। अशोक के आज तक १४ शासन पत्र भारतके प्रायः प्रत्येक प्रान्तोंसे पाये गये हैं। वर्तमान गुजरात प्रदेशकी पश्चिम सीमापर अवस्थित प्राचीन सौराष्ट्रके गिरनार नामक पर्वतकी उपत्यका से भी अशोक का शिला शासन प्राप्त हुआ है। परन्तु उसमेंभी अथवा उसके किसी अन्य लेखमें गुजरात और लाटका नामोल्लेख नहीं पाया जाता। मौर्योके पश्चात् सौराष्ट्र और अवन्ती आदि प्रदेशोंमें क्षत्रपोंका सौभाग्योदय हुआ था जहां उनके राज्यकालीन अनेक लेख पाये जाते हैं। परन्तु उनमेंभी गुजरात और लाटका दर्शन नही होता। क्षत्रपोंमें अनेक प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। इनमें रुद्रदामका एक लेख गिरनार पर्वतकी उपत्यका अवस्थित अशोकके शिलाशासन के निम्न भागमें उत्कीर्ण है। इस लेखके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि इसके आधीन अकरावती-अनुप-आनर्त-सुराष्ट्र-स्वभ्र मरु-कच्छ-सिन्धुसुवीर-कुकुर-अपरान्त और निषाद देश था। कथित देशोंमें अकरावती पूर्व और पश्चिम मालवा, अनुप आनर्त और अवन्तीका मध्यवर्ती भूभाग, आनर्त उत्तर गुजरात प्रदेश, सुराष्ट्र वर्तमान काठिआवाड, स्वभ्र-सावरमती नदी उपत्यका प्रदेश, कच्छ और मरु वर्तमान कच्छ और मारवाड़ देश, सिन्धुसुवीर वर्तमान सिन्ध प्रदेश परन्तु कुकुर और निषादका परिचय निश्चित रूपसे नहीं मिलता और अपरान्त वर्तमान प्रसिद्ध कोकण प्रदेश है।

क्षत्रपवंशका अभ्युदय लगभग विक्रम संवत १५७ में हुआ था। इस वंशका परम प्रसिद्ध राजा रुद्रदाम का समय विक्रम संवत २०० और २१५ के मध्य तदनुसार ईस्वी सन १४३ से १५८ पर्यन्त हैं। अत-सिद्ध-हुआ कि विक्रम संवत २१५ पर्यन्त वर्तमान गुजरात और लाट देशका प्रचार नहीं हुआ था। हां इस समय महाभारत कालीन देशोंके मध्य अनेक छोटे मोटे देशोंका नामाभिधान अवश्य हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि रुद्रदामके लेखमें हम देखते है कि आनर्त और मारवाड़ के अन्तर्गत स्वभ्रका-आनर्त और अवन्तिके मध्य अनुप देशका अभ्युदय हो चुका था। एवं आनर्त और अपरान्तके मध्यवर्ती परान्त देशका लोप हो कर उसका भूभाग आनर्त और अपरान्त में मिल गया था। गुप्त वंशका अभ्युदय विक्रम संवत ३७५-७६ और अन्त ५२७ है। तदनुसार इस्वी सन ३१८-१९ से लेकर ४७० पर्यन्त इनका राज्यकाल १५१ वर्ष है। इस अवधिमें इस वंशके सात राजा हुए हैं। इन मे चौथा राजा समुद्रगुप्त परम प्रख्यात और समस्त भारतका अधिपति था। इसका समय विक्रम संवत ४२७ से ४४२ तदनुसार इस्वी सन ३७० से ३८५ पर्यन्त १५ वर्ष है। इसके प्रयाग राज वाले स्तम्भ लेखमें इसके विजित देशों और आधीन राजाओंका

नामोल्लेख है। उसके पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि विक्रम संवत ४७७ से ४४७ पर्यंत भी गुर्जर और लाट नामका प्रचार नहीं हुआ था।

## लाट नन्दिपुर के गुर्जर।

गुप्तों के बाद सौराष्ट्र देशमे मैत्रकोंका अभ्युदय होता है। मैत्रक वंशका संस्थापक सेनापति भट्टारक है। इसने अपने वंशका राज्य सौराष्ट्र देशमें विक्रम संवत ५६६ तदनुसार इस्वी सन ५०९ मे स्थापित किया था। इस वंशका राज्य काल विक्रम से ५६६ तन्नुसार इस्वी ५०९ से ७६६ पर्यन्त २५७ वर्ष है। इस अवधिमें इस वंशके १५ राजा हुए हे। इनके राज्य कालकी समकालीनतामे ही गुर्जर जातिका अभ्युदय पुराकालीन आनर्त प्रदेशमें हुआ था। क्योंकि दक्षिण गुजरात या लाट देशके नन्दिपुर नामक स्थानमे एक गुर्जर वंशको राज्य करते पाते है। नन्दिपुरके गुर्जरोके साथ वल्लभिके मैत्रकोंको संधि विग्रह और वैवाहिक संबंध सूत्रमें ओतप्रोत पाते हैं।

नन्दिपुरके गुर्जरोंका अभ्युदयकाल विक्रम संवत ६३७ और ६४४ के मध्य तन्नुसार इस्वी सन ५८०-५८७ है। और इनका अन्त लगभग विक्रम संवत ७६१ तदनुसार इस्वी सन ७३४ है। इनका राज्य काल इस प्रकार १५० वर्ष प्राप्त होता है। वातापिके चौलुक्यराज पुलकेशी द्वितीय के एहोलग्रामसे प्राप्त शक ५५६ तन्नुसार विक्रम संवत ६९१ वाले शिलालेख श्लोक २३ मे स्पष्टतया गुर्जर जातिका गुर्जर जाति रूपसे उल्लेख किया गया है। अत निश्चय हुआ कि विक्रम संवत ६३७ तदनुसार इस्वी सन ५८० के पूर्वही पुराकालीन आनर्त प्रदेशमे गुर्जर जातिका अभ्युदय हो चुकाथा और वह एक प्रतिष्ठित जातिके रूपमें मानी जाती थी। एव इन गुर्जरोके संयोगसे आनर्त देशका नाम परिवर्तित होकर गुर्जर देश, गुर्जराष्ट्र तथा गुजर मण्डलके नामसे प्रख्यात हो चुका था। अब विचारना है कि क्या नन्दिपुरके गुर्जरोंके संयोगसे आनर्त देशका नाम परिवर्तन हुआ था? इन नन्दिपुरवाले गुर्जरोंके शासन पत्रोंपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि वे आदिसे अन्त पर्यन्त किसी न किसी राजाके आधीन थे। अत इनके संयोगसे आनर्तका नाम गुर्जर रूपमें नहीं बदल सकता और न गुर्जर जाति एक प्रतिष्ठित जातिही मानी जा सकती थी।

पुनश्च इनके अभ्युदय काल विक्रम ६३७ और चौलुक्यराज पुलकेशी द्वितीय के पूर्व कथित लेख में केवल ५४ वर्षका अन्तर है। इस थोड़े समयकी अवधिमें न तो किसी विजेता जाति के नामानुसार किसी देशका नाम परिवर्तीत होकर सर्व साधारणमें उसका प्रचार हो सकता है और न वह जाति सर्व साधारण जनताकी दृष्टिमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकती है। इसके अतिरिक्त पुलकेशी के लेखमें गुर्जर नाम के साथही लाटका प्रयोग किया गया है। भरूचके गुर्जरोंका लाट देशमें होना निर्भ्रान्त है। लाटके साथ गुर्जर शब्दका प्रयोग प्रकट करता है कि भरूचवाले गुर्जरोंके अतिरिक्त किसी अन्य स्थानपर गुर्जरोंका अधिकार था। और उक्त प्रदेश गुर्जर कहलाता था। क्योंकि लाट प्रदेशमें सामन्त रूप से राज्य करनेवाले नंदिपुरके गुर्जरोंका उल्लेख लाट नामके साथ हो जाता है।

## भीनमाल के गुर्जरों का अभ्युदय।

अब देखना है कि नंदिपुर के गुर्जरों के पूर्व अथवा समकालीन किसी अन्य गुर्जर राज्यका अस्तित्व पाया जाता है अथवा नही। चिनी यात्री हुआंनसेन के भारत भ्रमण वृतान्त पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि वर्तमान मारवाड़ राज्यके भीनमाल नामक स्थानमें एक अन्य गुर्जर राज्य था। उसका अधिकार बहुत बड़े भूभागपर था। उसके राज्यकी परिधि ६३३ वर्ग मील थी। हुआनसेनका भारत भ्रमण विक्रम संवत ६८७ के बाद प्रारंभ हुआ था। अतः अब विचारना है कि भीनमालके गुर्जर राज्यका अभ्युदय काल क्या है।

जिस प्रकार भीनमालके गुर्जरोंका अभ्युदयकाल निश्चित रूपसे ज्ञात नही है उसी प्रकार उनके अन्तका समय भी अज्ञात है। तथापि उनका अन्त समय एक प्रकार से निश्चित रूपसे प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि गुर्जरों के बाद भीनमाल पर चापोत्कटों (चावडो) का अधिकार पाया जाता है। भीनमाल के चावडोका स्पष्ट रूपसे उल्लेख लाट देशके चौलुक्य राज पुलकेशी के (त्रयकुटक) संवत्सर ४९० तदनुसार विक्रम संवत ७९६ वाले लेखमें है। उधर विक्रम संवत ६८७ के आसपास भीनमालके गुर्जर राज्यको पूर्ण रूपेण विकसित पाते है। अत हम कह सकते हैं कि भीनमालके गुर्जरोंका अन्त विक्रम संवत ६८७ और ७९६ के मध्य विक्रम संवत ७४० और ७५० के मध्य है।

## लाट का अभ्युदय तृतीय शतक।

अब विचारना है कि भीनमालके गुर्जरोंका अभ्युदयकाल क्या हो सकता है। चापवंशी व्याघ्रमुखके विक्रम संवत ७०० और २१५ के मध्यवर्ती लेखमें गुर्जर प्रदेश और गुर्जर जातिका उल्लेख नहीं है। उसी प्रकार समुद्रगुप्त के विक्रम संवत ४०७ और ५४० के मध्यवर्ती प्रयागवालेस्तम्भ लेखमें विवेचनीय गुर्जर जाति और गुर्जर देशका अभाव है। अतः हम बिना किसी संकोच के यह कह सकते हैं कि भीनमाल के गुर्जरोंका अभ्युदय, जिनके नामानुसार वर्तमान गुर्जर प्रदेशका नाम करण हुआ है, विक्रम संवत ५४० के पश्चात हुआ प्रतीत होता है। परन्तु इनके अभ्युदय कालको यदि हम विक्रम ४४० से और आगे बढाकर गुप्ता के अंत समय विक्रम ५०७ तदनुसार इस्वी सन ५७० माने तो भी कोई आपत्ती सामने आती नहीं दिखाती। क्योंकि गुप्त साम्राज्य के पतन पश्चात भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें अनेक राज्यवंशोंका प्रादुर्भाव हुआ था। गुप्तों के सेनापति भट्टारकने वल्लभि में (सौराष्ट्र) मैत्रक राज्यवंशकी स्थापना की थी। संभवतः गुर्जरोंने भी गुप्त साम्राज्य के पतन रूपी गंगा की बहती धारामें स्नान कर अनयासही राज्य संप्राप्ति रूप पुण्यका संचय किया था। हमारी समझमें जबतक भीनमालके गुर्जर राज्य संस्थापनका परिचायक स्पष्ट प्रमाण न मिले तब तक गुर्जर जातिका अभ्युदय और गुर्जर प्रदेश के नाम करणका समय निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। तथापि तत्कालीन विविध ऐतिहासिक सामग्रियोंपर दृष्टिपात करने के पश्चात हम गुर्जर जाति का अभ्युदय काल विक्रम संवत ५०७ जो, गुप्त साम्राज्य का पतनकाल है, मानते हैं।

पुराकालीन आनर्त प्रदेशका गुर्जर जातिके संयोगसे, गुजरात नामाभिधानका समयादि विवेचन करने पश्चात हम आनर्त और अपरान्त के मध्यवर्ती भूभाग के लाट नामाभिधान के विवेचनमें प्रवृत्त होते हैं। जिस प्रकार गुजरात देशका नाम भारतीय पुराण, रामायण और महाभारत आदि ऐतिहासिक ग्रंथोंमें नहीं पाया जाता उसी प्रकार लाट देशका नामभी इन ग्रंथोंमें देखनेमें नहीं आता। हां लाट देशका उल्लेख विक्रम संवत के तृतीय शतक से लेकर १३ वे शतक पर्यन्त के विविध ताम्रपट और शिलालेखों तथा संस्कृत ऐतिहासिक काव्यादि में पाया जाता है। कामसूत्रके कर्ता वात्सायनने अपनी पुस्तकमें सबसे प्रथम लाट प्रदेशका

प्रयोग किया है। वात्स्यायनका समय विक्रमका तृतीय शतक माना जाता है। एवं टौलमी के ग्रन्थोंमें भी लाटका रुपान्तर लारिक शब्द दृष्टिगोचर होता है।

## लाट शब्द की व्युत्पत्ति।

लाट नामकी व्युत्पत्ति संबंधमें कितने पुरातत्वज्ञोंका विचार है कि लाट शब्दका रुपान्तर "र" का "ल" होकर हुआ है। वास्तवमें देखा जाय तो "र" का रुपान्तर "ल" देखनेमें आता है। चाहे जो हो दक्षिण गुजरातका पूर्व नाम लाट था। और गुजरात नाम पड़नेके कई शताब्दी पूर्व से लेकर कई शताब्दीपर पर्यन्त व्यवहृत था। हमारा संबंध केवल लाट और गुजरात नामसे होनेके कारण हम और अधिक पुराकालीन नामादि के विवेचन में प्रवृत्त न होकर अन्य बातोंका विचार करते है।

## लाट का भूभाग और सीमा।

दक्षिण गुजरात तथा लाटके अन्तर्गत मही नदीसे लेकर तापी नदीके उपत्यका पर्यन्त भूभागका समावेश निर्भ्रान्ति रुपसे पाया जाता है। परन्तु अन्यान्य एतिहासिक घटनाओं पर दृष्टिपात करनेसे प्रगट होता है कि दक्षिण गुजरात और लाटकी सीमाका विभाजन करनेवाली कावेरी नामक नदी है। अतएव हम कह सकते है कि कावेरी नदीसे लेकर मही नदीपर्यन्त प्रदेश दक्षिण गुजरात तथा लाट नामसे अभिहित होता था। पूर्व समय दक्षिण और उत्तर गुजरातको विभाजित करनेवाली मही नदी थी। एवं दक्षिण गुजरात और अपरान्त अथवा उत्तर कोंकणको विलग करनेवाली कावेरी नदी थी। यदि देखा जाय तो आज भी लगभग दक्षिण गुजरात की सीमा पूर्ववतही है। क्योंकि पूर्व कथित दोनों नदियां अपनी पूर्व अवस्थामें ही दृष्टिगोचर होती है। अतएव वर्तमान दक्षिण गुजरातकी सीमा निम्न प्रकारसे है। उत्तरमें उत्तर गुजरात, खंभात स्टेट, बरोदाका पेटलाद, खेडा जिला आदि—दक्षिणमें थाणा जिला—पूर्वमें सिन्ध और अर्बुद पर्वत श्रेणीके मध्यवर्ती खानदेश, मालवा और कुछ भाग वागड़ प्रदेशका और पश्चिम समुद्र नामसे अभिहित होनेवाले समुद्रकी खम्भात नामक खाड़ी।

## लाट की नदिया।

दक्षिण गुजरातमे मही, ढाढर, ओरसग, हेरण, विश्वामित्री, नर्मदा, शिवा, कीम, सेना, तापती, मिढोला, पूणा, अम्बिका और कावेरी नामक नदिया प्रधान है। इनमे मही, ढाढर, नर्मदा, कीम, तापती, पूणा, अम्बिका और कावेरी अन्यान्य छोटी मोटी नदी और नालाओका जल लेकर सीधे खभातकी खाडीमे गीरती है। इनमे नर्मदा और तापती भारतकी प्रसिद्ध नदीयोमे से है। इनका गुनगान पुराणादि मे पाया जाता है। इनके तटपर अनेक पुराण प्रसिद्ध देवालय तथा तीर्थक्षेत्र है। इनमे नर्मदा तटका भृगुक्षेत्र और शुक्लतीर्थ गणमान्य है। तापी तट के प्रसिद्ध तीर्थस्थान अश्वनिकुमार–तापी नदीके सगमपर गलतेश्वर–तापी गर्भका (माटवी से उपर) रामकुण्ड–वलाक क्षेत्र और अपरा काशी नामक स्थान है। मिढोलाका अपरनाम मन्दाकिनी—और मदार हे। इसके उद्गम स्थानपर गोमुख, मध्यवर्ती वार्धवली (वारडोली) नामक स्थानमे केदारेश्वर और पल्शाणामे कार्केश्वर मन्दिर है। पूणा नदीपर मधुरपूर (महुआ) मे जैनियोका विघ्नेश्वर नामक प्रसिद्ध तीर्थस्थान और लाटके चौलुक्य वशकी राज्यधानी नवसारिका (नवसारी) है। कावेरी तटपर अनावलमे शुक्लेश्वर महादेव (अनाविल ब्राह्मणोके कुलदेव) और वातापी कल्याणके वशधर पुरातन वासन्तपुर—वासुदेवपूरके चौलुक्योकी राज्यधानी वासुदेवपुर का ध्वंशावशेष नवा नगर नामक स्थान और वासन्दा नगर है।

हमारे विवेचनीय ऐतिहासीक कालके अन्तर्गत लाट प्रदेशमे शासन करनेवाले गुर्जर, चौलुक्य, राष्ट्रकुट, गोहिल, मुसलमान, मरहठा (पेश्वा–दमाडे–गायकवाड) और अग्रेज राज्यवशका समावेश होता है। इनमे गुर्जर जातिका अभ्युदय चौलुक्योंसे पूर्वभावी है। अतएव हम सर्व प्रथम लाट प्रदेशमे गुर्जरोके अभ्युदय और पतन तथा अधिकार आदिका विचार करते है।

इन गुर्जरोका परिचायक इनका अपना सात ताम्र लेख है। कथित शासन पत्र इडीयन एन्टीक्वेरी वोल्युम ५ पृष्ठ १०६, वोल्युम ७ पृष्ठ ६१, वोल्युम १३ पृष्ठ ८१–८८ और ११५–११६ और वोल्युम १७ तथा एपिग्राफिका इन्डिका वोल्युम २ पृष्ठ १६, जो रॉयल एसिआटिक सोसायटी वो १ पृष्ठ २७४, जो बम्बे रा ए वो १० पृष्ठ १८ मे प्रकाशित है। कथित शासन पत्रोका पर्यालोचन प्रकट करता है कि इनका अधिकार नर्मदा और मही नदीके

मध्यवर्ती भूभागपरही परिमीत था। परन्तु तापि नदीके दक्षिण भूभागपरभी इनके क्षणिक अधिकारका परिचय मिलता है। एवं इनका विवेचन इनकी निम्न वंशावली बताता है।

द द
ज य भ ट
द द          र ण ग्र ह
ज य भ ट
द द
ज य भ ट

इनमें वश संस्थापक दद प्रथम और उसके उत्तराधिकारी जयभटका न तो विशेष एतिहासिक परिचय और न निश्चित समयही ज्ञात है। हां दद प्रथम के पौत्र और जय भटके पुत्र दद द्वितीय, और रणग्रह के तीन लेख प्राप्त हैं। कथित तीन लेखो में खेडा से प्राप्त दो लेख स. ३८० और ३८५ के हैं और इसके भाई रणग्रहका एक लेख खेडा से प्राप्त सं. ३९१ का है। कथित शासन पत्रोका संवत त्रयकूट संवत्सर है! जिसका विक्रम ३०६ तदनुसार शक संवत् १७१ में हुआ था। अंत इनको तिथिकी समका लिनता त्रयकु. ३८० शक ५५१ और विक्रम ६८६ त्रयकु ३८० श. सं ५५६ और विक्रम ६९५ और त्रकु ३९१ श सं. ५६२ और विक्रम ६९० से है। अब यदि हम दद द्वितीय का प्रारंभिक काल ३८० को मान लेवे तो वैसी दशामें दद प्रथमका प्रारंभिक समय लगभग ३३० मानना होगा परन्तु ऐसा मानने के पूर्व हमे विचारना होगा कि त्रयकू ३८० के आसपास में गुर्जरोके अभ्युदयका समर्थन हो सकता है अथवा नही है? हम पूर्वमें बता चुके है कि गुर्जर - जातिका भीनमालमे अभ्युदय काल लगभग विकम सवत ५७० है। अब यदि ५७० को त्रयकु बनावेतो ३०६ घटाना पडेगा। इस प्रकार २६८ त्रयकुटमे गुर्जर जातिका राज्य संस्थापन भीनमालमे हो चुका था। गुर्जर जातिके त्रयकुटक २६४ अभ्युदय और दद-प्रथमके अनुमानिक समय ३३० के मध्य ६६ वर्षका अन्तर है। वल्लभिके इतिहासका पर्यालोचन प्रकट करता है कि धरसेन द्वितीयके विरुदमे परिवर्तन हुआ है उसके गुप्त वल्लभि संवत २५२ के तीन शासन पत्र में उसके विरुद "परं महेश्वर महाराजा" और

गुप्त वल्लभि संवत २६९ और २७० वाले दो लेखों में उनको विरुद "महासामन्त" पाया जाता है। गुप्त वल्लभि संवत और विक्रम संवत्का अन्तर ३७५ वर्ष और त्रयकुटक विक्रमका अन्तर ३०६ वर्ष है। अत सिद्ध हुआ कि २६९–७० गुप्त वल्लभि तदनुसार २६९–७० + ६९=३३८–३९ त्रयकुटक, २६९ + २४० = ५०९ शक; २६९ + ३१८=५८७ ईसवी और २६९ + ३७५=६४४ विक्रम के पूर्वही वल्लभिके राजाओंको पराजित कर स्वाधीन कर लिया था। ऊपर हम बता चुके है कि लाट प्रदेश भरूच नान्दिपुर के गुर्जरोंका अभ्युदय उस समयमे लगभग आनुमानिक रीतिया ७–८ वर्ष पूर्व है। उधर वल्लभिम मैत्रकोका और भीनमालके गुर्जरोका अभ्युदय समकालीन है। अत, हम कह सकते हैं कि भीनमालके गुर्जरोने वल्लभिके मैत्रकोको उक्त समयमें स्वाधीन कर अपना अधिकार नर्मदाकी उपत्यका पर्यंत बढाया था। और सामान्यभी अन्तिम दाक्षिणात्य सीमा पर, अपने सम्बन्धी दद्द प्रथमको सामन्तराजके रूपमे स्थापित किया था। यद्यपि गुर्जरों के अधिकारमे नर्मदाकी उपत्यका प्रदेश चला आया था, तथापि वल्लभिवालोका अधिकार उत्तर गुजरात के खेटकपुर, स्तम्भ तीर्थ आदि प्रदेशों पर बना रहा। हा इतना अवश्य था कि व सम्राट् रूपसे इन प्रदेशोंके अधिपति नहीं वरन भीनमालके गुर्जरोंके सामन्त थे। इनके इन प्रदेशों पर अधिकारका प्रत्यक्ष प्रमाण है क्योंकि हम धरसेन को अपने गुप्त वल्लभि संवत् २७० वाले लेख द्वारा खेटकपुर मडल के आहारका ग्राम दान देते पाते हैं।

भीनमालके गुर्जरो का राज्य दक्षिणमे नर्मदा और उत्तरमे मारवाड, पश्चिममे काठियावाड और पूर्वमे सभवत मालवाकी सीमा पर्यन्त हो गया था, परन्तु इन्होंने अपने इस साम्राज्य सुखका अधिक दिनो पर्यन्त उपभोग नहीं किया, क्योंकि इस समयसे लगभग ४०–४५ वर्ष पश्चात् उत्तर गुजरात पर मालवावालोंने अधिकार कर लिया था। जब मालवा वालोका अधिकार गुजरातपर हुआ और भीनमालके गुर्जरोको पुन उत्तरमे और वल्लभिवालोको पश्चिममे हटना पड़ा उस समय भरूचके साथ भीनमाल वालोका सबध विच्छेद हुआ और भरूच नान्दिपुरके गुर्जरवशको किसी अन्य राज्यवशके आधीन होना पड़ा।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या भीनमालके गुर्जरोको नर्मदाकी उपत्यकाका प्रदेश वल्लभिके मैत्रकोके हाथ से प्राप्त हुआ था? यद्यपि वल्लभिके मैत्रकोंका अधिकार, उत्तर गुजरातके

खेटकपुर आदि भूभागपर होनेका स्पष्ट परिचय मिलता है, तथापि उनके अधिकारमें नर्मदा उपत्यकाके होनेका परिचय उस समयमें नही मिलता। इसके अतिरिक्त दद्द प्रथमके पौत्र दद्द द्वितीयके पूर्व कथित खेडावाले दोनो शासन पत्रोसे प्रगट होता है कि दद्द प्रथमने नागजातिका उत्पाटन किया था। एपिग्राफिका इण्डिका वोल्युम २ पृष्ठ २१ में प्रकाशित शासन पत्रमें प्रगट होता है कि नर्मदा उपत्यकाकी जंगली जातियोंपर निर्हुलक नामक राजा शासन करता था। कथित शासन पत्रमे निरहुलक शंकरगणका उल्लेख बडेही आदर और उच्च भावसे करता है। जिससे स्पष्ट रूपेण प्रगट होता है कि वह शंकरगण के आधीन था। अब यदि हम निरहुलकके समय प्राप्त कर सके तो संभवत. दद्द प्रथम द्वारा पराभूत नागजातिका परिचय मिल सकता है।

वातापि के इतिहास से प्रगट होता है कि मंगलीशने कलचुरीराज शंकरगण के पुत्र बुद्धवर्माको पराभूत किया था। मंगलीशका समय शक ४८८ से ५३२ पर्यन्त है। मंगलीश के राज वर्ष के ५ वें वर्ष के लेखमें बुद्धवर्म्माको पराभूत करनेका उल्लेख है। अतः शक वर्ष ४८८x५=४९३ में मंगलीशने बुद्धवर्म्माको जीता था। बुद्धवर्मा के पिताका नाम शंकरगण है। अब यदि हम शक ४९३ को बुद्धवर्म्माका अन्तिम समय मान लेवे तो वैसी दशामें उसके पिताका समय अधिक से अधिक ५० वर्ष पूर्व जा सकता है। अर्थात् कलचुरी शंकरगणका समय शक ४४३ ठहरता है। उधर निरहुलकके स्वामी शंकरगणका समय, यदि हम उसे दद्द प्रथम द्वारा पराभूत मान लेवे तो, किसीभी दशामें शक ४७५ के पूर्व नहीं जा सकता। अत हम किसी भी दशामें उसे निरहुलक कथित शंकरगण नही मान सकते। हां यदि बुद्धवर्म्माका समय शक ४९३ के आसपास प्रारंभीक मान लेवें और निरहुलकका लेख इस समय से पूर्ववर्ती स्वीकार करें और उक्त समयको निरहुलकका प्रारंभकाल माने तो संभवतः निरहुलक और दद्द प्रथमकी समकालीनता किसी प्रकार सिद्ध हो सकती है। परन्तु इस संभवना के प्रतिकूल मंगलीश के उक्त लेखका विवरण पडता है। क्योंकि उसमे स्पष्टतया उसके पूर्व दिशा विजय के अन्तर्गत बुद्धवर्मा के साथ सघर्षका वर्णन है। परन्तु निरहुलक कथित शंकरगणका उत्तर दिशामें नर्मदा के आसपास में होना संभव प्रतीत होता है।

हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि अपरान्त प्रदेश, वातापि से उत्तर दिशामें अवस्थित है, जहां पर त्रयकुटकोंका अधिकार था। और ताप्ति नदी के वामभाग वर्ती प्रदेशमें तो उनके

अधिकारका होना सूर्यवत् स्पष्ट है। इन त्रयकुटकोंके अधिकारका स्पष्ट परिचय उनके शासन पत्रों तथा उनके सचालित त्रयकुटक सवतके अपरान्त प्रदेश में सार्वभौम रूपसे प्रचार होनेसे मिलता है। अत हम कह सकते हैं कि निरहुलकके शासन पत्रों कथित शंकरगण त्रयकुटवंशी और सभवत त्रयकुटराज महाराजा व्याघ्रसेन के उत्तराधिकारीका पौत्र है। जिसका राज्यकाल त्रयकुटक सवत ७८१–४५ के मध्यकाल से प्रारभ होता है। इस प्रकार मानने से कोई आपत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि हम नि शक होकर व्याघ्रसेन के पुत्र और पौत्रको ५० वर्षका समय दे सकते है। और इस प्रकार ७२७–२३+५०=७६७–६३ में शंकरगणका राज्यकाल प्रारभ होता है। कथित समयके साथ नर्मदा उपत्यकामें रहनेवाली नाग जातिके उत्पाटन–जिसका राजा निरहुलक था–कालका तारतम्य मिल जाता है। अत हम निर्भय हो घोषित करते है कि दद्द प्रथमने इन्ही नागोंका उत्पाटन कर नर्मदा–उपत्यकाको अधिकृत कर भीनमालके गुर्जर साम्राज्यमें मिलाया था। जिसके उपलक्षमें गुर्जर राजने उसे इस प्रदेशका सामन्त बनाया।

दद्दके पश्चात् उसका पुत्र जयभट भरूच (नान्दिपुर) के गुर्जर सामन्त राज्यपर बैठा। परन्तु इसके राज्यकालकी किसीभी घटनाका परिचय हमे नही मिलता। जयभटका उत्तराधिकारी उसका पुत्र दद्द द्वितीय हुआ। दद्द द्वितीय के खेटावाले लेखोंका उल्लेख हम कर चुके है। उक्त दोनो लेखोंसे प्रगट होता है कि दद्द द्वितीयको "पंच महाशब्द" का अधिकार प्राप्त था। और उसके राज्यके अन्तर्गत नर्मदाके दक्षिणका भूभागभी था। क्योंकि उक्त शासन पत्र द्वारा उसने अक्रूरेश्वर (अकलेश्वर) विषयान्तर्गत श्रीशपद्रक ग्राममें भृगुकच्छ और जम्बूसर निवासी ब्राह्मणोंको भूमिदान किया था।

दद्द द्वितीयके प्रपौत्र जयभट तृतीयके स ४५६ वाले शासन पत्र (इ ए १३–७०) के पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि इसने कान्यकुब्ज पति हर्षवर्धनके आक्रमणसे वल्लभि नरेशकी रक्षाकी थी। वातापिके चौलुक्य पुलकेशी द्वितीयके इतिहास—विवेचन। हम बता चुके है कि नान्दिपुरके गुर्जर उसके सामन्त थे और नर्मदा तटपर हर्षका मार्ग रोका था। उन्होंने उसकी आज्ञासे किया था। अंतमें युद्धस्थलमें स्वय उपस्थित हो हर्षको पराभूत कर पृथ्वी वल्लभ की उपाधि उसने धारण की थी।

दद्द द्वितीयके समय चीनी यात्री हुयानसांगने भृगुकच्छका अवलोकन किया था। और अपनी आंखो देखी अवस्थाका जो वर्णन किया था वह एक प्रकारसे दद्द भृगुकच्छके सम्बन्धमें लागू होता है। दद्द द्वितीयके उत्तराधिकारी जयभट द्वितीय का राज्यकाल पुनः पहला शून्य हुआ। तथापि दद्द द्वितीयके राज्यकालकी दो महत्वपूर्ण घटनायें है। प्रथम घटना यह है कि लाट प्रदेशके नवसारीमें वातापिके चौलुक्य वंशकी एक शाखा स्थापित हुई और उस शाखाका संस्थापक विक्रमादित्य प्रथमका छोटाभाई धाराश्रय जयसिंह था। द्वितीय घटना यह है कि उसने गुर्जर नामका परित्याग कर महाभारतीय वीर कर्ण से अपने वंशका सम्बन्ध स्थापित किया। एवं इसको वल्लभि और मालवावालोंसे संभवत. लड़ना पड़ा था।

जयभट द्वितीय अपने पिता दद्द तृतीयके पश्चात गद्दीपर बैठा। यह महासामन्ताधिपति कहलाता था। इसकोभी पंच महाशब्दका अधिकार प्राप्त था। संभवत उसने अपने ४८६ के लेखानुसार वल्लभिके मैत्रकोको पराभूत किया था। और उसके राज्यकालमें अरबोंने भरूचपर आक्रमण कर संभवत. हस्तगत कर लूटपाट मचाया था। और अनन्तर वे आगे बढ़े, परन्तु धाराश्रय जयसिंहके पुत्र पुलकेशी द्वारा पीटकर स्वदेश को लौट गये। यह घटना सं. ४९० की है। जयभट तृतीयके बाद इसवंशका कुछभी परिचय नहीं मिलता। संभवत अरब युद्धमें राजवंशका नाश हो गया।

## लाट के चौलुक्य।

लाट प्रदेशके साथ चौलुक्योंका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दो प्रकारसे सम्बन्ध पाया जाता है अप्रत्यक्ष सम्बन्ध उनके केवल आधिपत्य और प्रत्यक्ष सम्बन्ध उनके निवास और आधिपत्य दोनो का द्योतक है। इनका अप्रत्यक्ष सम्बन्ध तीन भागोंमें बटा है। प्रथम भागमें वातापि-द्वितीय भागमें वातापिकल्याण और तृतीय भागमें पाटणवालोंके आधिपत्य का समावेश है। वातापि-वालोंके सम्बन्धका प्रारम्भ चौलुक्य वंशके प्रथम भारत सम्राट और अश्वमेध कर्ता पुलकेशी प्रथमके राज्यकाल शक ४११ के लगभग और अन्त, द्वितीय भारत सम्राट पुलकेशी द्वितीयके तृतीय पुत्र विक्रमादित्य प्रथमके राज्य काल शक ५८७-८८ मे हुआ। वातापि-कल्याणवालोके आधिपत्यका सूत्रपात-चौलुक्य राज्यलक्ष्मी का उद्धार कर अंकशायिनी बनानेवाले तैलप द्वितीयके राज्यकाल शक ९०० और अन्त लगभग शक १०१२ के लगभग होता है। पाटण-

वालाके सम्बंधका सूत्रपात संभवत शक ६७७ से होता है। परन्तु इनका यह आधिपत्य क्षणिक था, क्योंकि गोर्गीराजने शीघ्र ही इन्हें मार भगाया था। इस समयके पश्चात इन्होंने अनेकबार लाट वसुन्धराको पददलित कर आधिपत्य स्थापित किया, परन्तु प्रत्येक बार इन्हें हटना पडा। परन्तु सिद्धराज जयसिंह के समय शक १०२० के आसपास लाटके उत्तरीय अर्थात नर्मदा और मही के मध्यवर्ती भूभागपर इनका स्थायी आधिपत्य हो गया था। और सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालके समयतो इनका अधिकार तापी दक्षिणवर्ती भूभागपरभी था। किन्तु इनका यह आधिपत्यभी क्षणिक था। परन्तु लाटके उत्तरीय विभागपर तो पाटणवालोंका अधिकार अन्त पर्यन्त स्थायी रहा। इतनाही नहीं पाटन राज्यश्रीका उपभोग करने वाले चौलुक्य वघेलाके अधिकारमेंभी लाटका उत्तरीय प्रदेश था।

जिस प्रकार चौलुक्योंका अप्रत्यक्ष सम्बन्ध तीन भागोंमे बटा है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष संबंधभी तीन भागोंमे बटा है। प्रथम भागमें नवसारिका-द्वितीय भागमे नन्दिपुर और तृतीय भागमें वासुदेवपुरवालोंका समावेश है। नवसारिकावालोंका अभ्युदय शक ५९७-८ और पतन शक ६६१ के पश्चात हुआ। नन्दिपुरवालोंका अभ्युदय शक ६०० और पतन शक १०८० के लगभग हुआ। वासुदेवपुरवालोंका अभ्युदय शक १०२० के आसपास हुआ था इनका अस्तित्वद्योतक प्रमाण शक १३१४ पर्यन्त मिलता है।

इन्ही तीन राजवंशो के ऐतिहासिक लेखोंका संग्रह और विवेचन प्रस्तुत ग्रंथका विषय है। यद्यपि हम यथा स्थान लेखों का विवेचन करते समय उनके इतिहासका विचार आगे चलकर करेंगे तथापि यहापर कुछ सारांश देना असंगत न होगा। अत निम्न भागमें यथाक्रम अति सूक्ष्म रूपमें उनके इतिहासका सारांश देनेका प्रयत्न करते हैं।

## लाट नवसारिका के चौलुक्य।

हम उपर बता चुके है कि इस वंशका संस्थापक धाराश्रय पति चौलुक्यराज विक्रमादित्य प्रथमका छोटाभाई धाराश्रय जयसिंह वर्मा था। परन्तु लाट प्रदेशमें संस्थापित धाराश्रयकी स्थापित शाखा अथवा उसके संस्थापक जयसिंहका परिचय धाराश्रयके किसीभी लेखों नहीं मिलता है। यदि लाट प्रदेशके विभिन्न स्थानोंसे जयसिंहके पुत्रोंका शासन पत्र न मिले

होते तो हमें इस वंशका कुछभी परिचय नही मिलता। प्रायः देखनेमें आता है कि राजवंशोंके अपने शासन पत्रोमें केवल राज्य सिंहासनपर बैठनेवालोंकाही परिचय दिया जाता है। उनके भाई भतीजोंका नामोल्लेखभी नही किया जाता। गादीपर बैठनेवालोंके भाई भतीजोंका परिचय उनके किये हुए अपने दान पत्रादिमें मिलता है। जो वे अपनी जागीरके गावोंमें से यदा कदा ब्राह्मणादिको दान देनेके उपलक्षमें प्रचारित करते है। अतः जयसिंहका परिचय वातापिके शासनपत्रों में नही मिलना कोई आश्चर्यकी बात नही है।

वातापिके शासन पत्रादि केवल जयसिंह के संबंधमेंही मौन नही है, वरन उसके अन्य दो बडे भाई आदित्यवर्मा और चंद्रादित्यके संबंधमेंभी वे समान रूपेण मौन है। यदि आदित्यवर्माका स्वयं अपना और चंद्रादित्यकी राणी विजयभट्टारिका महादेवी के शासन पत्र न मिले होते तो न तो इन दोनोंका परिचय मिलता और न पुलकेशी द्वितीय तथा विक्रमादित्य प्रथमके मध्यवर्ती अवकाशका संतोषजनक रीत्या समाधान होता।

जयसिंह तथा नवसारिकाके चौलुक्यवंशका परिचायक अद्यावधि हमें जयसिंहके पुत्र और पौत्रोंके ५ लेख मिले है। इन लेखोंका संग्रह और अनुवाद तथा पूर्ण विवेचन "चौलुक्य चंद्रिका लाट खण्ड' में अभिगुन्फित है। इन कथित ५ लेखोंमें से जयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र युवराज शिलादित्यके दो, द्वितीय पुत्र तथा उत्तराधिकारी मंगलराजके एक, तृतीय पुत्र बुद्धवर्माके पुत्र विजयराजका एक और चतुर्थ पुत्र पुलकेशीका एक है।

इन लेखोंमेंसे युवराज शिलादित्यके प्रथम लेखमें जयसिंहका अपने बडे भाई विक्रमादित्यकी कृपासे राज्य प्राप्त करनेका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। और द्वितीय लेखमें वातापि पति विक्रमादित्य प्रथमके पुत्र विनयादित्यको अधिराज रूपसे स्वीकार किया गया है। इन दोनों लेखों तथा अन्य तीन लेखोंमें अन्तर केवल इतनाही है कि इसमे वातापिके तत्कालीन राजाको अधिराज रूपसे स्वीकार किया गया है परन्तु उत्तर भावी तीन लेखोंमें वातापिकी वंशावलीके साथ संबंध मात्र स्थापित किया गया है। इन लेखोंके पर्यालोचनसे निम्न प्रकार वंशावली उपलब्ध होती है।

पुनश्च इन शासन पत्रोंसे प्रगट होता है कि इनकी राज्यधानी नवसारीमें थी। और इनके अधिकारमें दमनगंगासे लेकर नर्मदाके वाम भाग अवस्थित भूभाग निर्भ्रान्त रूपेण था। और सम्भवत इनके राज्य की पूर्वीय सीमापर खानदेश था। इनकी आग्नेय सीमा नासिकके प्रति घुसती थी। जयसिंहके ज्येष्ठ पुत्र युवराज शिलादित्यकी मृत्यु पिताकी जीवित अवस्थामेंही हुई थी। अत जयसिंहका उत्तराधिकारी उसका द्वितीय पुत्र मंगलराज हुआ। मंगलराज के पहिलेही युद्धवर्म्माकी मृत्यु हुई प्रतीत होती है। मंगलराजभी निःसंतान मरा। अत उसका उत्तराधिकारी पुलकेशी हुआ। मंगलराजके उत्तराधिकारी पुलकेशीके राज्यकालमें अरबोंने भारत पर आक्रमण किया था और लूटपाट मचाते हुए भरूच तक चले आये थे। जब उन्होंने दक्षिणापथ अर्थात वातापिराज पर आक्रमण करनेके विचारसे आगे पाव बढाया तो पुलकेशीने उन्हे कमलेज के पास पराभूत कर पीछे भगाया। पुलकेशीके पश्चात् इस वंशका कुछभी परिचय नहीं मिलता। सम्भवत वातापि छीननेवाले राष्ट्रकूटोने इस वंशका नाश किया।

## लाट के राष्ट्रकूट।

जिस प्रकार लाट वसुन्धराके साथ चौलुक्योका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षात्मक दो प्रकारसे सम्बन्ध है उसी प्रकार राष्ट्रकूटोंका सम्बन्ध है। लाट देशके साथ राष्ट्रकूटोंके अप्रत्यक्ष सम्बन्धके परिचय सम्बन्धमें हमें दक्षिणापथके इतिहासका पर्यालोचन करना होगा। दक्षिणापथके इतिहाससे प्रकट होता है कि मान्यखेटके राष्ट्रकूटोका प्रताप शीघ्रताके साथ बढ रहा था। मान्यखेटके राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग के इलोरा गुफाके दशावतार मन्दिरमें उत्कीर्ण ६७० वाले लेखसे प्रकट होता है

कि उसने मालवा और लाटको विजय किया था। एवं उसके शासन पत्र (इ. ए. ११-११२ मे प्रकाशित ) से प्रकट होता है कि दन्तिदुर्गके अधिकारमें मही नदी पर्यन्त भूभाग था। और उसकी माताने खेटकपुरके मातर परगणाके प्रत्येक गांवकी कुछ भूमि दान दी थी। इससे स्पष्ट है कि दन्तिदुर्गने सम्भवत. अरब युद्धके पश्चात पुलकेशीके हाथसे लाटका दक्षिण भाग और भरूचके गुर्जरोंसे लाटका उत्तर भाग प्राप्त किया था। दन्तिवर्माकी यह विजय सम्भव हो सकती है। क्यो कि अरब युद्ध और इसके शासन पत्रकी तिथिमें ११ वर्षका अन्तर है। लाटके साथ राष्ट्रकूटोंका प्रत्यक्ष सम्बन्धका परिज्ञापक सूरत जिलाके आन्तरोली चारोली से प्राप्त कर्क द्वितीयका शक ६६६ वाला शासन पत्र है। प्रस्तुत शासन पत्रमें शासन कर्ताकी वंशावली निम्न प्रकारसे दी गइ है।

कर्क
|
ध्रुव
|
गोविन्दराज
|
कर्क

पुनश्च इस शासन पत्रसे प्रकट होता है कि शासन कर्ताकी माता नागवर्माकी पुत्री थी। और इसका विरुद्ध "समधिगत पंच महा शब्द प्राप्त परं भट्टारक महाराज" था। अब. हमें विचारना है कि सामन्त और स्वतन्त्र नरेशोके समान विरुद धारण करनेवाला यह राष्ट्रकूट वंशी कर्क कौन है! और इसको ताप्ति और नर्मदाके मध्यवर्ती भूभाग—जो लाट नवसारिकाके चौलुक्योके राज्य मे था—और जिसे मान्यखेटका राष्ट्रकूट दन्तिवर्मा अधिकृत करने का दावा करता है—का अधिकार क्यों कर मिला। प्रस्तुत शासन पत्रकी तिथि अश्वयुज शुक्ल सप्तमी शक ६६९ है। शक ६६६ की समकालीनता विक्रम ८०४ से प्राप्त होती है। नवसारिके चौलुक्यराज पुलकेशीका शासन पत्र अज्ञात संवत (त्रयकुटक) ४९० तदनुसार विक्रम ७९६ से स्पष्टतया प्रकट है कि उस समय नवसारिका के चौलुक्यवंशका शौर्यसूर्य पूर्णरूपेण प्रकाशित हो रहा था। प्रस्तुत शासन पत्र और उसके मध्यमें केवल आठ वर्षका अन्तर है। संभवहै कि अरब युद्ध पश्चात् पुलकेशीकी शक्ति नष्ट हो गई हो, और कर्कने उसकी निर्बलतासे लाभ उठा

अनायासही शासन पत्र कथित भूभागपर अधिकार कर लिया हो। दन्तिवमा और कर्क द्वितीयके लेखोंमे तीन वर्षका अतर है। दंतिवर्माका लेख उत्तरभावी और कर्कका पूर्व भावी है। अत हम कह सकते है कि इसका सामजस्य सम्मेलन असभव नही है। इस सामजस्य सम्मेलनार्थ हम कह सकते है कि वह विजय प्राप्त करनेके पश्चात् अपने अधिकृत राज्यका उपयोग नहीं कर सका। दन्तिवर्माने आकर अनायासही उसके अधिकृत राज्यको हस्तगत कर लिया। चाहे हम कर्कको प्रथम विजयी मान लेवें और दंतिवर्माको उसे पराभूत करनेवाला मान लेवें परतु हम यह कदापि नही मान सकते कि कर्कके पूर्वज शासन पत्र कथित भूभाग पर चिरकालसे अधिष्ठित और शासन करते थे क्योंकि शासन पत्रकी तिथि शक ६६९ से पूर्व कर्क प्रथमके लिये कमसे कम हमें ७५ वर्ष देने पडगे। इस प्रकार कर्क प्रथमका समय ६६९-७५-५९४ के आसपास पहुचता है। इस समय वातापि और नवसारीके चौलुक्योका प्रताप सूर्य मध्य गगनमें प्रखर रूपसे प्रकाशित होरहा था। पुनश्च शासनपत्र कथित स्थानोंके आसपास नवसारीके चौलुक्योंके अधिकारका स्पष्ट परिचय विक्रम ७६६ पर्यन्त मिलता है। अत यह निश्चित है की कर्कने कही अन्यत्रसे आकर अधिकार किया था और अपनी विजयका उपलक्ष्य उक्त दान दिया था।

परतु इस सभावनाके प्रतिकूल कर्कका विरुद "समधिगत पच महा शब्द" पडता है। जिससे स्पष्ट है कि वह किसीका सामन्त था और उसे पच महा शब्दका अधिकार अपने स्वामीसे प्राप्त हुआ था। अब विचारना है कि कर्कका स्वामी कौन हो सकता है। पूर्वमें हम दक्षिणापथ मान्यखेटके राष्ट्रकूटोंके इतिहासके पर्यालोचन से प्रगट कर चुके है कि दतिवर्माने लाट प्रदेशको विजय किया था। केवल इतनाही नही इसकी माताने खेटकपुरके मातर विषयके प्रत्येक ग्रामकी कुछ भूमि दान दिया था। अब यदि हम दतिवर्मा और कर्कके जातीय सबधको दृष्टिकोणमे लावें और सायही नवीन अधिकृत भूभागपर स्वजातीय बधुओंको शासक नियुक्त करनेके लाभालाभ पर राजनैतिक दृष्टि से विचार करें तो कह सकते है कि दतिदुर्गने कर्कको नवीन अधिकृत भूभाग पर अपने अधिकारको स्थायी बनानेके विचारसे सामन्त बनाया था।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कर्क द्वितीय दन्तिदुर्गका केवल स्वजातीय बंधु अथवा सम्बधी था। दन्तिदुर्गके इलोरावाले लेखमें उसकी वशावली निम्न प्रकारसे दी गई है।

दंतिवर्मा ( प्रथम )
|
इंद्रराज ( प्रथम )
|
गोविन्दराज
|
कर्कराज
|
इंद्रराज ( द्वितीय )
|
दंतिदुर्ग
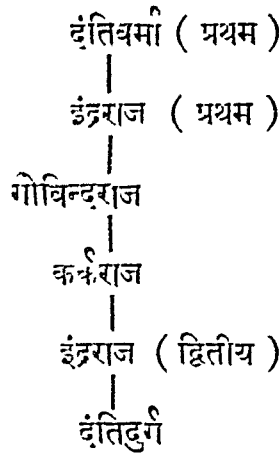
अब यदि हम कर्कके शासन पत्र कथित कर्क प्रथमको दंतिदुर्गके लेख कथित कर्क मान लेवें तो कहना पड़ेगा कि कर्क दंतिदुर्गका सगा चचेरा भतीजा था। इस प्रकार मान लेनेसे मान्यखेटके राष्ट्रकूटों की वंशावली निम्न प्रकारसे होती है।
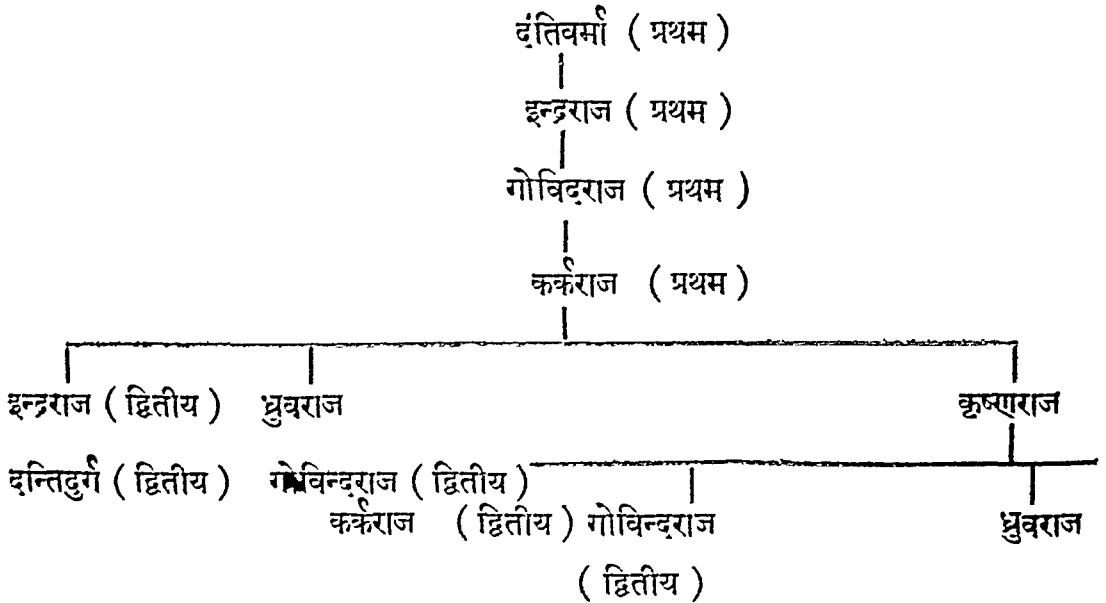
उद्धृत वंशावली तथा अन्यान्य बातों पर लक्ष कर हम कह सकते है कि आन्तरोली चारोली वाले शासन पत्र कथित कर्कराज द्वितीय दन्तिवर्माका सगा चचेरा भतीजा था। हमारी यह धारणा केवल अनुमानकीही भित्ति पर अवलम्बित नही है वरन इसका प्रबल प्रमाणात्मक आधार है। इसी प्रकार उद्धृत वंशावलीका कृष्णराज दन्तिदुर्गका दूसरा चचा था। जो दन्तिदुर्गके

पश्चात मान्यखेटके राष्ट्रकूट राज्य सिंहासन पर बैठा था दन्तिदुर्गके अपुत्र मरने के पश्चात कर्कने उत्तराधिकारके लिए विवाद उपस्थित किया, और अपने चचेरा दादा कृष्णराजसे लड पडा। हमारी समझ में कर्कके इस विवादका आधार यह था कि उसका दादा ध्रुवराज दन्तिदुर्गके पिताका मझला भाई था। परन्तु इस विवादमें कर्कको अपने अधिकार और प्राण दोनोंही गंवाने पडे। हमारी इस धारणाका समर्थन कृष्णके पपौत्र, गौर गुजरातमें राष्ट्रकूटवंशकी स्थापना करनेवाले इन्द्रके पुत्र, कर्कके बरोडासे प्राप्त और इन्डियन एन्टीक्वेरी वोल्युम १२ पृष्ठ १५६ में प्रकाशित लेखके वाक्य कृष्णराजने दन्तिदुर्गके पश्चात् स्ववंशके कल्याणार्थ स्ववंशके नाशमें प्रवृत्त आत्मीयका मूलोच्छेदन करके राज्यधुरी संचालनका भार स्वीकार किया। इस शासन पत्रके कथन,—"स्ववंशके नाशमें प्रवृत आत्मीयका मूलोच्छेदन करके" तथा हमारी धारणा "कर्कको अधिकार और प्राण गमाने पडे" का समर्थन अन्तरोली चारोली वाले कर्कराजके पूर्वजोंका कुछभी परिचय नहीं मिलनेसे होता है।

इन बातों पर ध्यान कर हम कह सकते है कि लाट वसुन्धराके साथ राष्ट्रकूट वंशका सम्बन्ध स्थापित करनेवाला दन्तिदुर्ग द्वितीय है। उसने स्वाधीन लाट देशको, शक ६६६ के पूर्व नवसारीके चौलुक्योंको पराभूत करके राष्ट्रकूट वंशके स्वाधीन किया था। लाटदेश अधिकृत करने पश्चात उसने अपने चचेरे भतीजा कर्कको लाटका सामन्त बनाया। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके द्वितीय चचा और कर्कके मध्य उत्तराधिकारके लिये विग्रह मचा है। कर्क युद्धमें मारा गया और कृष्ण विजयी होकर राष्ट्रकूट राज्य सिंहासन पर बैठा।

कृष्णराज के बाद उसका बडा लडका पुत्र गोविन्दराज गद्दी पर बैठा परन्तु उसे उसके छोटेभाई ध्रुवराजने उसे गद्दीसे उतार खुद राजा बना। ध्रुवराजने अपने वंशके अधिकारको खूब बढाया। और अपने बडे पुत्र गोविंदको लाटदेशका शासक नियुक्त किया। गोविन्दने लाटदेशका शासक होनेके पश्चात् अपनी राजधानी नासिकके अन्तर्गत मयूर खण्ड नामक स्थानको बनाया। एवं स्तम्भपति और मालवराजको पराभूत किया। मालवा विजयके पश्चात गोविन्द विन्ध्य देशके प्रति अग्रसर हुआ और पूर्व मालवाके राजा मार सर्वको स्वाधीन कर लाट देशको लौट

मार्गमें भरूच जिलाके सरभौन नामक स्थानमें वर्षा ऋतु की (इं. ए. ६. ६४) इसके अनन्तर गोविंद दक्षिण चला गया और जाते समय अपने छोटे भाई इन्द्रको लाट और गुजरातका सामन्तराज बनाता गया।

अतः लाट और गुजरातका राष्ट्रकूट वंशी सर्व प्रथम राजा इन्द्र हुआ। इंद्रके वंशजोंने लाट और गुजरात देश पर पांच वंशश्रेणी पर्यंत राज्य किया। इनके लाट गुजरात राज्यकालकी अवधि शक ७३० से शक ८१० पर्यंत ८० वर्ष है। इस अवधिमें इस वंशके राजाओंकी संख्या ८ है। इनके विविध शासन पत्र और ऐतिहासिक लेखके पर्यालोचनसे गुजरातके राष्ट्रकूटोंकी वंशावली निम्न प्रकारसे होती है।

## —: वंशावली :—
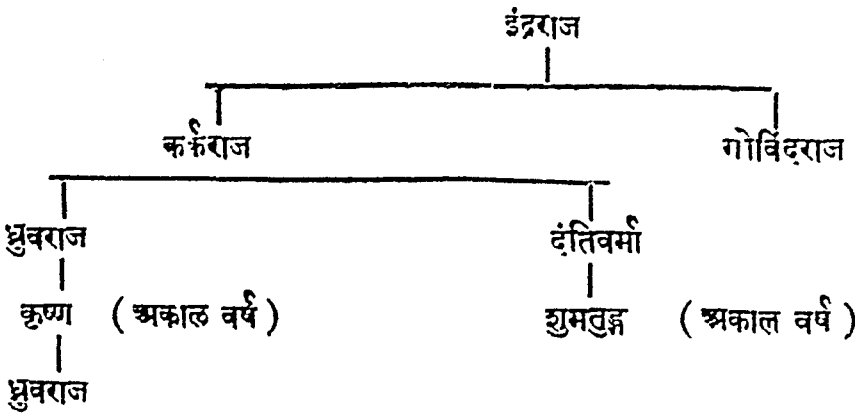
गुजरातके राष्ट्रकूटोंके अद्यावधि ८ शासन पत्र प्राप्त हुए हैं। जिनमें कर्कके तीन लेख हैं। प्रथम बरोदासे प्राप्त शक ७३४ का, द्वितीय नवसारीसे प्राप्त शक ७३८ का और सूरत से प्राप्त शक ७४३ का है। कर्कके भाई और उत्तराधिकारी गोविंदका कावीसे प्राप्त शक ७४९ का एक लेख, ध्रुवका बरोदासे प्राप्त शक ७५३ का एक लेख और ध्रुव राजके पुत्र और उत्तराधिकारी अकाल वर्ष शुभतुङ्गके पुत्र ध्रुव द्वितीयका प्रथम लेख बगुमरासे प्राप्त शक ७८६ का और द्वितीय लेख बरोदासे प्राप्त शक ७९३, और इस वंशका अंतिम लेख कर्कके द्वितीय पुत्र दंतिवर्माके पुत्र अकालवर्ष कृष्ण का बगुमरासे प्राप्त शक ८१० का है।

इन शासन पत्रोंके पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि इनका अधिकार वल्साड दक्षिणोत्तरसे लेकर खेडा पर्यन्त था। परन्तु इनकी पूर्वीय सीमा ज्ञात नहीं है क्योंकि बगैरा से प्राप्त शक ७३४ वाला शासन वटपात्रक से दानका-नवसारीसे शक ७३८ वाला शासन जो खेटपुरमें प्रचारित किया गया था, शर्मां पत्रक ग्रामके दानका और सूरतसे प्राप्त शक ७४३ वाला शासन पत्र जो वन्किका से प्रचारित किया गया था, नागसारिकाके जैन मन्दिर को अम्बापाटक ग्राममें कुछ भूमि देनेका उल्लेख करता है। गोविन्दका कावीसे प्राप्त शक ७४९ वाला शासन पत्र जो भृगुकच्छसे प्रचलित किया गया था, कोटिपुरके सूर्य मन्दिरको ग्राम दानका वर्णन करता है। ध्रुव प्रथमका बगैरासे प्राप्त शक ७५७ वाला शासन पत्र जो खेटपुरके समीप वाले सर्वमगला नामक स्थानसे प्रचारित किया गया था, और वन्गमिन निवासी योग नामक ब्राह्मणको ग्राम दानका उल्लेख करता है। ध्रुव द्वितीयका बगुमरासे प्राप्त शक ७८६ वाला लेख जो भृगुकच्छसे शासित था, परहनाकके ब्राह्मणको दान देनेका वर्णन करता है। इसका बरौदावाला लेख जो भृगुकच्छसेही शासित है, मही नदीके समीपवर्ती कोनवाली नागभान ग्रामके कपालेश्वर महादेव मन्दिरके दानका वर्णन करता है। अन्त तो गया अकालवर्ष कृष्णका बगुमरासे प्राप्त शक ८१० वाला शासन पत्र जो अकुरेश्वरमे शासित है। ११६ ग्रामवाले वारिहाविं (वरीआव) विषयके काविस्थल (कोसाड) गाम निवासी ब्राह्मणोंको भूमिदान देने का वर्णन करता है।

पुनश्च इन शासन पत्रों पर दृष्टिपात करनेसे प्रगट होता है कि गुजरातके इन राष्ट्रकूटोंका इतिहास निम्न प्रकारसे है। गुजरातके राष्ट्रकूट वंशके संस्थापक इन्द्रराजको अपने बड़ेभाई गोविन्द राजकी कृपासे लाट प्रदेशका राज्य शक ७३० में मिला। परन्तु इसने प्राप्त राज्यलक्ष्मीका उपभोग केवल चार वर्ष किया इसी थोडी अवधिमेंभी इसे सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हुई। सभवत इसपर गुर्जर नरेशने आक्रमण किया था। परन्तु इसने उसे मार भगाया। अपनी इस विजयसे उन्मत्त हो स्वतंत्र बननेके प्रयोगम लगा। इसे अपने इस कार्य म प्रवृत्त होनेका अवसरभी मिल गया। क्योंकि राष्ट्रकूटवंशी अन्यान्य सामन्तोंने प्रधान शाखाका विरोध किया। यह झट पट उनके साथ मिल गया। परन्तु राजकुमार श्री वल्लभ (सर्व अमोघ-वर्ष) ने स्वजातीयोंकी सम्मिलित सेनाका दमन कर इस विद्रोह अग्निको जनमतेही शान्तकर

दिया। अतः इन्द्रको स्वातंत्र्य सुखभोगका अवसर न मिला। स्वातंत्र्यकी आशाके साथही उस अपने नश्वर शरीरका संबंधभी छोड़ना पड़ा।

इन्द्रके पश्चात् गुजरातके राष्ट्रकूट सिंहासन पर उसका बड़ा पुत्र कर्कराज बैठा। उसने शक ७३४ के पूर्व गद्दी पर बैठतेही अपने पिताकी "प्रधान शाखाके साथ विरोध" नीतिका परित्याग कर सहयोग मार्गका अवलम्बन किया। और अपने चचा गोविंद तृतीयकी सहायतामें अपनी सेनाके साथ उपस्थित हुआ। जब गुर्जर नरेशने मान्यखेटके आधीन मालव नरेशके पर आक्रमण किया तो कर्क अपनी सेनाके साथ रणमें उपस्थित हो उसकी रक्षाकी थी। पुनश्च जब शक ७३६ मे गोविंद तृतीयकी मृत्यु पश्चात् राजकुमार श्री वल्लभ सर्व अमोघवर्षके उत्तराधिकारका विरोध उसके संबंधिओं के संकेतसे सामन्तोंने किया तो कर्क अपनी सेनाके साथ आगे बढ़ उनका दमन कर उसे सिंहासन पर बैठाया। जिसकी कृतज्ञतामें उसने कर्कको संभवतः उत्तर कोकणका समुद्र तटवर्ती भूभाग प्रदान किया। संभवतः शक ७४८ के आसपास कर्ककी मृत्यु हुई और उसके दोनों पुत्रों ध्रुवराज और दन्तिवर्माके अल्प वयस्क होनेके कारण उसका छोटाभाई गोविंद गद्दी पर बैठा।

गोविंदने लाट वसुन्धराका उपभोग शक ७४८ से ७५६ पर्यन्त किया। पश्चात् कर्कका ज्येष्ठ पुत्र ध्रुवराज वयस्क होने पर गद्दी पर बैठा यह ज्ञात नहीं कि गोविंदने अपनी इच्छासे युवराजको वयस्क होने पर राज्यभार दे दिया था अथवा उसने बल पूर्वक अपने पैतृक अधिकार को प्राप्त किया था। ध्रुव प्रथमको गद्दी पर आने पश्चात् प्रधान शाखाके साथका सौहार्द टूट गया। गुजरात और दक्षिणके दोनों (प्रधान और शाखा) राष्ट्रकूट वंशपुनः विग्रह जालमें फंस गये मान्यखेटके राष्ट्रकूटराज श्री वल्लभ अमोघ वर्षके लेखोंसे प्रगट होता है कि उसने अठिका पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया था। पुनश्च इस विग्रहका स्पष्ट परिचय ध्रुव प्रथमके पुत्र ध्रुव द्वितीय के बगुमरा वाले शक ७८९ के लेखमें मिलता है। उक्त लेखसे ज्ञात होता है कि ध्रुव प्रथमने श्री वल्लभ की सेनाके साथ लड़ता हुआ घोर रूपसे आहत हो रणक्षेत्रमें अपने नश्वर शरीरका परित्याग किया था।

ध्रुव प्रथमकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र अकालवर्ष गद्दी पर बैठा और आक्रमणकारी श्रीवल्लभकी सेना को पराभूत कर अपने पैतृक अधिकारको स्वाधीन न किया। अकालवर्षके

पश्चात् उसका पुत्र ध्रुव द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसके राज्यारोहण के समय उसके सम्बन्धिओंने उपद्रव मचाया किन्तु उनके विद्रोहको इसने दमन किया। इस घटनाका उल्लेख ध्रुवके बगुमरा और बरोदावाले दोनो लेखोंमें है। पुनश्च ध्रुवके बगुमरावाले लेखसे प्रगट होता है कि उसके राज्य पर मेहरराजने आक्रमण किया था। परन्तु इसने अपने गोविंदराज नामक बन्धुभ्राताकी सहायतासे उक्त मेहरराजको पराभूत किया। ध्रुवके राज्यकालमेंही सभवत गुजरातने राष्ट्रकूटों के हाथ से वातापिके दक्षिणका प्रदेश निकल गया प्रतीत होता है। क्योंकि बगुमरा वाले लेखमें चार वर्ष उत्तरकालीन बरोदावाले लेखमें स्पष्टतया ध्रुवके राज्यको नर्मदा (भृगुकच्छ) और मही नदीके मध्य परिमित होनेका उल्लेख पाते है। संभवत श्रीवल्लभ अमोघ वर्ष उक्त प्रदेशको प्रधान शाखाके अधिकारमें मिला लिया था जिसको ध्रुवके चचा और उत्तराधिकारी अकाल वर्षने पुन प्राप्त किया। जिसका उल्लेख उसके बगुमरा वाले शक ८१० के लेखमें पाया जाता है।

ध्रुव द्वितीयकी मृत्यु कब हुई और इसके भाई गोविंदका क्या हुआ इसका कुछभी परिचय नहीं मिलता। सभवत गोविंदकी मृत्यु ध्रुवके पूर्व हुई थी। वरना अकालवर्ष उसका चचा उसका उत्तराधिकारी नहोता। अकालवर्षके बगुमरा वाले शक ८१० के लेखोंमें उसे स्पष्टतया कर्कका पौत्र और दन्तिवर्माका पुत्र लिखा है। अकाल वर्षके पिता दन्तिवर्माको कर्कके शक ७३४ वाले शासन पत्र कथित दूतक राजपुत्र दन्तिवर्मा मान कर पाश्चात्य विद्वानोंने उसे कर्कका ज्येष्ठ पुत्र माना है और शका की है कि कदाचित बगुमराके उक्त लेखकी वशावली में कुछ भूल है। क्योंकि दन्तिवर्मा कथित शक ७३४ लेखका दूतक होने के कारण वह अवश्य उस समय वयस्क था। अत उसके पुत्र अकाल वर्षका लगभग ७६ पर्यन्त जीवित रहना असभव है। इन विद्वानोंकी इस उद्भावित शकाके समाधान हमारा विनम्र निवेदन है कि वे आद्योपान्त भूल कर रहे है। इनकी भूल करनेवाला कहनेका कारण निम्न है।

१—किसी शासन पत्रमें "राजपुत्र" शब्दका प्रयोग दूतकके नामके साथ—दूतकको शासन कर्ता राजाका पुत्र नहीं सिद्ध कर सकता चाहे शासन कर्ताको दूतकके नामक शशी पुत्रभी क्यों न हो।

२—अनेक राजाओंके शासन पत्रोंमें दूतकके नामके साथ "राजपुत्र" विशेषण देखनेम आता है अतः हम कह सकते हैं कि "राजपुत्र" शद्बका प्रयोग "राज वंशोद्भव" भाव ज्ञापन करनेके लिये किया जाता है। कथित "राजपुत्र" शद्बका विशेष प्रयोगही उत्तरभावी "राजपुत्र" शद्बका जनक है।

३—यदि उनकी संभावनाके अनुसार दन्तिवर्माकी मृत्यु पिताकी जीवित अवस्थामेंही हो गई थी; और उसका द्वितीय पुत्र (कर्कराज) उसकी वृद्धावस्थामें हुआ था जिसके अल्प वयस्क होने के कारण गोविद गद्दीपर बैठा। तो ऐसी दशामें हमें अकाल वर्षका जन्म अपने चचा ध्रुवके जन्मसे पूर्व मानना पड़ेगा। और ऐसा माननेपर वह अल्प वयस्क क्योंकर होसकता है। पुनश्च कर्कराजके ज्येष्ठ पुत्र होनेके कारण वह न्यायोचित उत्तराधिकारी था। वैसी दशामें गोविद और ध्रुवको राज्य क्योंकर मिल सकता है।

इन्ही कारणोंको लक्षकर हमने यह निश्चय किया हैकि दन्तिवर्मा न तो कर्क राजका ज्येष्ठ पुत्र और न उसके शासन पत्रका दूतक था। वरन वह उसका छोटा पुत्र और ध्रुवराजका अनुज था। अब यदि हम दन्तिदुर्गका जन्म पिताकी मृत्युके कुछ पूर्व मान लेवें तो वैसी दशामें उसका जन्म हमें ७४७-४७ में मानना पड़ेगा। अतः शक ८१० में अपना शासन पत्र जारी करते समय उसकी आयु ६२ वर्षकी ठहरती है। जबके पाश्चात्य विद्वान, श्री वल्लभ अकाल वर्षका राज्य काल ७३६-७९९ वर्ष ६३ विना मीन मेष मानते हैं। तो वैसी दशामे शुमतुङ्ग अकाल वर्षकी आयु ६३ वर्ष माननेमें आनाकानी करना सरासर मनमानी घरजानी के वरावर है।

अकाल वर्षके साथही लाट गुजरातके राष्ट्रकूटोंके प्रत्यक्ष संबंधकी समाप्ति होती है। परन्तु यह समाप्ति ठीक किस समय हुई इसका परिचय नही मिलता। किन्तु यह निश्चित है कि शक ८१० और ८३६ के मध्य किसी समय प्रधान शाखावालोंने लाट गुजरातकी शाखाका अन्त कर लाट-गुजरातको स्वाधीन कर लिया था।

## राष्ट्रकूटों का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध

दक्षिणा पथ मान्यखेटके राष्ट्रकूटोंका द्वितीयवार अप्रत्यक्ष संबंध शक ८१० के पश्चात् कृष्ण अकाल वर्षसे स्थापित किया और यह अप्रत्यक्ष संबंध शक ८६३ पर्यंत स्थित प्रतीत होता

है। इस अवधिमें मान्यखेटके राष्ट्रकूट सिंहासनपर आठ राजा बैठे। इन राजाओंका समावेश चार वंश श्रेणीमें है। और इनकी वंशावली निम्न प्रकारसे होती है।

इनके इतिहासके परिचायक इनके अनेक शासन पत्र है। कृष्ण अकालवर्षके पौत्र इन्द्रराजके नवसारीसे प्राप्त शक ८३६ के दो लेख और उस (कृष्ण) के सामन्त प्रचण्डका कपडवजसे प्राप्त शक ८३२ का तीसरा लेख है। इन शासन पत्रोंके पर्यालोचनसे ज्ञात होता है कि अकाल वर्ष कृष्णने संभवत शक ८३० में गुजरातके राष्ट्रकूट (शाखा) वंशका नाश संपान्न किया था। उक्त युद्ध में उसके शिल्हारवंशी सामत तथा प्रचण्ड नामक सेनापतिने पूर्ण शौर्य दिखाया था। कृष्ण अकाल वर्षके बाद उसका पुत्र इद्र तृतीय गद्दी पर बैठा। इसके समय लाट और गुजरातका संबध अक्षुण्ण रूपसे पाया जाता है, इद्रराजके पश्चात् लाट गुजरातके साथ इनका सम्बध पाया नहीं जाता, इसका कुछभी परिचय नही मिलता। परतु शिल्हारोंके खारेपाटनवाले लेखसे प्रगट होता है कि ये राष्ट्रकूटोंको अपना अधिराज कहते थ अनतर हम एक बयक शक ६०० के आसपासमें चोलुक्यराज तैलपदेवके सेनापति बारणको पाते है।

## शिल्हार राजवंश

हमारे विवेचनीय ऐतिहासिक काल तथा देशके साथ स्थानकके शिल्हारओंका संबंध है। अत हमारी समझमें इनके अधिकार और इतिहास पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। इस हेतु निम्न भागम सूक्ष्म रूपसे कुछ प्रकाश डालनेका प्रयत्न करते है। अद्यावधि

उत्तर कोकणके शिल्हराओं के वर्तमान कोलावा और थाना जिलाके विविध स्थानोंसे शक ७५० से ११८२ के मध्यवर्ती निम्न ताम्र शासन और शिलालेख प्राप्त हुए हैं।

१—श्री स्थानक ( वर्तमान थाना ) के प्रसिद्ध षटषष्टि ( शालिशेट ) द्वीपके कृष्णगिरी (कन्हेरी) की गुफा संख्या ७८ का पुलशक्तिके राज्यकालीन विना संवत्का शिलालेख।

२—उक्त कृष्णगिरीका गुफा संख्या १० और ७८ में उत्कीर्ण शक ७७५ और ७६६ वाला कापर्दि द्वितीयका शिलालेख।

३—अपराजितका शक ९१९ वाला शासन पत्र, जो थाना जिलाके भीवंडी तालुकाके मदान नामक स्थान से प्राप्त हुआ था।

४—थानासे प्राप्त अरिकेसरीका शासन पत्र संवत ६३६ का।

५—च्छितिराजका शक ९७८ वाला शासन पत्र।

६—मुममुनिका शक ९८२ " " "।

७—अनंतपालका शक १००३ और १०१८ वाले दो शासन पत्र।

८—अपरादित्यका शक १०६० वाला शिला लेख।

९—हरिपालदेवका शक १०७०-१०७१ और १०७५ वाले तीन लेख।

१०—मल्लिकार्जुनका चिपलूनवाला शक १०७८ और वेसीनवाला शक १०८२ का दो लेख।

११—अपरादित्य द्वितीयका शक ११०६ और ११०९ वाले दो लेख।

१२—सोमेश्वरका शक ११७१ और ११८२ वाले दो लेख।

इसके अतिरिक्त इनका राष्ट्रकूटोंके लेखोमें प्रसंगानुसार उल्लेख पाया जाता है, पुनश्च वातापि कल्याण और पाटनके इतिहासमें इनका संबंध दृष्टिगोचर होता है। इन शासन पत्रो और शिलालेखोंके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि शिल्हरा शब्दका पर्याय शिलहार-शैलहार-शिलार और श्रीलार आदि है। एवं इनका जातीय विरुद " तगर पुराधीश्वर " था। जिससे प्रकट होता है कि इनके पूर्वजोंकी राजधानी तगरपूरमें थी। क्योंकि हम कदम्बोंको " वनवासी पुराधीश्वर " यादवोंको " द्वारावती पुराधीश्वर " और उत्तरकालीन चौलुक्योंके " कल्याण पुराधीश्वर " विरुदको धारण करते पाते हैं। जो स्पष्टरूपेण उनके पूर्वजोंकी राजधानीका ज्ञापक है। पुनश्च प्रकट होता है कि इनका अधिकार वर्तमान कोलावा और थाना जिलाओंके भूभाग

पर परिमित था। और इनकी राजधानी प्रथम पुरी में और पश्चात् श्रीस्थानक (थाना) में थी। इनका राजकीय विरद महा सामन्त था और प्रारंभसे ही राष्ट्रकूटोंके आधीन थे। राष्ट्रकूटोंके उत्पाटन पश्चात् इन्होंने क्षणिक स्वातन्त्र्यका उपभोग किया परन्तु चौलुक्योंने इन्हें शीघ्रही पराभूत कर अपने स्वाधीन किया था। अन्ततोगत्वा इनकी वंशावली निम्न प्रकारसे प्राप्त होती है। और इनका राज्यकाल शक ७३५ से लेकर ११८२ पर्यंत ४४७ वर्ष है।
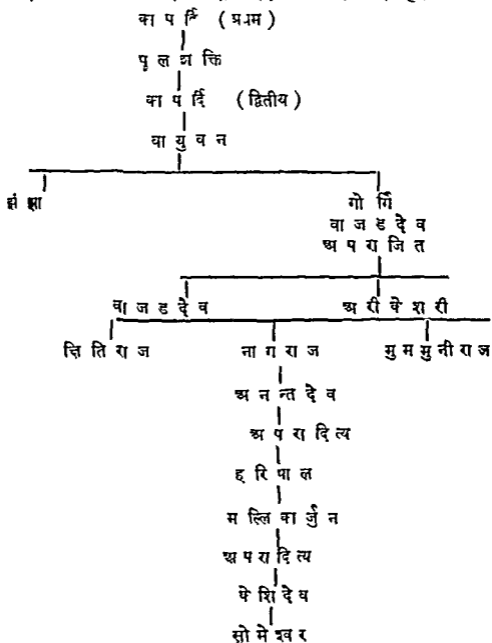
उधृत वंशावली पर दृष्टिपात करनेसे प्रगट होता है कि पुलशक्ती जिसका विना संवतका लेख कृष्णागिरीकी गुफा संख्या ७८ में उत्कीर्ण है, अपने वंशका द्वितीय राजा था। पुलशक्ती अपने कथित लेखमें स्पष्टतया अपने आपको राष्ट्रकूट अमोघवर्षका सेवक तथा कोकणके मंगलपूरीका शासक घोषित करता है। अब विचारना है कि कथित राष्ट्रकूट अमोघवर्ष कौन है। प्रस्तुत शिलालेखकी तिथि न होने से कुछ झंझट सामने आती है क्यों कि राष्ट्रकूट वंशमें अमोघवर्ष नामक अनेक राजा हुए है। तथापि पुलशक्तीके पुत्र और उत्तराधिकारी कापर्दि द्वितीयके कृष्णागिरीकी गुफा संख्या १० वाले शिलालेख, जिसकी तिथि शक ७७५ है, हमारा त्राण करता है। क्योंकि कथित लेखको दृष्टि कोणमें रख कर हम निर्भय होकर कह सकते है कि पुलशक्तीका समय अधिकसे अधिक ७५० पर्यंत पीछे जा सकता है। पुलशक्तीका अनुमानिक समय, ७५० प्राप्त करनेके पश्चात् उसके स्वामी अमोघवर्षका समय प्राप्त करना कोई कठिन काम नही रह जाता है। राष्ट्रकूटोंके इतिहास विवेचन करते समय पूर्वमें हम दिखा चुके हैं कि शक ६६६ के कुछ पूर्व मान्यखेटके राष्ट्रकूट दन्तिवर्माने लाट और मालवा आदिको स्वाधीन किया था। और दन्तिदूर्गके उत्तराधिकारी और चचा कृष्णके द्वितीय पुत्र ध्रुवने अपने वड़ेभाई गोविंदको हटाकर स्वयं गद्दी पर वैठा था। एवं राष्ट्रकूटोंके अधिकारको खूब वढ़ाया था। ध्रुवने अपने वड़े पुत्र गोविंदको राज्यके उत्तरांचल प्रदेशका शासक नियुक्त किया था। जिसने मयुरखण्डको अपनी राजधानी वनाया था। और इसके अधिकारमें प्रायः नासीक, थाना सुरत और भरुच आदि जिलाओं तथा वरोदाका नवसारी प्रांत--वांसदा और धर्मपूर आदिके भूभाग थे। गोविद शक ७३० में अपने छोटेभाई इन्द्रराजको लाटका शासक वना स्वयं दक्षिण जाकर प्रधान शाखाकी गद्दी पर अपने पिताके पश्चात वैठा गोविदकी मृत्यु शफ ७३६ के पूर्व हुई और उसका पुत्र अमोघवर्ष गद्दी पर वैठा। और शक ७३६ से शक ७९६ के पश्चात पर्यंत राज्य किया। पुलशक्ती और उसके पुत्र कापर्दि द्वितीयके लेख इसी अमोघवर्षके राज्यकालमें पड़ते हैं। अतः हम पुलशक्तीके स्वामी अमोघवर्षको मान्यखेटपति राष्ट्रकूट गोविंद तृतीयका पुत्र और उत्तराधिकारी अमोघवर्ष घोषित करते हैं।

कापर्दि द्वितीयके पूर्व कथित कृष्णागिरीकी गुफा संख्या १० और ७८ के शिलालेख ७७५ और ७९५ के पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि वह अपने पिता के समान राष्ट्रकूटोंका

सामन्त था। और इसके अधिकारमें पिताके समानही भूभाग था। कपर्दिके पुत्र और उत्तराधिकारी वापुवर्णके सम्बन्धमें कुछ ऐतिहासिक बातोंका ज्ञान हमें प्राप्त नहीं है। परन्तु उसके और उसके उत्तराधिकारी झञ्झके सम्बन्धमें अवान्तर प्रमाणसे कुछ परिचय प्राप्त होता है। अरब ऐतिहासिक मासुदीके लेखोंसे प्रकट होता है कि उसके समय, अर्थात् शक ८३८ में उत्तर कोंकणमें झञ्झ राज्य करता था। मासूदीने झञ्झको सैमरका राजा लिखा है। मासूदीका सैमर वर्तमान थाना जिलाका चेउल है। पुनश्च शक ६१६ के शासन पत्रसे प्रगट होता है कि झञ्झ परम शैव था और उसने १२ शिव मन्दिरका निर्माण किया था। एवं उसकी कन्या लक्ष्मिगवाका विवाह चान्दोद (चन्द्रावती) के यादव राज भिल्लम के साथ हुआ था। अन्ततोगत्वा मान्यखेटके इतिहासके पर्यालोचनसे यह बात निर्भ्रान्त है कि कृष्ण अकाल वर्षके गुजरात विजय के समय शिल्हार राजा जो उसका सामन्त था, साथ था। अन्यान्य ऐतिहासिक घटनाओं पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि कृष्ण अकाल वर्षका सामन्त और सहायक शिलाहार राजा झञ्झ था।

झञ्झ अपुत्र मरा अत उसका छोटाभाई गोगि उसका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु गोगिका केवल नाम मात्र परिचयके अतिरिक्त हमें ऐतिहासिक विवरण कुछ ज्ञात नहीं है। जिस प्रकार गोगिके राज्यकालका हमें कुछभी ज्ञान नहीं है उसी प्रकार उसके पुत्र वाजडके राज्यकालका इतिहास अन्धकारके गार्भमें पड़ा है। परन्तु वाजडके पुत्र और उत्तराधिकारी अपराजितका शक ९१९ का शासन पत्र भिवडीसे १० मीलकी दूरीपर अवस्थित भीड नामक स्थानसे प्राप्त हुआ है। उक्त शासन पत्र हमें बताता है कि अपराजितके राज्यकालमें राष्ट्रकूट कक्कलको चौलुक्यराज तैलपने पराजित कर राष्ट्रकूट राज्य लक्ष्मीको अकशायिनी बनाया था। और अपराजित स्वतंत्र हो गया था। प्रस्तुत शासन पत्र हमें दो घटनाओंका परिचय देता है। प्रथम घटना राष्ट्रकूट वंशका पराभव और अन्तिम राजा कक्कलका रणक्षेत्रमें मारा जाना। दुसरी घटना अपराजितका स्वतंत्र होना है। प्रथम घटनाके पूर्णत सत्य होनेमें हमें महती शंका है। हमारी इस शंकाका कारण यह है कि चौलुक्यराज तैलपदेवका अधिकार राष्ट्रकूटोंके समस्त राज्यपर हो गया था। हमारी इस धारणाका समर्थन इस बातसे होता है कि जब पाटन पति मूलराजने राष्ट्रकूटवंशके पराभवसे लाभ उठानेके विचारसे

दक्षिणके प्रति दृष्टिपात किया तो तैलपने अपने सेनापति वारपको लाटका सामन्तराज बनाकर भेज दिया। जिसने मूलराजको अन्त तक लाट वसुन्धरा पर पैर नही रखने दिया। इतनाही नही, वरण वारपके सहायकोमें द्वीप नरेशका नाम पाते है। हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि शिल्हाराओंके अधिकारका (उत्तर कोंकण) नामांतर कापर्दि द्वीप है। अतः हमारी समझमें द्वीप नरेशसे शिल्हराओंका संकेत है। चौलुक्यराज तैलपदेवकी राष्ट्रकूट विजयकी तिथि ८९४ और प्रस्तुत शासनकी तिथिमें २३ वर्षका अन्तर है। पुनश्च वारपराजके लाटका सामन्त बनाये जानेकी तिथि शक ९०० और प्रस्तुत शासन पत्रकी तिथिमें १६ वर्षका अन्तर है। एवं प्रस्तुत शासन पत्र तैलपदेवकी मृत्युवाले वर्षका है। अतः हम कह सकते हैं कि संभवत. तैलपकी मृत्यु पश्चात और सत्याश्रयके वारण (वर्तमान सैमूर) वाले चौलुक्योंके साथ उलझे होनेके कारण अपराजितने अपनी स्वतंत्रताकी घोषणा की हो। यदि हम इस संभावनाको थोड़ी देरके लिये मानभी लेवें, तोभी यह कहना पड़ेगा की अपराजितकी यह स्वतंत्रता क्षणिक थी। क्योंकि वारपकी मृत्यु शक ९२२ के आसपास हुई थी। और उक्त समय कापर्दि द्वीपवाले उसके सहायकोंमेंसे थे। पुनश्च हमारी इस संभावनाका समर्थन इस बातसेभी होता है कि अपराजितके वंशजोंको महामण्डलेश्वर और सामन्ताधिपतिका विरुद धारण करते पाते हैं।

अपराजितके कथित शासन पत्रसे उसके अधिकारका परिचय नही मिलता परन्तु कथित शासन पत्रको उसने श्रीस्थानकमें निवास करते समय शासित किया था। अतः निश्चित है कि इसके पैतृक अधिकारमें राज्य परिवर्तन होनेपरभी किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं हुआ। अपराजितके पश्चात उसका बड़ा पुत्र वाजडदेव गद्दीपर बैठा परन्तु वह नाममात्रका राजा हुआ। बाद उसका अनुज अरीकेशरी गद्दीपर आया। अरीकेशरीका शासन पत्र थानासे प्राप्त हुआ है। उक्त शासन पत्रकी तिथि शक ९३९ है। इसके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि अरीकेशरीका विरुद "महा मण्डलेश्वर" था और वह संपूर्ण कोंकणका शासक था। साथही शासन पत्र यहभी प्रकट करता है कि वह १४०० ग्रामोंका स्वामी था। उसकी राजधानी पूरीमें थी। शासन पत्रके शासित करने का ज्ञापन स्थानक और हमयमन निवासिओंको किया है। अब यदि शासन पत्रके कथन "अरीकेशरी संपूर्ण कोकणका शासक था" माने तो मानना पड़ेगा कि उसके अधिकारमे गोवासे लेकर वर्तमान सुरत जिलाके वलसाड और चिखली पर्यंत भूभाग था। परन्तु यह हम

कदापि नहीं मान सकते। क्योंकि दक्षिण कोंकणम इस समय दो भिन्न भिन्न शिल्हार राज्यवश करहाट और कोल्हापूरमें शासन करता था। यदि सपूर्ण कोकणका भाग केवल उत्तर कोकण माना जाय तो वैसी दशाम हमें कोईभी आपत्ति नही है। पुनश्च शासन पत्र कथित १४०० ग्रामोंके शासन का कुछभी भाव हमारी समझम नही आता। परन्तु देखते है कि अरीकेशरीके पश्चात् वाले अनेक राजाओं के लिये भी १४०० ग्रामोंका शासक कहा गया है। अत हम कह सकते है कि किसी कारणवसात यह इनका वश गत विरुद हो गया था। अरिकेशरीको क्षितिराज, नागार्जुन और मुमुनि नामक तीन पुत्र थे। जिनमसे क्षितिराज उसका उत्तराधिकारी हुआ।

क्षितिराजका शासन पत्र थाना जिलाके भाण्डप नामक स्थान से मिला है। इसकी तिथि शक ६४८ है। इससे क्षितिराजका विरुद महासामन्त और महामण्डलेश्वर प्रगट होता है। जिस प्रकार क्षितिराजके पिता अरिकेशरीका शासनपत्र उसे १४०० ग्रामोंका स्वामी और कोकण पति कहता है उसी प्रकार इसका शासन इसको वर्णन करता है। यहा तक समता पायी जाती है कि अरिकेशरीके शासन समानही इसके शासनको हमयमन ग्राम वासियोंको सबोधन किया गया है। क्षितिराजका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई नागार्जुन हुआ। परन्तु यह ज्ञात नहीं कि क्षितिराजकी मृत्यु कब हुई और नागराज गद्दी पर कब बैठा। किन्तु मुमुनि का शिलालेख शक ६८२ का हमें प्राप्त है अत हम निश्चयके साथ कह सकते है कि नागराजके शासनकालका समावेश ९४८ और ९८० के मध्य है। नागराजके बाद उसका छोटा भाई मुमुनिराज हुआ। इसका एक शिला लेख कल्याणके समीप अम्भेडनाथ नामक शिव मन्दिरमें लगा है। उसके मननसे ज्ञात होता है कि उसने अपने ज्येष्ठ भ्राता क्षितिराज कृत एक राज्य-भवन का जीर्णोद्धार किया था। इसके अतिरिक्त शिल्हाराओंके लेखोंसे इसके सम्बन्धम कुछ पता नहीं मिलता। हा, वातापि कल्याणके चौलुक्याक इतिहाससे प्रकट होता है कि विक्रमादित्य छठेके सेनापतिने उसके छोटेभाई युवराज जयसिंहके लाट और दाहल विजयके समय कापर्दि द्वीपके राजाको रणमें मारा था। और सभवत जयसिंहने राजयवशकी किसी अन्य व्यक्तिको अपने प्रतिनिधि रूपसे गद्दी पर बैठाया था। इस विषयका विशेष विवेचन जयसिंहके शक १००३ वाले लेखके विवेचनम-चौलुक्य चन्द्रिका लाट वासुदेवपुर खण्डमें दृष्टिगोचर होगा। इस घटनाका उल्लेख यद्यपि शिल्हाराओंके अपने लेखमें नहीं मिलता तथापि उसका सकेत

मुमुमुनिके बाद गद्दीपर बैठनेवाले अनन्तपालके द्वितीय लेख शक १०१६ वालेमें पाया जाता है। मुममुनीके उत्तराधिकारी अनन्तपालके प्रथम लेख शक १००३ वाले में बन्धुओंके उपद्रवका उल्लेख नही है। और इसी वर्षके जयसिहके शिला शासनमें उसके लाट विजयका उल्लेख है। इसलिये हम कह सकते हैं कि मुममुनि शक १००३ के पूर्व मारा गया था और उसका पुत्र अनन्त गद्दीपर बैठा। किन्तु जयसिहने उसे हटाकर दुसरेको अपना प्रतिनिधि बनाया।

अनन्त जैसाकि हम ऊपर बता चुके हैं शक १००३ में अपने पिता मुममुनिके मारे जाने बाद गद्दीपर बैठा। परन्तु उसे गद्दीसे उतार युवराज जयसिहने दूसरेको बैठाया। जिसे अनंतपाल जयसिहके पराभव पश्चात १००९ और १०१६ के मध्य हटाकर पुनः गद्दीपर बैठा। और इसके इसी घटनाका इसके शक १०१६ वाले लेखमें अलंकारिक भाषामें वर्णन किया गया है। कथित लेखके अलंकारको छोड़तेही स्पष्टतया हमारी धारणाका समर्थन होता है। अनंतपालने कबतक राज्य किया इसका कुछभी परिचय नही मिलता। और न उसके बाद वंशावलीका क्रम मिलता है। हां, अनंतपालके बाद ६ शिल्हाराओंको थाना जिलामें राज्य करते पाते हैं। परन्तु यह ज्ञात नही होता कि उनका परस्पर क्या संबंध था। उसी प्रकार अनंतपालके बादवाले अपरादित्यका उसके साथ क्या संबंध था अद्यावधि अज्ञेय है।

अपरादित्यका शक १०६० वाला लेख प्राप्त है, इससे केवल इतनाही ज्ञात होता है कि वह शिल्हार वंशका था और सामन्त रूपसे अपने अधिकार पर शासन करता था। हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि अनंतपाल शक १००३ के आसपास गद्दीपर बैठा था, और इसका प्रथम लेख शक १००३ और दुसरा १०१६ का है। अतः अनंतपाल और अपरादित्यके मध्य ४४ वर्षका अन्तर पड़ता है। केवल ४४ वर्षके अन्तरमेंही कोई अपने पूर्वजोका परिचय नही भूल सकता। अतः हम कह सकते हैं कि अपरादित्य अनंतपालका जाति बन्धु होते हुए भी निकटतर संबंधी नही था। संभवतः जयसिहके पुत्र विजयसिहने जब शक १०१२-१३ के मध्य सह्याद्रि उपत्यका पर अधिकार किया तो अपने पांव जम जाने बाद उसने शक १०१६ के पश्चात किसी समय अनन्तपालको ठोकपीट कर गद्दी से हटा अपने किसी शिल्हार वंशी सेनापतिको गद्दी पर बैठाया होगा। और उसके अधिकारमें नाम मात्रका अधिकार रह गया होगा। यही कारण है कि अपरादित्यके उक्त लेखमें अनंतपालके साथ उसके सम्बन्धका परिचय

नही मिलता। किन्तु इतना तो निश्चय है कि अपरादित्यका प्रस्तुत १०६० वाला लेख अन्तिम काल का है । अपरादित्यके पश्चात हरिपाल देव गद्दी पर बैठा। उसका समय शक १०६० और १०७५ के मध्य है। हरिपालके तीन लेख शक १०७०-७१ और १०७४ के प्राप्त है। इन लेखोंसे कुछभी विशेष परिचय नही मिलता। हरिपालके पश्चात मल्लिकार्जुन गद्दी पर बैठा। यह वास्तवमे शिल्हार वंशका राजा था इसके अधिकारमे शिल्हारोंके पूर्ण अधिकार के होनेका परिचय पाया जाता है। क्योंकि इसके दो शासन पत्र शक १०७८ और १०८२ के प्राप्त है। उनमे एक चिपलुनसे और दूसरा वेसीनसे प्राप्त हुआ है। पाटनके इतिहाससे प्रकट होता है कि मल्लिकार्जुनके साथ पाटनके कुमारपालका युद्ध हुआ था। और उक्त युद्धमे प्रथम मल्लिकार्जुनने पाटनके सेनापतिको पराभूत किया था । परन्तु दूसरे युद्धमे मल्लिकार्जुनको हारना पडा।

मल्लिकार्जुनके बाद उसका पुत्र अपरादित्य गद्दी पर बैठा। अपरादित्यके दो शिलालेख शक ११०६ और ११०९ के प्राप्त है। अत हम कह सकते है कि मल्लिकार्जुनका समय १०७८ से ११०६ पर्यन्त है अपरादित्यके बाद सोमेश्वर नामक शिल्हार राजाके राज्य करनेका परिचय मिलता है। क्योंकि उसके ११७१ और ११८२ के दो लेख हम प्राप्त है। परन्तु इन लेखोंसे प्रकट नही होता कि उसका अपरादित्यके साथ क्या सबध था। एव सोमेश्वरके पश्चात् शिल्हाराओंका कुछभी परिचय नही मिलता । सोमेश्वरके पश्चात् शिल्हार वंशके परिचय सबधमे सेउण देश (देवगिरी) के यादवोंके इतिहासके अध्ययनसे कुछ प्रकाश पडता है। हिमाद्रि पडित कृत "यादव राज्यवंश प्रशस्ति" तथा विविध शासन पत्रोंके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि महादेव नामक राजा, शक ११८२ मे यादव सिंहासन पर आया। उक्त प्रशस्तिके श्लोक ४८ से प्रकट होता है कि "यह तैलगपति रूप रुईके समूहके लिये अग्नि-बहुत गर्जनेवाले और पर्वत समान गर्ववान गुर्जरपति के लिए वज्र और कोंकण तथा लाटपतिको अनायासही पराभूत कर विडम्बनाका पात्र बनानेवाला था"। पुनश्च श्लोक ५० के उत्तर चरणवाले वाक्य "सोम समुद्र प्लव पेपलोपि ममज्जसैन्ये म कुलुगेश" समुद्रको तैरनेमे प्रवीण सोम अपनी सेनाके साथ डूब गया। एव अगला श्लोक प्रकट करता है कि "समुद्रने महादेवके क्रोधको वडवानलके समान मान कोंकणपति सोमेश्वरकी रक्षा करनेके

स्थानमें उसे अपने उदरमें स्थान प्रदान किया। उधृत विवरणमें कोकणपतिका दोवार उल्लेख आया है। प्रथमवारके उल्लेखमें राजाका नाम नहीं दिया गया है परन्तु द्वितीय वारके उल्लेखमें राजाका नाम स्पष्टरूपेण सोम दिया गया है। अतः इस पुनरुक्तिसे उलझन उपस्थित होती है। परन्तु हमारी समझमें इन दोनों उल्लेखोंको विभिन्न घटनाओंका वर्णन करनेवाला मान लेवें तो किसी प्रकारकी उलझन सामने आती नहीं दिखाती। पुनश्च कोकणका दो भागोंमें विभाग होकर उत्तर और दक्षिण कोकणके नामसे उल्लेख पाया जाता है। एवं देखनेमें आता है कि कोकणेश या कोकणपति नामसे केवल दक्षिण कोकणका ग्रहण होता है। और उत्तर कोकणका संवोधन करते समय यातो उसके पूर्वमें विशेषण रूपसे उत्तर कोकण वा कापर्दि कोकणका व्यवहार किया जाता था। इन कारणोंसे हम कह सकते हैं कि प्रथम वारके उल्लेखमें दक्षिण कोकण अर्थात् कोल्हापुरके शिल्हारोंका उल्लेख किया गया है। और द्वितीय वारके उल्लेखमें उत्तर कोकणके विशेषणोंके स्थानमें राजाका नाम दिया गया।

अब यदि उत्तर कोकणसे संवंध रखनेवाले उत्तर भावी दोनों कथानकको "समुद्र तैरनेमें प्रवीण होता हुआभी डूब गया, और "महादेवके कोपके डरसे समुद्रने रक्षाके स्थानमें उदरस्थ किया" के अलंकारको निकाल वाहर करें तो सीधा सादा भाव यह निकलता है कि यादवराज महादेवसे हारकर शिल्हार सोमेश्वर नौका द्वारा समुद्र मार्गसे भागा अथवा सोमेश्वर और महादेवके मध्य जल युद्ध हुआ था। संभवतः महादेवने सोमेश्वरकी नव सेनाको पराभूत किया और वह नौकाओंके डूवनेके कारण अपनी सेनाके साथ डूव मरा अथवा सोमेश्वर जल युद्धमें हारकर जव नौकाओंके द्वारा भागा तो किसी दैवी घटनामें पड़कर नौकाओंके डूवनेके कारण डूव मरा। सोमेश्वरके पश्चात् उत्तर कोकणके शिल्हारोंका हमें कुछभी परिचय नही मिलता। परन्तु इनके स्थानमें यादवोंके अस्तित्वका स्पष्ट परिचय मिलता है।

## लाट और गुजरातमें यादव।

शिल्हाराओंके इतिहासका सारांश निगुण्ठन करते समय यादवोंका उल्लेख प्रसंगवश करना पड़ा था। यादवोंका उक्त उल्लेख दो वातें स्पष्ट रूपसे प्रकट करता है। प्रथमतः हमारे विवेचनीय इतिहास कालवाले राजाओंके साथ वैवाहिक संवंध, और द्वितीयत. उत्तर कोकण

और लाट तथा गुर्जर देशके राजाओंपर यादवोंका आक्रमण। विशेषत यादवों द्वारा शिल्हारओंके मूलोच्छेदका उक्त उल्लेख परिचायक है। साथही यहभी प्रकट होता है कि यादवोंने उत्तर कोकणके शिल्हाराओंका मूलोच्छेद कर उनके राज्यको अपने राज्यमें मिला लिया था। और उसका शासन वे अपने प्रतिनिधि द्वारा करते थे। अब यदि यहापर यादवोंके सबधमें कुछ विचार प्रकट करें तो असगत न होगा। कारण आगे चलकर लाट नदीपुर और लाट वासुदेवपुरके चौलुक्योंका इतिहास विवेचन करते समय इस विचारसे अभूतपूर्व सहाय प्राप्त होनेकी सभावना है।

यादव वशका प्रथम परिचय उनके शिला लेखोंसे चद्रादित्यपुर या चद्रपुरके नामसे सर्व प्रथम मिलता है। चद्रादित्यपुर अथवा चद्रपुरको कितने एक विद्वान चान्दोद और दूसरे चन्दोद मानते हैं। यादवोंका प्रथम परिचय हमें चान्दोदके नामसे मिलता है। द्वितीय परिचयसे उन देशके यादव नामसे मिलता है। और तृतीय परिचय देवगिरीके यादव नामसे प्राप्त होता है। चौलुक्य चद्रिका लाट खण्डके अन्तर्गत लाट नदीपुर शीर्षकम उधृत त्रिलोचन पालके शक सवत् ९७२ वाले लेखके विवेचनम चद्रादित्यपुर (चन्दोद या चान्दोद) के यादवोंका उल्लेख किया गया है। और यहभी बताया गया है कि इन्हीं यादवोंके साथ लाट नदीपुरके चौलुक्यों तथा उत्तर कोकणके शिल्हाराओंका वैवाहिक सबध था। शिल्हाराओंका इतिहास विवेचन करते समय देवगिरीके यादवोंके हाथसे उनकी पराभव तथा मूलोच्छेदका वर्णन कर चुके हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि चान्दोदका अवस्थान कहापर था। और चादोद, सेउन देश और देवगिरीका यादव वश अभिन्न या विभिन्न था।

हमारी समझमें जब तक चान्दोद, सेउन देश और देवगिरीके अवस्थानका परिचय प्राप्त न कर लें, तब तक इस प्रश्नका उत्तर नहीं दिया जा सकता। दक्षिणापथ (वातापि) के चौलुक्योंके इतिहासिके लेख "चौलुक्य चद्रिका"—वातापि खटके प्राक्कथनमें सेउन देशके अवस्थान प्रभृतिका पूर्णरूपेण विवेचन कर चुके है। और यहभी बता चुके है कि सेउन देश पूर्व कालम दण्डकारण्य नामसे प्रख्यात भूभाग, अन्तर्गत सप्रति नासिक टाग, धरमपुर और वासदाके कुछ भूभागका समावेश है, पूर्वोत्तरमें अवस्थित था। उक्त सेउन देशके अन्तर्गत वर्तमान खानदेश और निजाम राज्यके औरगाबाद जिलाके भूभागका

समावेश था। सेउन नामक राजाके नामसे यादवोंके राजका नाम सेउन देश पड़ा। और इसी सेउन वंशके यादव वंशी एक राजाने देवगिरी नामक नगर स्थापित कर उसे अपनी राजधानी बनाया। तबसे सेउन देशके यादव देवगिरीके यादव नामसे विख्यात है। देवगिरीको संप्रति दौलताबाद कहते हैं। अतः देवगिरी और सेउन देशके यादवोंमें अभिन्नता है। इस हेतु अब विवेचनीय विषय केवल मात्र इतनाही है कि चंद्रादित्यपुर और देवगिरीके यादवोंके मध्य कुछ संबंध था अथवा नही।

स्वर्गीय डॉ. भगवानलालने चान्दोदके यादवोंको सेउन—देवगिरीके यादवोंसे भिन्न माना है और चांदोदके यादवोंको नर्मदा तटवर्ती चांदोदका अधिपति मान वर्तमान नासिक और खानदेशके भूभागपर राज्य करनेवाले यादवोंको पूर्णरूपेण भूल गये है।

यदि वे ऐसा न करते और चांदोदके यादवोंकी वंशावली तथा वैवाहिक संबंधकी तुलना हेमाद्रि पंडितकी यादवराज प्रशस्ति कथित विवरणसे किये होते तो न वे चांदोदके यादवोंको नर्मदा तटवर्ती चांदोदका अधिपति और न सेउन देवगिरीके यादवोंसे विभिन्न मानते। हमारी समझमें चंद्रादित्यपुर या चंद्रपुर रूपान्तर चन्दोद माना जाता है, वह नर्मदा तटका चांदोद न होकर नासिक जिलाका चन्दोद ग्राम है। हमारी इस धारणाका समर्थन इस बातसेभी होता है कि नर्मदा तटवर्ती चांदोदके आसपास यादवोंके अस्तित्वका परिचय नही मिलता, परन्तु जैसा कि हम उपर बता चुके हैं नासिक खानदेशादि भूभागपर उनके अस्तित्वका परिचय स्पष्ट रूपसे मिलता है। पुनश्च हेमाद्रि पंडितने नासिक खानदेशवाले यादवोंको स्पष्ट रूपेण सेउन देवगिरीको यादवोंकी वंशावलीमें स्थान प्रदान किया है। इतनाही नहीं इनकी कन्या लच्छियवाके विवाहका वर्णन विस्तारके साथ किया है। यादवोंके अन्यान्य ऐतिहासिक लेखोंके पर्यालोचनसे हेमाद्रिके कथनका पूर्णतया समर्थन होता है। चांदोदके यादवोंको नासिक खानदेशवाले यादवोंसे अभिन्न सिद्ध करनेके पश्चात एवं उन्हे सेउन—देवगिरीका यादव माननेके अनंतर इनकी वंशावली निम्न प्रकारसे होती है।

दृढप्रहार
|
सेउनचंद्र—१
|
धाडियप—१

|
भिल्लम—१
|
श्रीराज
|
वाडीग—१
|
धाडिय—२
|
भिल्लम—२
|
तेसुक—१
|
अर्जुन
|
भिल्लम—३
|
वाडीग—२
|
तेसुक—२
|
भिल्लम—४
|
सेउनचद्र—२
|
परम
|
सींघ
|
मलुगी
|

| | | |
|---|---|---|
| अपरगांगेय | अपरमलुगी | भिल्लम—५ |
| गोविंदराज | वल्लाल | जैत्रपाल—१ |
| | | सींघन |
| | | जैत्रपाल—२ |
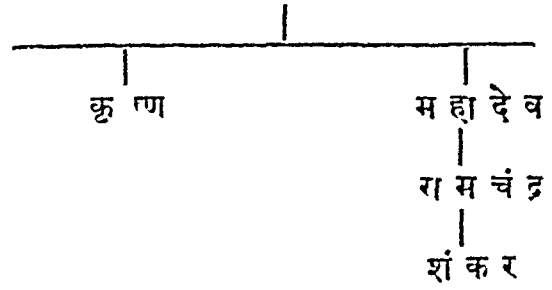
दक्षिणापथके चौलुक्योंके ऐतिहासिके लेख "चौलुक्य चंद्रिका" वातापि खंड प्राक्कथनमें यादवोंके सार्वभौम साम्राज्यके विस्तारका विचार कर चुके हैं। और यहभी बता चुके हैं कि उन्होंने कुछ दिनोंके लिये उत्तर कोकणसे लेकर मैसूर पर्यंत अपना आधिपत्य स्थापित किया था। अतः यहांपर उनके लाट गुर्जर और अन्यान्य राज्योपर आक्रमणादिका पुनः उल्लेख करना पिष्ट पेषण मान केवल इतनाही कहते हैं कि इन यादवोंके राज्य कवि और शासन लेखक गण तिलका ताड़ बनाने और बिना शिर पैरकी प्रशंसाका पुल बांधनेमें दूसरे किसीसे कणिका मात्रभी कम न थे। यदि इनके अलंकार आडम्बरको निकाल बाहर करें और अन्यान्य राज्यवंशोंके इतिहासके साथ तारतम्य संमेलन करें तो अनायासही सत्य ऐतिहासिक घटनाओंको प्राप्त कर सकते है।

महादेवके पूर्व उसके दादा सिंघनने अपने वंशके अधिकारका विस्तार किया। यहां तक कि उसने एक बहुत बड़ी सेना लेकर कोकण और लाटपतिको पराभूत कर पाटनके चौलुक्योंपर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुआ था।

इसके गुजरात आक्रमणका उल्लेख कीर्ति कौमुदीमें निम्न प्रकारसे किया गया है। "कर्नाटपतिके आक्रमणका संवाद पा गुजरातकी प्रजा (गुजरात नामसे पाटनवाले चौलुक्योंका संबोध किया गया है) अत्यंत भयभीत हुई। लवणप्रसाद सेना लेकर आक्रमणकारी सेनाका अवरोध करनेके लिये आगे बढ़ा। लवणकी सेना बहुत थोड़ी थी। गुजरातकी सेना यद्यपि लड़ाकू और पीछे हटनेवाली न थी, तथापि शत्रुकी विशाल सेनाके सामने उसके (लवण) विजयी होनेमें गुजरातकी प्रजाको सन्देह था। भावी भयंकर और दुःखद परिणामके डरसे कोईभी नवीन मकान नही बनाता था। सबने घरमें अन्न संग्रह करना छोड़ दिया था। सेनाके उत्पातके डरसे प्रजा ग्राम छोड़कर भाग रही थी। इसी अवसरमें उत्तरसे मारवाड़वालोंने

गुजरातपर आक्रमण किया। अत लवणप्रसादको सिंघनके सामनेसे हटकर मारवाड़वालोंसे लडनेके लिये जाना पडा। लवणप्रसादके लौटनेका समाचार पा यादवराज सिंघन अपनी सेनाके साथ देशको लौट गया। क्या कि वह भागनेवाले शत्रु, बालक और वृद्धपर आक्रमण नहीं करता था"।

कीर्ति कौमुदीकारने गुजरातके इस पराभवको कितनी उत्तमताके साथ वर्णन किया है। चाहे वह इस प्रकार लिख कर अपने स्वामी पाटनके वाघेलाको सतुष्ट कर सका हो—पश्चात् भावी गुजरातियोंकी आखमे धूल झोंक सके परन्तु आजकी न तो गुजराती प्रजा और न अन्य भारतीय उसकी इस चाटुकताकी चपलेम आ सकती है। चाहे कोई सत्यको कितनाही छिपाना चाहे, वह नहीं छिपता है। इसी प्रकार कीर्ति कौमुदीके कथनको तत्कालीन अन्यान्य ऐतिहासिक लखोके साथ तुलना करतेही कथित युद्धका परिणाम अपने आप आखोके सामने आ जाता है अथात् उक्त युद्धम पाटनकी सेनाको पराभूत होना पड़ा था और लवणप्रसादको बाध्य होकर पराजित सधि करनी पडी थी। इस प्रकार सधि द्वारा सिंघनसे प्राण छुड़ा वह मारवाडवालोंसे लडनेके लिये अग्रसर हुआ था। गुजरात मारवाड़ युद्धमे आबू चद्रावतीके परमार राज धारावर्षने पाटनवालोंको सहाय प्रदान किया था। इस विषयका विवेचन हम सागोपाग पाटन और वातापिके ऐतिहासिक लेखों ( चौलुक्य चद्रिका ) मे कर चुके है। अत यहापर केवल उत्तर कोकण और लाटके सबधमें विचार करते है।

उत्तर कोकणसे स्थानकके शिल्हाराओका समावेश होता है। परन्तु लाट नामसे किसका उल्लेख किया गया है यह समझम नहीं आता। क्योंकि लाट नामसे नदीपुरके चौलुक्योका ग्रहण होता था जो तत्कालीन इतिहासमें स्पष्टरूपेण पाया जाता है। हमें यह निश्चित रूपसे ज्ञात है कि लाट नदीपुरके चौलुक्योका मूलोच्छेद इस समयसे लगभग ८०–८५ वर्ष पूर्व तथा पाटनपति सिद्धराजके राज्यारोहनसे लगभग ७–८ वर्ष पश्चात हो चुका था। और लाटका उत्तर प्रदेश (नर्मदा और महीके मध्यवर्ती भूभाग) पाटन राज्यमे मिला लिया गया था। इसके पश्चात लाट नामसे किसीभी राजवशकी सस्थापनाका परिचय नहीं मिलता। और न हम पाटनवालोको ही अवतिनाथ उपाधिसे समान लाटपति अथवा लाटेश्वर उपाधि धारण करते पाते है। पुनश्च जवकि उनका उल्लेख "गर्जत गुर्जर" नामसे किया गया

है, और साथही लाट विजयके पश्चात् गुजरातपर आक्रमणका वर्णन दृष्टिगोचर होता है तो वैसी दशामें लाट नामसे अवश्य किसी अन्य वंशका संकेत किया गया है। हमारी इस धारणाका समर्थन इससेभी होता है कि इस घटनाके लगभग ५० वर्ष पश्चात् यादवराज महादेवके समयमेंभी कोकण लाट और गुजरातका भिन्न भिन्न राज्यवंशोंके नामसे उल्लेख किया गया है। अतः अब विचारना है कि लाट नामसे किस वंशका संकेत है।

हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि उत्तर कोकण और दक्षिण लाट मध्य वातापि कल्याणके चौलुक्य राज्यवंशोद्भव वनवासी युवराज वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिहके पुत्र विजयसिहने एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था। जिसकी प्रथम राजधानी मंगलपुरी दूसरी वासन्तपुर और तीसरी वासुदेवपुरमें थी। उसके तथा उसके वंशजोंके अधिकारमें लाटका दक्षिणांश एवं तापी और गोदावरीके मध्यवर्ती भूभागका होना निर्भ्रांत रूपेण पाया जाता है। अत. हम निश्चयके साथ कह सकते हैं कि कथित विवरणमें लाट नामसे विजयसिहके वंशजोका संकेत किया गया है। पुनश्च हमें यह भी निश्चित रूपसे ज्ञात है कि विजयसिहके वंशजोंको पाटनवालो ने पराभूत कर स्वाधीन किया था। परन्तु वीरसिह नामक राजाने पाटन-वालोंसे अपनी साज्य लक्ष्मीका उद्धार कर अपनी स्वाधीनता की पुनः घोषणाकी थी। वीरसिह की कथित स्वतंत्रता की तिथि प्रस्तुत युद्धके आसपासमें है। सम्भव है कि उसकी यह स्वतत्रता सिघनकी कृपाका फल हो अथवा सिघन और पाटनवालोंके युद्ध पश्चात इनकी अशक्ततताका उपयुक्त लाभ उठा वह स्वतंत्र बन गया हो।

सिघनके बाद उसका पुत्र जयतुंग द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण गद्दी पर आया। कृष्णका उत्तराधिकारी उसका छोटाभाई महादेव हुआ। महादेवने शिल्हार वंशका उत्पाटन कर उत्तर कोकणको अपने राज्यमें मिला लिया। महादेवके राज्यकालमें ही दिल्ली सुलतान जलालुद्दीन खिलजीके भतीजेंने देवगिरी पर आक्रमण कर बहुतसा धन रत्न प्राप्त किया था। महादेवका उत्तराधिकारी रामचन्द्र हुआ। रामचन्द्र दिल्लीके गृह कलहसे लाभ उठा स्वतंत्र बन बैठा परन्तु अलाउद्दीनके सेनापति मालिक काफूरने रामचन्द्रका मद चूर्ण किया। रामचन्द्रका उत्तराधिकारी शंकर हुआ। शंकर के समय देवगिरीके यादव वंशका सदाके लिये संसारसे अस्तित्व उठ गया।

नवानगर वासुदेवपुर ( वांसदा ) का पुरातन चौलुक्य मन्दिर ।

त्रिभुवनपालको नदीपुरके चौलुक्योंके साथ युद्ध करते पाते हे। त्रिभुवनपाल पाटनवालोंका लाट देशीय सर्व प्रथम दण्डनायक था। कथित युद्ध और पराभवके समय नदीपुरके सिंहासन पर पद्मपालको पाते हे। अत हम नदीपुरके चौलुक्योंके अस्तित्वको विक्रम सवत् ११५५ के आगे नही मान सकते। क्योंकि इस समय भृगुकच्छादि लाटके भूभागपर पाटनवालोंके अधिकारका स्पष्ट परिचय मिलता है। एव तापीके दक्षिणवर्ती लाटके भूभागपर एक नवीन चौलुक्य वशको अधिष्ठित पाते है। उक्त राज्यवशका अधिकार कथित प्रदेशमें सभवत विक्रम ११५९ के पूर्व हुआ था। अत हम कह सकते हे कि नदीपुरके चौलुक्य उत्तरसे पाटनवालों और दक्षिणसे नवीन चौलुक्य वशकी राजलिप्सा चक्रमें पडकर पिस गये और उनका अस्तित्व ससारके मान चित्रसे मदाके लिये उठ गया।

## वासुदेवपुरके चौलुक्य।

जिस समय लाट नदीपुरके चौलुक्य अपनी राज्य लक्ष्मीको पाटनके चौलुक्योंके कराल गालसे बचानेके लिये प्राण पणसे चेष्टा कर रहे थे। उसी समय लाटके राजनैतिक रगमचपर विजयसिंह केशरी विक्रम नामक नवयुवक खेलाडी उपस्थित हुआ। और अपनी तलवारके चमत्कार दिखा, तापी नदीके दक्षिणवर्ती और उत्तर कोकणके उत्तरीय सीमा प्रदेश तथा सह्याद्रिके पश्चिमोत्तरवर्ती भूभागको अधिकृत कर मगलपुरी नामक नगरीमें चौलुक्य वशका नवीन राज्य स्थापित किया। इस नवीन राज्यवशका वातापि कल्याणके प्रधान चौलुक्य वशके साथ प्रत्यक्ष सबध था। कल्याण नगरवसानेवाले वातापिनाथ आहवमल सोमेश्वरको सोमेश्वर भुवनमल, विक्रमादित्य त्रिभुवनमल और जयसिंह त्रयलोक्यमल नामक तीन पुत्र थे। उनमेंसे सोमेश्वर और विक्रमादित्य क्रमश वातापि कल्याणके सिंहासनपर वैठे। विक्रम जब अपने बडेभाई सोमेश्वरको गद्दीसे उतार अपने आप राजा बन वैठा तो उसने अपने छोटेभाई जयसिंहको वातापि कल्याणका भावी उत्तराधिकारी स्वीकार किया। एव उसे पिता और सोमेश्वरके समयसे प्राप्त जागीरसे अतिरिक्त बनवासी प्रदेशकी नवीन जागीर प्रदान की। एक प्रकारसे जयसिंह और विक्रमके मध्य वातापि कल्याणका राज्य बट गया। जयसिंहने अपनी राज्यधानी बनवासीको बनाया, और बनवासी युवराजके नामसे शासन करने लगा। परन्तु विक्रमकी कूट नीतिसे असतुष्ट हो तलवारकी धारसे विवादका फैसला

करनेके लिये युद्ध क्षेत्रमें प्रवृत्त हुआ। दोनोंकी सेनायें भिड़ गई। प्रथम जयसिंह विजयी हुआ, परन्तु अन्तमें उसे हारकर जंगलोंमें भागना पड़ा। कुछ दिनोंके बाद उसके पुत्र विजयसिंहने अपने बाहुबलसे लाट और उत्तर कोकणके मध्यवर्ती भूभागको अधिकृत कर मंगलपुरीमें विक्रम ११४९ के आसपास नवीन राज्यकी स्थापना की थी। विजयसिंहके वंशधरोंने कुछ दिनों तक सुख और शान्तिके साथ मंगलपुरीमें राज्य किया। परन्तु उन्हें पाटनवालोंके द्वारा पराभूत होकर मंगलपुरी छोड़ वसन्तपुरमें आना पड़ा। वसन्तपुर आनेके पश्चात् उन्होंने पाटनवालोंसे अपनी राज्य लक्ष्मीका उद्धार किया। अनन्तर इस वंशकी एक शाखा पुन: मंगलपुरी नामक स्थानमें स्थापित हुई। इस वंशके पांच शिलालेख तीन शासन पत्र और एक राज प्रशस्ति हमें प्राप्त है। इस वशके आश्रित महात्मा शंकरानंद भारतीके शिष्य कृष्णानंद भारती स्वामीके तापी तटपर बनाए हुए शिव मन्दिरकी प्रशस्ति है। अत: इस वंशके इतिहासको ज्ञापन करनेवाले ६ शिलालेख और तीन शासन पत्र हैं। इन लेखोंकी तिथि विक्रम संवत ११४९ से १४४४ पर्यन्त है। इन लेखोंको इस ग्रंथके वासुदेव शीर्षकके अन्तर्गत उद्धृत किया गया है। इनके पर्यालोचनसे इस वंशका वातापि कल्याणके चौलुक्य वंशके साथ वंशगत संबंध प्रकट होनेके साथही इनकी वंशावली निम्न प्रकारसे उपलब्ध होती है।

Plate No 11.
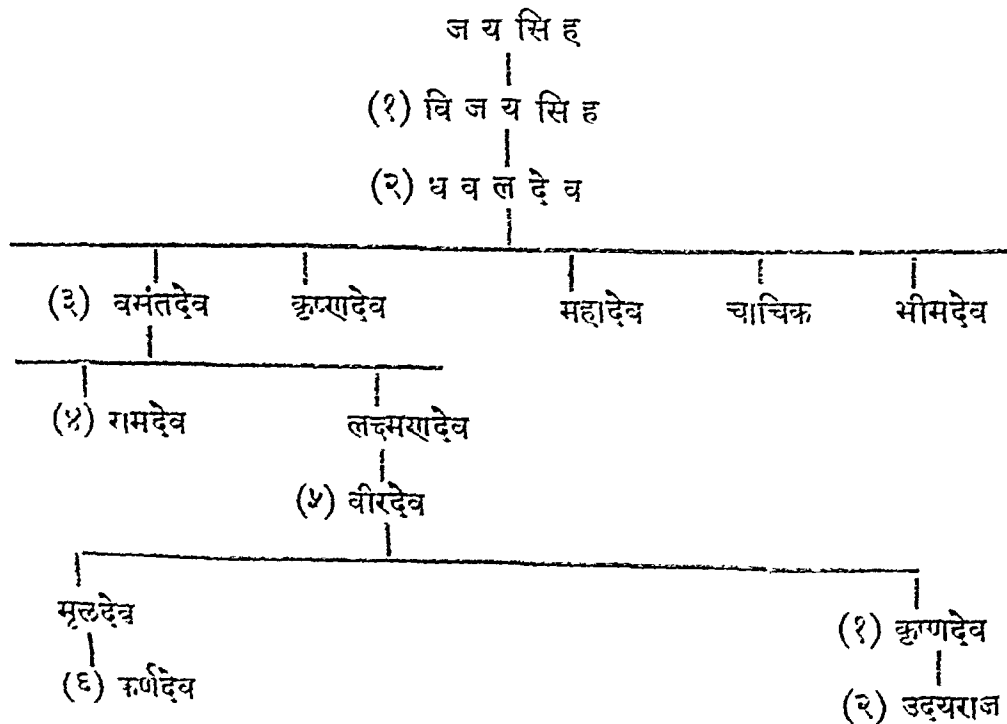
नवानगर वासुदेवपुर ( वासदा ) का पुरातन चौलुक्य मन्दिर।

इन लेखोंपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि पाटनवालोंके साथ इनका प्रकार सघर्ष हुआ था। केवल सघर्षही नहीं वरन उन्होंने इनकी स्वतत्रताका अपहरण किया था। जिसका उद्धार वीरदेवने किया, और मगलपुरीके स्थानमें वसन्तपुरको अपनी राजधानी बनाया। वीरदेवके मूलदेव और कृष्णदेव नामक दो लडके थे। कृष्णने मूलदेवको मार डाला। बादको वह मगलपुरीमें जाकर रह गया, जहापर उसके वशजोंने पाच वश श्रेणीपर्यंत राज्य किया था। वसन्तपुरमें मूलदेवके वशज रहे। जहा सात पीढीपर्यंत उन्होंने अप्रतिबाधित रूपसे राज्य किया। अनन्तर किसी शत्रुने आक्रमण कर वसन्तपुरका नाश किया। वसन्तपुरका अन्तिम राजा भीमदेव अपने परिवारको लेकर वासुदेवपुरमें चला आया। वासुदेवपुर आनेके बाद उसने अपने बडे लडके वसन्तदेवके पुत्र वीरदेवको राज्यभार देकर अपनी इहलीलाको समाप्त किया। वसन्तपुरके नाश पश्चात् वासुदेवपुरका प्रथम राजा वीरदेव हुआ।

वीरदेव तथा उसके वशजोंने कब तक वासुदेवपुरमें राज्य किया इसका अभी तक कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। बहुत सभव है कि भावी अनुसधान वासुदेवपुर-वशके वशधरोंका परिचय हमें दे।

# विजयपुर ( वांसदा ) के चौलुक्य ।

सम्प्रति वासुदेवपुरका ६० प्रतिशत् भूभाग गायकवाड़ और ब्रिटिश सरकारके अधिकारमें है। संभवतः उसका ५ प्रतिशत धर्मपुर और मरगनाके और शेषभूत ५ प्रतिशत अंशपर आजभी चौलुक्य वंशका अधिकार है। वर्तमान राज्यवंशकी परंपरा राजवंशका इस भूभागपर अस्तित्व अलाउद्दीन खिलजीके समयसे बताती है। और उसका वंशगत संबंध पाटनके चौलुक्य वंशके साथ मिलाती है। उक्त दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं, पुनश्च यह अकाट्यरूपेण सिद्ध हो चुका है कि पाटनका चौलुक्य वंश जहां उत्पन्न हुआ वहांही लीन हुआ। जबकि पाटन राज्यका मूलोच्छेद और उसकी वंशतंतु भस्मीभूत हो गई, तो ऐसी दशामें वर्तमान राज्यवंशको पाटनका वंशधर बतलाना परंपराकी धृष्टता है। इतना होते हुए भी परंपरामें ऐसी बात है कि जिनके बलपर राज्यवंशका अस्तित्व इस भूभागपर ६०० सौ वर्ष पूर्वभावी माननेमें आपत्तिकी अधिक संभावना नहीं है। राज्यकी परंपरा तथा अन्यान्य ऐतिहासिक लेखों इत्यादिको दृष्टि कोणमें रखते हुए हमारी दृढ धारणा है कि वर्तमान राज्यवंशका संबंध पाटनसे न होकर पुरातन वासुदेवपुरके साथ हो सकता है। परन्तु यह विषय अनुसंधान साध्य है। इस हेतु सम्प्रति इसका विवेचन छोड़ वर्तमान राज्यवंशके इतिहासकी झलक दिखाते हैं।

परंपरा कथित वंशावलीका मराठी और ब्रिटिश रेकार्डके साथ तारतम्य सम्मेलनके अनन्तर पूर्वकी कुछ श्रेणियां छोड़ राजवंशकी वंशावली निम्न प्रकारसे उपलब्ध होती है।

नवानगर—वासुदेवपुर ( नाम । ) मन्दिर का अन्तर चित्र।
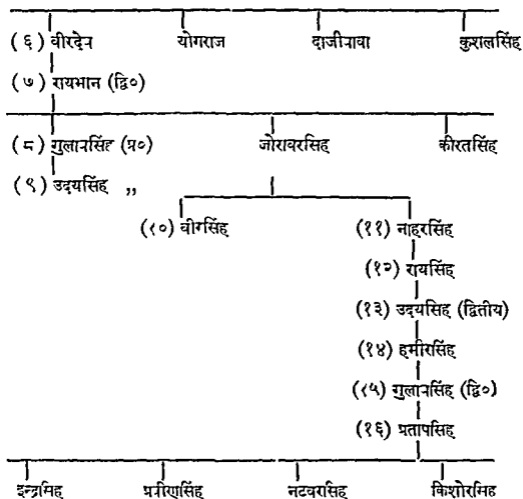
वर्तमान राज्यवंशको वासदीया सोलंकी कहते हैं। परंपराके अनुसार इसका प्राचीन निरूद नामदपुर नरेश पाया जाता है। राजकीय प्राचीन कागजोंसे प्रकट होता है कि इस राज्यका नाम विजयपुर था और कागजोंमें इसका उल्लेख संस्थान विजयपुर-प्रांत बासना मिलता है। इस राज्यवंशके अस्तित्वका ज्ञापक हमारे पास विक्रम संवत् १६५१ का एक प्रमाणपत्र है। इसके अतिरिक्त पारसियोंके इतिहाससे राज्यवंशका अस्तित्व १००-१५० वर्ष और पीछे चला जाता है। और लगभग प्राचीन वासुदेवपुरकी समकक्षतामें पहुंचा जाता है।

वर्तमान राज्यका अधिकार मुगलोंके समयमें आजसे कई गुने भूभागपर था। और वह समुद्रपर्यंत फैला हुआ था। परन्तु संसार चक्रकी नैसर्गिक गतिके अनुसार इस राजवंशका अधिकार क्रमशः ह्रास होता हुआ आज नाम मात्रका रह गया है। मुगल साम्राज्यके अन्त सम-

यमेंभी इस वंशके अधिकारमें दक्षिण लाट और उत्तर कोकणका एक बहुत बड़ा भाग था। परन्तु मरहटोंके उत्कर्ष पश्चात् इनके राज्य लोलुप अधिकारिओंने राज्यवंशकी अशक्ततासे लाभ उठा अपना अधिकार जमाना प्रारंभ किया। सर्व प्रथम पेशवाओंने राज्यवंशका विरोध किया। पेशवाओंका अनुकरण दूसरे सैनिकोंने किया। पेशवा और दभाड़े और गायकवाड़ आदिकी स्पर्धा और राज्य लिप्साने ताण्डव नृत्य करना प्रारंभ किया। वे प्रातः स्मरणीय छत्रपति शिवाजी महाराजके साधु उपदेशको भूल गये और यहां तककि गये दिन आपसमें लड़ने भिड़ने लगे। राजनैतिक दृष्टिकोणमें अपने लाभको लक्ष रखकर विदेशिओं (अंग्रेजों) से संधि आदि कर एक दूसरेपर आक्रमण कर महाराष्ट्र शक्तिके मूलमें तुषारपातारंभ किया। उनकी दृष्टिमें स्वामी भक्ति और स्वामी द्रोहमें कुछभी अन्तर न रहा। उसी प्रकार स्वजाति और स्वदेश प्रेम तथा जातिद्रोह किसीभी गणनाकी वस्तु न रही। यदि कोईभी वस्तु उनकी दृष्टिमें महत्वकी थी तो वह व्यक्तिगत लाभ नामक वस्तु थी।

इनकी इस महत्वाकांक्षाने भारतमें कालरात्रि उपस्थित की। ये राहु और केतुके समान सूर्य और चंद्रवंशी राजपूत राजवंशोंको पीड़ा देने लगे। एकके वाद दूसरा राजपूत राज्य इनके शिकार होने लगे। यदि पेशवाओंने विद्रोह न किया होता—पेशवाकी वढ़ती शक्तिका विरोध गायकवाड़ और दभाड़े आदि मरहठे न किये होते—पेशवाओंसे विरुद्ध वे निज़ामुलमुल्क आदि मुसलमानोंसे न मिले होते—पेशवाकी शक्तिका नर्मदा तट पर क्षय न किये होते और अन्ततोगत्वा गायकवाड़ पेशवाके विरुद्ध अंग्रेजोंसे न मिला होता तो न मालूम आज भारतका इतिहास किस प्रकार लिखा जाता। यह हम अस्वीकार नही करते कि पुराकालमें भारतके किसी सैनिकने पुराने राजवंशकी घटती शक्तिका उपयुक्त लाभ उठा नवीन राज्यवंश स्थापित न किया था। ऐसा दृष्टांत केवल भारतकेही नहीं वरन सारे जगतके इतिहासमें पाया जाता है। परन्तु पेशवा, गायकवाड़, दभाड़े, सिंधिया, होल्कर और पवारके परस्पर संघर्ष और मरहठा तथा राजपूत विग्रहने जो नग्न ताण्डव नृत्य किया था, उसका दृष्टांत भारतको कौन वतावे, सारे संसारके इतिहासके पन्ने उलटने परभी नही पाया जा सकता। इनका संघर्ष यदि राज्यसत्तात्मक महत्वाकांक्षाकी परधिमेंही परिमित होता तो देशको उतनी हानि न उठानी पड़ती। किंतु इनके संघर्षने आगे चलकर ब्राह्मण और अब्राह्मणका रूप धारण किया, और उसका शिकार सर्व प्रथम कायस्थ (प्रभु) जातिको होना पड़ा। कायस्थ जाति महाराज छत्रपति

शिवाजीकी साम्राज्य धुरीका सचालन करनेवाली थी। बाजी प्रभुकी स्वामी भक्ति और पनाला युद्ध, ससारके इतिहासमे सुवर्णाक्षरोंम लिखे जानेके योग्य है। परन्तु इस स्वामी भक्त जातिको शिवाजीके वशजोंके साथ अपनी अनन्य भक्तिके फल स्वरूप पेशवाओंके हाथमे नाना प्रकारकी यन्त्रणाय भोगनीं पडी। यहा तक कि मरहठा साम्राज्यके न्यायोचित उत्तराधिकारीका साथ न छोडनेकी धृष्टतामें कितने वीरोंको असह्य यत्रणायें भोगनीं पडी। अनन्तर ब्राह्मण शक्तिके उत्कर्ष और उनके, वज्र हृदयको दहलानेवाले, पैशाचिक कार्यको देख उनकी एक छत्रताके भावी परिणामकी चिन्ताने अब्राह्मण मरहठोंको चिन्तित किया। और वे बिना किसी पूर्व निश्चयके स्वभावत उसके नाशम प्रवृत्त हुए। उन्होने उसके नाशमें प्रवृत्त होतेही उचित अनुचितका कुछभी ध्यान न किया। चाहे जिस साधन, मुसलमानों अथवा, अग्रेजो आदि किसीभी विदेशी शक्तिके सहायसे क्यों न हो उसके नाशम प्रवृत्त हुए। यद्यपि इन्होने ब्राह्मण शक्तिका नाश सपादन किया, परन्तु उन्हें अपने देशद्रोह और विदेशियोंकी सहायता प्राप्त करनेका परिणाम शीघ्रही भोगना पडा। इनके अधिकृत भूभागको क्रमश विदेशी अपहरण करने लगे अन्ततोगत्वा इनकोही नहीं वरन समस्त भारतको पराधीनताकी श्रृखलामें आबद्ध होना पड़ा।

मरहठोंके परस्पर सघर्षके पश्चात् राजपूत और मरहठा सघर्षका नग्न दृश्य हमारी आँखोंके सामने आता है। इस सघर्षकी जडमेंभी ऊँच और नीचका भाव भरा हुआ प्रतीत होता है। यदि ऐसी बात न होती तो गायकवाडको, मुसलमानोंके समान गुजरात और काठियावाडके वाँसदा आदि कतिपय राजवशोंको छोड प्राय सभी राजपूत राजवशोंको अपनी कन्यायें देनेके लिये आप बाध्य करते न पाते। पुनश्च ऐसा भाव न होता तो अनेक राजपूतोंकी कन्यायें प्राप्त करनेके पश्चत्भी बडोदाके गायकवाड राजवशको राजपूत समाजसे बहिष्कृत न पाते। मरहठोंके परस्पर सघर्षने यदि भारतके भाग्यको रसातल गमनोद्यत किया था, तो राजपूत मरहठा सघर्षने उसे औरभी शीघ्र गामी बनाया।

हम ऊपर बता चुके है, कि मरहठा की महत्वाकाक्षा ने भारत में कालरात्रि उपस्थित की। वे राहु और केतु के समान राजपूत राजवशों को पीड़ा देने लगे। एक के बाद दूसरा इनका शिकार होने लगा। अत यहा पर राजपूत राजवशोंकी दयनीय अवस्था का चित्रण करना आवश्यक प्रतीत होता है। राजपूतोंने शिवाजी की सद्भावना से प्रेरित हो उनका हाथ

मुसलमान साम्राज्य के विनाश में वटाया था। क्योंकि उनके सामने हिन्दू धर्म और साम्राज्य संस्थापना का सुखद चित्र अंकित हुआ था। वे समझते थे कि मरहठों का हाथ बटानेसे, मुसलमानों की पारतन्त्र्य शृंखला से निकल, स्वातन्त्र्य सुख का उपभोग करेंगे, परन्तु उन्हें कड़ाही से कूद अग्निकुण्ड में गिरने का अनुभव होने लगा। वे पद पद पर लांछित और विताड़ित होने लगे। प्रतिदिन अपने राज्य और स्वातन्त्र्यका अपहरण देख हाथ मलने लगे। परन्तु अब पछताने से क्या होने वाला था। क्योंकि समय निकल चुका था। मरहठे प्रबल और अद्वितीय बन चुके थे। उनका सामना करना साक्षात यमराजको आमन्त्रण करना था। कितनोंने विवश हो गायकवाड़ आदिको अपनी कन्यायें दे, अपने राज्यकी ही रक्षा नही वरन उसकी वृद्धि की, पर जिन्हें राजपूत शान की आन थी, वे कोपभाजन बन विपत्ति के सागर में पड़े और डूब मरे जो बचे वे "नकटा जीवे बुरी हवाल" के समान धृक् जीवन हो गये। उनकी नींद हराम हो गई, और उनके राज्य का अपहरण नाना प्रकार से होने लगा।

लाटके बांसदा राज्यकोभी इनके चक्रमें पड़ना पड़ा। प्रबल प्राक्रान्त पेशवा और गायकवाड़, राहुके समान इसका ग्रास करनेके लिये अग्रसर हुए। राजवंशके गृह कलहको उद्दीप्त कर अपनी महत्वाकांक्षाको चरितार्थ करने लगे। कभी एकको तो कभी दूसरेको सहाय देने लगे। सहायताके उपलक्षमें शिवंदी खर्चके नामसे हजारोंकी थैली एंठने लगे। इसके अतिरिक्त नजरानेकी थैलीभी लेने लगे। आज इसको गद्दीपर बैठाया, और नज़रानेकी भारी रकम करार करवायी, तो कल उसे गद्दीसे उतार, दूसरेको बैठाया, और उससे भी नज़राना कबूल कराया। राज्यलोलुप स्वार्थान्ध जोरावरसिंह, पेशवा और गायकवाड़के हाथकी कठपुतली बना। उसने ईस्वी सन १७३६ से लेकर १७७६ पर्यन्त नाना प्रकारसे राज्यको हानि पहुंचायी। होते हवाते राज्यवंशके पूर्णविनाशकी समस्या उपस्थित हुई। परन्तु गुजरात ही नही वरन भारतके राजनैतिक मंचपर ब्रिटिश जातिकी उपस्थिति और पेशवा गायकवाड़-संघर्षने राजपूत राजवंशोंके लिये त्राणका रूपधारण किया।

तत्कालीन बांसदा नरेशने सन् १७८०-८२ वाले ब्रिटिश मरहठा युद्धमें अंग्रेजोंका साथ दिया और उनके साथ मैत्री स्थापित की। इतनाही नही वीरसिंहके वंशजोंने सन १८२० पर्यंत अनेक बार ब्रिटिश जातिकी सहायता गाढ़े समयमें की है।

आक्रमणके संबन्धमें और द्वितीय वार वांसदाके राजके अस्तित्व संबंधमें दिल्लीके सुलतान अलाउद्दीनका उल्लेख कर चुके है। एवं संजाण पर आक्रमण करनेवाले मुसलमान सेनापति अल्लफखांको और मालवाके सुलतानोंका उल्लेख विस्तारके साथ किया गया है। पुनश्च वासुदेवपुरकी पुरातन राज्यधानी वसन्तपुरको लूटनेवाले अज्ञात शत्रुका विचार करते समय गुजरातके सुलतानोंका उल्लेख किया है। एवं अत यहां पर भारत वर्षमें मुसलमान जातिके उत्कर्ष और पतन सम्बन्धमें कुछ विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

मुसलमान धर्मके संस्थापक हजरत मुहम्मद साहेबका जन्म अरबकी कुरेशी जातिमें विक्रम संवत् ६२८ में हुआ था। उन्होंने अपनी ४० वर्षकी अवस्था में विक्रम संवत् ६६८ में अपनेको ईश्वरीय दूत घोषित कर उपदेश देना प्रारम्भ किया था। उन्होंने लगभग १२ वर्ष पर्यन्त अपने मतका प्रचार किया। परन्तु विक्रम ६७६ में विरोधियोंकी प्रबलताके कारण उनको मक्का छोड़ मदीना जाना पड़ा। और उनके मक्कासे मदीना प्रवास (हिजरत) के उपलक्षमें हिजरी नामक संवत् उनके अनुयायियोंने चलाया, हिजरत करनेके ११ वर्ष बाद अर्थात् हिजरी सन ११ तदनुसार विक्रम ६८६ में हजरत मुहम्मद साहबका स्वर्गवास हुआ। हजरत मुहम्मद साहबकी गद्दीपर बैठनेवाले खलीफा कहलाये।

हजरत मुहम्मद साहबके चलाये धर्मको माननेवाले मुसलमान कहलाये। मुसलमानों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी होने लगी। थोड़े समयके भीतर मुसलमान जाति एक बहुत बड़ा साम्राज्यकी भोगनेवाली हो गई। द्वितीय खलीफा उमरके समय (जिसका राज्य काल हिजरी १३–२०, तदनुसार विक्रम संवत ६६१–७०१) लाट देशकी राजधानी भृगुकच्छ पर आक्रमण करनेको एक सेना जल मार्गसे और दूसरी स्थल मार्गसे भेजी गई। जल मार्गसे आनेवाली सेना थाना तक आई, परन्तु उसे वापस जाना पड़ा। एवं स्थल मार्गसे आनेवाली सेना सिन्धुमेंही उलझ गई।

इस समयके पश्चात् मुसलमानोंके अनेक आक्रमण भारतपर हुए। परन्तु हमारे इतिहासके साथ उनका कुछभी संबध नही है। अत. उसे पटतर कर आगे बढ़ते है। खलीफा हस्सामके समय (जिसका राज्यकाल हिजरी १०५ से १२० तदनुसार विक्रम ७८१—८०० पर्यन्त है) सिन्धके हाकिम जुनेदकी अध्यक्षतामें मुसलमानी सेनाने सिन्धसे

आगे पैर बढ़ाया। उसकी एक टुकडी चित्तौर होकर उज्जैन पर्यंत गई और दूसरी टुकडी भीनमाल होकर भृगुकच्छसे और आगे कमलेज पर्यंत चली आई थी। परन्तु उसे विक्रम ७६६ म हार कर लौटना पड़ा था।

इस घटनाके अनन्तर यद्यपि मुसलमानोंके भारतीय अधिकारकी वृद्धि क्रमश होती गई। यहातक कि भारतमें तुर्क वशकी स्थापना हो गई। भारतकी राजधानी दिल्ली इनके अधिकारमें आ गई। परन्तु हमारे इतिहासके साथ उनका कोई सपर्क न हुआ। परन्तु *मुसलमानोंके तीसरे राजवश ( खिलजीवंश ) के तीसरे सुलतान अलाउद्दीन खिलजीके* साथ हमारा सबध स्थापित होता है। अलाउद्दीन खिलजी अपने चचा जलालुद्दीनके समय कड़ाका हाकिम था। उसी समय उसने देवगिरीके यादवोंपर आक्रमण कर बहुतसा धन रत्न प्राप्त किया था। एवं हिजरी सन ७०६ तदनुसार विक्रम १३५७ में वह दिल्हीका सुलतान हुआ और गद्दीपर बैठतेही उसने राजपूताने पर आक्रमण किया, एव रणथभोर पर विक्रम १३५८ में—चित्तौरपर १३६० में। अनन्तर सिवाना–जालौर—पाटन—मालवा आदिको अपने आधीन किया। यहा तककी अलाउद्दीनके सेनापति मलिककाफूरने देवगिरीके यादवराव रामदेव–वगलाणके राजा प्रतापचन्द्र, होयसल राज आदिको पराभूत किया। और एक प्रकारसे समस्त भारत अलाउद्दीनके अधिकारम आ गया। अलाउद्दीनका *राज्यकाल विक्रम १३५३ से १३७२ तदनुसार हिजरी ७०६ से ७२५ पर्यंत है।*

## गुजरात के मुसलमान।

अलाउद्दीन खिलजीने विक्रम १३६५ के आसपास पाटनके वघेल वशका उत्पाटन कर गुजरातको अपने राज्यम मिला लिया। और गुजरातम अपना सूबा नियुक्त किया। इस समयसे लेकर विक्रम सवत् १४५३ पर्यंत ( खिलजी वशके अन्त समय और इसके बाद तुगलकोंके आरंभसे मध्यकाल पर्यंत ) गुजरातका शासन दिल्ली सुलतानोंके सूबाओंने किया। परन्तु उसी वर्ष मुजफ्फरशाहने गुजरातमें स्वतत्र मुसलमान राज्यकी स्थापना की। इस वशका राज्यकाल विक्रम १४५३ से १६१८ पर्यंत १६५ वर्ष है। इस अवधिम इस वशके १७ राजा हुए। गुजरातके मुसलमानोंकी वशावली निम्न प्रकारसे है।

मुजफ्फरशाह
|
अहमदशाह
|
मुहम्मद करीमशाह
|
कुतबुद्दीनशाह
|
दाऊदशाह
|
महमूदबेगडा
|
मुजफ्फरशाह (द्वितीय)
|
सिकन्दरशाह
|
नसीरखां
|
बहादुरशाह
|
मीरमहमदशाह
|
महमूदशाह
|
अहमदशाह (द्वितीय)
|
मुजफ्फरशाह (तृतीय)
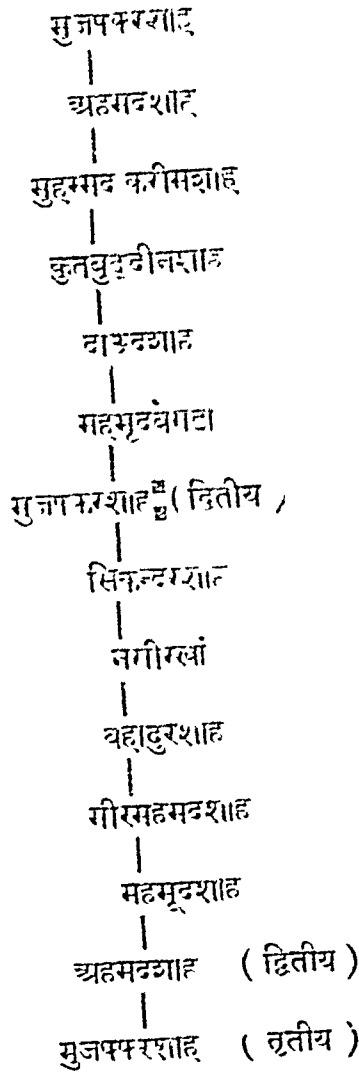
मुजफ्फरशाह यद्यपि स्वतंत्र हुआ परन्तु उसके अधिकारमें गुजरातका बहुतही थोड़ा भाग आया। परन्तु मुजफ्फरशाहके उत्तराधिकारी अहमदशाहने जूनागढ़, ईडर, धार आदिके साथ लड़ झगड़ अपना अधिकार चारों तरफ बढ़ाया। एवं अपने नामसे अहमदाबाद बसा, उसे अपनी राजधानी बनाया। अहमदशाहका पौत्र महमद बेगडा अपने वंशका परम प्रतापी सुलतान हुआ। इसने कच्छ, काठियावाड, चांपानेर, मालवा और सूरत आदिको विजय कर, अपना अधिकार खूब बढ़ाया। एवं अपने नामसे महमदाबाद बसाया। महमद बेगडाके बाद बहादुरशाह अपने वंशका परम विख्यात राजा हुआ। इसने मालवा, मेवाड और मुगलोंसे घोर युद्ध किया। इसके साथही मुसलमान राजका सौभाग्य सूर्य अस्ताचलोन्मुख

हो चला था। परन्तु किसी प्रकार स्वतन्त्रता बनी रही थी। किन्तु मुजफ्फरशाह तृतीयके समय विक्रम १६१८ में मुगल सम्राट अकबरने गुजरातको अपने राज्यमें मिला लिया।

## लाट और गुजरातमें मालवा के सुलतान।

जिस प्रकार गुजरातके बघेलाको नाशकर अलाउद्दीनने गुजरातमें सूबा नियुक्त किया था उसी प्रकार मालवा धारके परमारोंका उत्पाटन कर उसने सूबा नियुक्त किया था। अलाउद्दीनके समय १३६५ से लेकर विक्रम १४३० पर्यन्त मालवाका शासन दिल्हीके सूबेदार करते थे। परन्तु उक्त वर्ष दिलावरखां उर्फ अमीशाहने मालवामें स्वतन्त्र मुसलमान राजकी स्थापना की थी। और परमारोंकी राजधानी धारको अपनी राजधानी बनाया। दिलावरखांका उत्तराधिकारी उसका पुत्र होशंगशाह उर्फ अल्फखां मालवाका सुलतान हुआ। इसने धारसे राजधानी उठा माँडूमें लाकर अनेक सुन्दर भवन आदि बनाये। और दो बार गुजरातपर आक्रमण किया। प्रथम बार इसको सफलता नहीं प्राप्त हुई परन्तु दूसरी बार विजयी हुआ और गुजरातको पूर्ण रूपसे लूटा।

## गुजरात में मुगलवंश

तैमूरने यद्यपि भारतमें लूटपाट मचाअपना आतंक बैठा दिया था, तथापि भारतमें मुगलवंशका राज्य स्थापित करनेवाला बाबर है। बाबरनेभी यद्यपि काबुलको विजय कर बादशाहकी उपाधि धारण की थी और अनेक बार हिन्दुस्तानमें आकर लूटपाट मचाया था। परन्तु विक्रम संवत् १५८२ में पानीपतकी लडाईमें बाद इब्राहिमलोदीको मार दिल्हीका बादशाह बना। दूसरे वर्ष विक्रम १५८३ में कनवा युद्धमें राजा संग्रामसिंहको हराया। चन्देरीमें मेदनीरायको पराभूत किया। अफगानोंको पराभूत कर बिहारको आधीन किया। और इसकी मृत्यु विक्रम १५८६ में हुई। मुगल वंशावली निम्न प्रकारसे है।

बाबर
|
हुमायूँ
|
अकबर

जहांगीर
|
शाहजहां
|
औरंगजेब
|
वहादुरशाह
|
जहांदारशाह
|
फरुखसियार
|
रफीउज्जात
|
महम्मदशाह
|
अहमदशाह
|
आलमगीर
|
शाहजहां
|
शाहआलम
|
अकवर
|
वहादुरशाह

वावरका उत्तराधिकारी हुमायूँ हुआ। हुमायूँका संघर्ष गुजरातके वहादुरशाहके साथ हुआ था। परन्तु गुजरातका कोई भाग उसके अधिकारमें नही आया। हुमायूँके पुत्र अकवरके अधिकारमें गुजरात प्रान्त मुजफ्फरशाह तीसरेके हाथसे विक्रम १६१८ में आया। तव से गुजरातका शासन मुगलोंके सूवादार करते रहे। अकवरके समय गुजरातका प्रथम सूवादार टोडरमल था। और मुगल साम्राज्यके अन्तपर्यन्त अनेक सूवाओंने गुजरात देशकी सूवेदारी की। अकवरका प्रपौत्र वन्धुघाती और पितृद्रोही औरंगजेवके समय मरहठाओंका सौभाग्य सूर्य चमका। और शिवाजीने विक्रम संवत् १७२० में सर्व प्रथम मरहठाओंके शौर्यका

गुजरात वसुन्धराको परिचय कराया और सूरतको ६ दिनापर्यन्त खूबही लूटा। इसके पश्चात् विक्रम सवत् १७२६ मे द्वितीय बार सूरतको लूटा। औरंगजेबके बाद मुगल साम्राज्यका सौभाग्य सूर्य अस्त होने लगा था। परन्तु उसके उत्तराधिकारी बहादुर शाहके समय तक किसी प्रकार मुगल साम्राज्यकी प्रतिष्ठा बनी रही। इस समय शिवाजीके पौत्र शाहूने पुन महाराष्ट्र शक्तिका सगठन कर स्वातन्त्र्य ध्वजको ऊचा किया। बहादुरके बाद उसका बडा पुत्र जहादार बादशाह बना। जहादारके बाद उसका भतीजा फर्रुखसियार बादशाह बना। फर्रुखसियार मरहठा तथा अन्य सरदारोके षडयन्त्रका भोग बन मारा गया। और उन लोगोने रफीउद्दराजात को बादशाह बनाया। जो ६ महीना बाद मरा और रफीउद्दौला बादशाह बना। रफीउद्दौलाके बाद मुहम्मदशाह बादशाह बना। इसके समयमे मुगल साम्राज्यका अग भग होने लगा। निजाम स्वतत्र बन गया और मरहठोंने गुजरातमे अपना पाव जमाया। मरहठा सरदार खण्डेराव दभाड और दमाजीराव गायकवाडने सूरतको लूटा और १७७६ विक्रममे सोनगढको अपना केन्द्र बनाया। अनन्तर मरहठोका जोर बढने लगा। और इनका आतंक छा गया। पीलाजीराव गायकवाडके पुत्र दामजीरावने प्राय समस्त गुजरात और काठियावाडको हस्तगत किया। और मुगल साम्राज्यका गुजरातमें अन्त हुआ। यद्यपि इस समयसेभी आर आगे पर्यंत मुगल राज्यका दीप टिमटिमाता रहा परन्तु हमारे इतिहासके साथ उसका सम्बन्ध न होनसे हम इतनेहीसे अलम् करते है।

## लाटमे मरहठे।

हम ऊपर बता चुके है कि लाट वसुन्धराको छत्रपति महाराजा शिवाजी ने सर्व प्रथम मुगल सम्राट औरंगजेबके राज्यकाल विक्रम सवत् १७२० में पदाक्रान्त कर प्रसिद्ध सूरत नगरको ६ दिवस पर्यन्त लूट, बहुतसा धन रत्न प्राप्त किया था। एव इस घटनाके ६ वर्ष पश्चात् विक्रम १७२७ में पुन सूरतकी विसूरत की थी। उक्त दोनों लूट पाट लाटसे मुगल साम्राज्यका पतन और मरहठा जातिके अभ्युदयका श्री गणेश था। अत अब विचारना है कि मरहठा शौर्यका अभ्युदय किस प्रकार हुआ, और लाट देश उनके अधिकारमे क्यो कर आया। राजपूताना और मरहठा देशोंकी परपरा शिवाजीका सबध मेवाडके शिशोदिया वशके साथ मिलाती है। और

महाराष्ट्रकी परंपरा बताती है कि मेवाड़पति महाराणा अजयसिंह ने—जिसका समय विक्रम संवत् १३६५ के आसपास है—किसी मुन्ज नामक शत्रुको यद्यपि युद्धमें पराभूत किया, परन्तु उसके भाग जानेसे उसे संतोष नहीं हुआ। अतः उसने अपने दोनों पुत्रोंको मुन्जका वध कर उसका शिर लाने के लिया कहा। और प्रगट किया, कि यदि वे उसका शिर नही ला सकेंगे तो वह उन्हें अपना सच्चा औरस पुत्र नही मानेगा। परन्तु वे दोनों भाई भीरु थे और मुन्जका शिर लानेमें असमर्थ रहे। परन्तु उसके भतीजे हमीरने मुन्जका शिर अर्पण किया। इस पर राणा अजयसिहने उन्हें बहुतही बुरा भला कहा। जिसकी ग्लानिसे एकने आत्मघात किया, और दूसरा देश परित्याग कर डुंगरपुर चला गया। डुंगरपुर जानेवाले राजकुमारकी तेरहवीं पेढीमें सज्जनसिंह हुआ। सज्जनसिंह नामक व्यक्तिने मेवाड़ छोड़ दक्षिणमें आ कर बीजापुरके मुसलमानोकी सेवामें प्रवेश कर मधोल परगना, जिसके अन्तर्गत ८४ ग्राम थे—की जागीर प्राप्त की। हमारा संबंध शिवाजीके वंशगत इतिहाससे न होनेके कारण हम परंपराकी सत्यता अथवा असत्यता विवेचनमें प्रवृत्त न होकर ऐतिहासिक घटनाओंका दिग्दर्शन कराते हैं।

परंपराके अनुसार सज्जनसिंहको चार पुत्र थे। जिनमें सयाजी सबमें छोटा था। उसका पुत्र भोन्साजी जिसके नामानुसार उसके वंशज भोंसले कहलाये। भोन्साजीको १० लड़के थे। जिनमेंसे बड़े पुत्रका नाम मालोजीराव था। उसका शाहाजी हुआ। शाहाजीने अहमदनगर और बीजापुरके मुसलमानोंका दहिना हाथ बन मुगलोंसे घोर युद्ध किया था। इसी शाहाजीके पुत्र महाराजा छत्रपति शिवाजी हुए। शिवाजीका जन्म विक्रम १६८३ में हुआ था। शिवाजी अपनी माता और गुरुकी देखरेखमें शस्त्र विद्याका अध्ययन कर १८ वर्षकी अति युवावस्थामेंही मरहठा नवयुवकोंको एकत्रित कर हिन्दु साम्राज्यके पुनरुद्धारार्थ प्रयत्नशील हुए थे। और मावलको अधिकृत कर विक्रम संवत् १७०२ में महाराजाकी उपाधि धारण कर महाराष्ट्र राज्यकी स्थापना किया। एवं २८ वर्ष पश्चात् विक्रम १७३० में बड़ी धूमसे रायगढ़में राज्याभिषेक किया, और उसी वर्ष लाट देशमें आकर सूरतको लूटा था शिवाजीको सूरत लूटके समय वांसदावालोंसे अभूतपूर्व सहायता मिली थी। शिवाजीको संभाजी और राजाराम नामक

दो पुत्र थे। संभाजी जब वयस्क हुआ तो अत्यन्त दुराचारी निकला। उसके आचरणसे असंतुष्ट हो, जब शिवाजीने शासन किया तो वह विक्रम १७३४ में भाग कर एक मुगल सरदारके पास चला गया। परन्तु मुगलोंके व्यवहारसे संत्रस्त हो स्वदेश आ गया। किन्तु शिवाजीने उसे क्षमा न कर पन्हाला दुर्गमें कैद किया। इस घटनासे शिवाजीका हृदय अत्यन्त दुःखी रहने लगा, और विक्रम १७३६ में ५३ वर्षकी अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। और भारत उद्धार तथा हिन्दु साम्राज्यकी आशा उनके साथही चिताकी गोदमें चली गई।

शिवाजीकी मृत्यु पश्चात् संभाजीके बंदी होनेका लाभ उठा उसकी विमाता सोयराबाईने अपने पुत्र राजारामको रायगढमें गद्दीपर बैठाया और महाराष्ट्र सिंहासनकी जड़में गृह कलहका बीज वपन किया। परन्तु संभाजीको जब यह संवाद मिला तो किसी प्रकार पन्हालासे निकल अपने अनुचरोंको एकत्रित कर रायगढको हस्तगत किया। सोयराबाईको बंदी बना शिवाजीको विष देनेके अपराधमें मरवा डाला। और विक्रम १७३७ में गद्दीपर बैठा। एवं राजारामके साथियोंको बड़ीही निर्दयताके साथ यमराजके दरबारमें पहुंचाया।

संभाजीको राजा बननेके लगभग एक वर्ष बाद बादशाह औरंगजेबका पुत्र अकबर जब अपने पिताकी कुटिल नीतिके कारण पराभूत हुआ तो राठौड़वीर दुर्गादासकी प्रेरणासे संभाजीके शरणमें आया। मरहठोंने यद्यपि उसे शरण दिया, परन्तु अकबरको संतोषजनक लाभकी आशा नहीं दीखी। अकबरका संभाजीके पास जाने और मरहठोंका बुरहानपुर विजयका संवाद पाकर औरंगजेब स्वयं बुरहानपुर आकर संभाजीपर आक्रमणका संचालन करने लगा। मरहठोंके दुर्भाग्यसे संभाजीकी एक स्त्री और पुत्रको मुगलोंने बंदी बनाया। पुनश्च औरंगजेबने बीजापुर और गोलकुन्डाको विक्रम १७४३ में विजयकर अपनी समस्त सेना संभाजीके प्रतिकूल अग्रगामी की। विक्रम १७४३ में संभाजी अपने पुत्र शाहुके साथ बंदी हुआ और औरंगजेबने मुसलमान धर्म न स्वीकार करनेपर उसे मरवा डाला। एवं रायगढ़ विजयकर अनेक सरदार सामन्तों और राज्य परिवारके मनुष्योंका वध किया। परन्तु राजाराम सन्यासीके वेषमें भाग निकला। औरंगजेबने रायगढ़को स्वाधीन किया।

संभाजीकी मृत्यु और उसके पुत्र शाहु (शिवाजी) के बंदी होनेके बाद संभाजीका छोटा वैमात्रिक भाई राजाराम नाम मात्रका राजा बना क्योंकि उस समय प्राय

महाराष्ट्र देश औरंगजेबके अधिकारमें चला गया था। और तीन वर्ष तक राज्य करने पश्चात् शिवाजी और संभाजी नामक दो पुत्र और चार स्त्रियोंको छोड़ स्वर्गवासी हुआ। जिस प्रकार राजारामके पिता छत्रपति महाराजा शिवाजीके मरने पश्चात् उसकी माताने उसे गद्दीपर बैठानेके लिये खटपट की थी। उसी प्रकार उसके पुत्रोंकी माताओंने अपने अपने पुत्रको गद्दीपर बैठानेके लिये खटपट शुरू की। परन्तु अन्तमें शिवाजी गद्दीपर बैठा। किन्तु वास्तवमें उसकी माता राज्य करती थी। १७५६ से १७६३ पर्यन्त शिवाजी राजा रहा। इसी वर्ष औरंगजेबकी मृत्यु हुई और शाहु बंदीसे छूटकर स्वदेश आया। अपने हितैषी सरदारोंको एकत्रित कर राज्य मांगा, परन्तु ताराबाईने राज्य सौंपनेसे इन्कार किया। तब शाहुने मार दाम आदि द्वारा ताराबाईका पक्ष निर्बल बना सताराको अधिकृत कर अपने राजा होनेकी घोषणा विक्रम १७६४ में की। इस घटनाके चार वर्ष बाद विक्रम १७६८ में राजारामके पुत्र शिवाजीकी मृत्यु हुई। और ताराबाई कोल्हापुर चली गई। यहां संभाजी उसके हाथसे राज्य छीन कोल्हापुरका महाराजा बना। और मरहठा राज्य सतारा और कोल्हापुर नामक दो भागोंमें बट गया। आगेकी घटनाओंका दिग्दर्शन करानेके पूर्व महाराष्ट्र वंशकी वंशावली उधृत करते हैं।

## महाराष्ट्र वंशावली
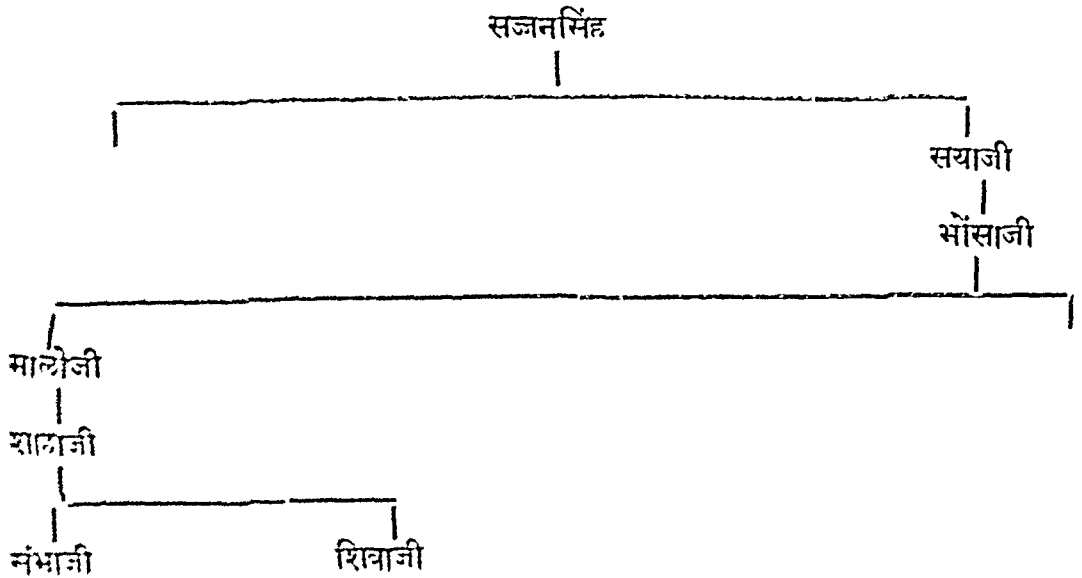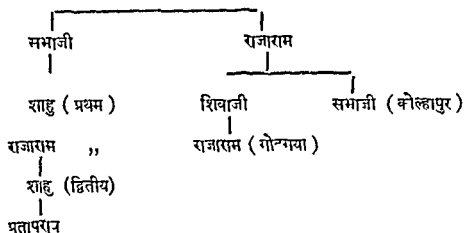
शाहूको वदीपनसे मुक्त होनेके पश्चात् वालाजी विश्वनाथ नामक ब्राह्मणसे प्रचुर सहायता मिली थी। अत उसे अपने राज्यका सबसे वडा पेशवा पद उसे प्रदान किया। वालाजी विश्वनाथ भट्टकी पेशवा पद मिलते समय विक्रम १७६६ में, ५३ वर्षकी अवस्था थी। परन्तु उसने शाहूकी राज्य सत्ताको बढाने और शत्रुओंको नाश करनेमें कोईभी वात उठा न रखी। सर्व प्रथम उसने ताराबाईका वल नाश किया। अनन्तर अन्यान्य सरदारोंको पराभूत कर शाहूकी सत्ता वृद्धिकर वास्तवमें उसे महाराष्ट्रका राजा वनाया। यह तबकि विक्रम १७७४ म एक भारी सेना लेकर अवदुल्लाखाके साथ दिल्ही गया, और वादशाह फर्रुखसियारको पदभ्रष्ट करनेमें हाथवटा रफीउद्जातको बादशाह वना तीन सनद प्राप्त कीं। उनमेंसे प्रथमके अनुसार शिवाजीकी मृत्युके समय जितने भूभागपर अधिकार था, वह शाहूका स्वराज्य रूपसे माना गया। दूसरेके अनुसार मरहठोंने जो खानदेश, वेडार, हैद्राबाद और कोंकण आदिका भूभाग विजय किया था, वह न्यायोचित शाहुका प्रदेश माना गया। तीसरेके अनुसार शाहुको खानदेश, वेडार, हैद्राबाद, कर्नाटक और कोकण आदि प्रदेशमें अपने कर्मचारिओंको रख कर चौथ वसूल करनेका अधिकार दिया। एव इसकी दूसरी शर्त यहथी कि कोल्हापुरके महाराज सभाजी (अपने चचेरे भाई) के साथ शाहु छेडछाड न करे अर्थात कोल्हापुर स्वतत्र बना। और वादशाहने शिवाजीके परिवारके वदी स्त्री और बच्चोंको विमुक्त कर सतारा भेज दिया। विक्रम १७७६ में वालाजीकी मृत्यु हुई। वाजीराव दूसरा पेशवा वना। अन्य वातोंके विवेचनको हस्तगत करनेके पूर्व हम पेशवा वशकी वशावली उद्धृत करते है।

# पेशवा वंशावली.
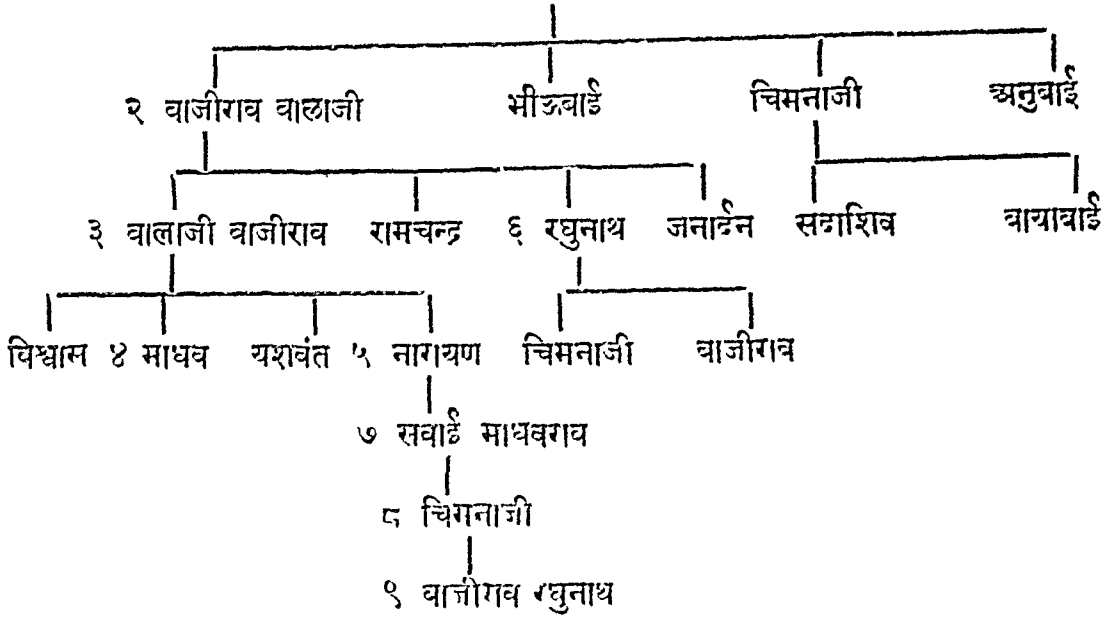
जिस प्रकार बंदीसे मुक्त होनेके पश्चात बालाजीसे शाहुको अभूतपूर्व सहायता मिली थी। उसी प्रकार खण्डेराव दभाड़ेसे मिली थी। दभाड़े परिवार शाहुके पिता और पितामहके समयसे ही महाराष्ट्र सैनिकोंमें प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। यहां तक कि संभाजीके मारे जाने और शाहुकी बंदी अवस्थामें राजारामने खण्डेरावको तलेगांवकी जागीर और सेना खासखेलकी उपाधि प्रदान की थी। इतना होते हुएभी खण्डेराव दभाड़ेने शाहुको न्यायसंगत महाराष्ट्र सिंहासनका अधिकारी मान अन्यान्य सरदारोंके विरोध करनेपरभी उसका साथ दिया। अतः शाहुने उसे अपना प्रधान सेनापति बनाया। खण्डेराव दभाड़े जब शाहुका प्रधान सेनापति बना, तो उस समय उसके पास नाम मात्रका राज्य था। दभाड़ेने औरंगजेबकी मृत्युसे उत्पन्न विशृंखला का उपयुक्त लाभ उठानेके विचारसे बालाजी विश्वनाथको गृहकलहके निवारणार्थ छोड़ एक बहुत बड़ी सेना लेकर विक्रम संवत १७६४ में खानदेशके मार्गमें पिम्पलनेर आदिको अधिकृत करता हुआ नवापुराको केन्द्र बनाया। वहांसे आगे लाटमें प्रवेश किया, और नवसारी पर्यन्त लूटपाट मचाया। खण्डेराव दभाड़ेकोभी छत्रपति महाराज शिवाजीके समानही लूटपाट करते समय बांसदाके

महारावल वीरदेवसे सहायता मिली थी। खण्डेरावने नवापुराको अपना केन्द्र बनाया। खण्डेराव दभाडेके इस आक्रमणके समय दामाजी गायकवाड नामक सैनिक उनके साथ था। उसने इस आक्रमणके समय अपनी वीरताका परिचय दिखाया था। दभाडे और गायकवाडका यह लूटपाट विक्रम १७६३ से १७७६ पर्यन्त चलता रहा। परन्तु इसी वर्ष इन्होंने बालपुर नामक ग्राममें पूर्ण विजय प्राप्त किया। इसी वर्ष खण्डेरावने सतारा लौटकर दामाजी गायकवाडकी वीरताकी सूचना शाहुको दी। शाहुने दामाजीको समशेर बहादुर की उपाधि प्रदान की। परन्तु खण्डेराव दभाडे और दामाजीराव गायकवाड दोनो की मृत्यु थोडेही दिना बाद हुई। तदनन्तर खण्डेराव दभाडेका उत्तराधिकारी उसका पुत्र त्र्यम्बकराव और दामाजीका उत्तराधिकारी उसका पुत्र पीलाजीराव हुआ। उसके आगे चलकर दभाडे परिवार के साथ लाट देशका इतिहास ओत प्रोत है।

शाहुको अपने तीन विश्वस्त और स्वामी भक्त सेवकोंकी मृत्यु घटना देखनेको मिली। शाहुने अपने तीनो स्वर्गीय सेवकोंके उत्तराधिकारियोंको उनके पिताके पदपर नियुक्त किया। जैसा कि हम ऊपर बता चुके है, कि बालाजी विश्वनाथका पुत्र बाजीराव पेशवा बना। उसी प्रकार खण्डेरावका पुत्र त्र्यम्बकराव दभाडे सेनापति और दामाजीका भतीजा पीलाजी समशेर बहादुर बना। परन्तु तीनो महत्वाकांक्षी और नवयुवक थे। साथही उनमें आत्माभिमान कूट कूट कर भरा था। शाहुने बाजीरावको पेशवा बनानेके साथही प्रधान सेनापति बनाया। जिसने त्र्यम्बकरावके मनको मलीन किया। और वह एक प्रकारसे पेशवाका विरोधी बन अपने अधिकृत प्रदेशमें चला गया। पीलाजीभी दभाडेका साथी बना। सोनगढसे आगे बढ कर वह लूटता मारता आगे बढ्ने लगा। इसी अवसरमें गुजरातके मुगल प्रधम फेरफार हुआ। गुजरातका सूबा सरबुलन्दखा था। और उसका नायब निजामउलमुल्क था। बादशाहने निजामउलमुल्कके स्थानमें सुजातखा को नायब बनाकर भेजा। परन्तु बादशाहकी आज्ञाके प्रतिकूल निजामउलमुल्कने उसे हमीदखा बना दिया। और शाहुने दूसरे सेनापति कन्थाजी कदमको मोहनसे सहायताके लिये बुलाया तथा गुजरातकी

चौथ सहायताके उपलक्षमें देना स्वीकार किया। इधर सुजातखांके भाई रूस्तमअलीने पीलाजीसे चौथके शर्तपर सहायताकी प्रार्थना की। पीलाजी रूस्तमको मदद देना स्वीकार कर आगे बढ़ा और रूस्तम तथा पीलाजीकी सेना महीपार कर अड़ासके तरफ जा रही थी। अचानक हमीदने आक्रमण किया। परन्तु हटाया गया। इसके अनन्तर रूस्तम और पीलाजीसे मन मुटाव हो गया और पीलाजीने अचानक रूस्तमपर आक्रमण किया। रूस्तम वीरतासे लड़ा परन्तु अन्तमें बंदी होनेके स्थानमें मरना अच्छा मान आत्मघात कर गया। रूस्तमके मरने पश्चात् पीलाजीने हमीदखांसे अपने विश्वासघातके पुरस्कारमें गुजरातकी चौथ मांगी। परन्तु कन्थाजी कदम्बने विरोध किया। अतः महीसे उत्तरका कन्थाजीको और दक्षिणके चौथका अधिकार पीलाजीको मिला। पीलाजी सोनगढ़ और कन्थाजी खानदेश चले आये। हमीदको दण्ड देनेके लिये सरबुलन्दखां भेजा गया। जिसके आनेका संवाद पाकर हमीद भाग खड़ा हुआ। इतनेमें कन्याजी और पीलाजी उससे जा मिले। अन्तमें सरबुलन्दको हारना पड़ा। इन दोनोंने खूबही ऊधम मचाया अन्तमें सरबुलन्दने बाजीराव पेशवासे सहायताकी प्रार्थना की। और उसने सरबुलन्दसे चौथ स्वीकार कराकर अपने भाई चिमनाजीकी अध्यक्षतामें सेना भेजी। चिमनाजीने सरबुलन्दसे अपने भाईकी शर्त स्वीकार कराकर उसे आश्वासन दिया की कोईभी मरहठा उसके इलाकेमें गड़बड़ नही मचायेगा। परन्तु त्र्यम्बकराव दभाड़े और अन्यान्य मरहठे पेशवाको गुजरातसे निकाल बाहर करनेके विचारसे मिल गये। उन्होंने पेशवा और दभाड़े विग्रहको ब्राह्मण अब्राह्मणका रूप दिया। दभाड़े आदि यहां तक आगे बढ़े कि उन्होंने निजामउलमुल्कसे मैत्री स्थापित्त की। और ३५००० सेनाके साथ पेशवाके विरोधमें प्रवृत्त हुए। बाजीराव स्वयं इनको शिक्षा देनेके लिये गुजरात आया। परन्तु दुर्भाग्यसे नर्मदा उतरनेबाद सम्मिलित गायकवाड़-दभाड़े सेनाके नायक पीलाजीरावके पुत्र दामाजीके हाथसे बाजीरावको पराभूत होना पड़ा।

बाजीराव यद्यपि हारा, परन्तु हतोत्साह न हुआ। डभोई और बरोदाके मध्यवाले भीकू पुग ग्रामके दूसरे युद्धमें सफलीभूत हुआ। त्र्यम्बकराव तथा पीलाजीका पुत्र सयाजी मारा गया। पिलाजी अपने दो पुत्रोंके साथ घायल होकर सोनगढ़ चला अया। और बाजीराव विजयी होकर सतारा गया। परन्तु वह समझ गया कि ब्राह्मणेतर मरहठे सैनिकोंकी उपेक्षा करनेमें नतो वह समर्थ है, और न राजनैतिक

हसूया वाञ्छनीय है। क्योंकि कथित युद्धमें त्र्यम्बकरावके अतिरिक्त पीलाजीराव गायकवाड़, कन्थाजी और रघुनाथराव कदम्ब, सयाजीराव भाराडे और आनन्दराव पवार तथा प्राय दूसरे प्रसिद्ध सैनिक शामिल थे। इस हेतु उसने अपनी विजयको ईश्वर दत्त माना और मरहठाको किसी प्रकार मिलानेको युक्ति सगत मान उसे चरितार्थ करनेमें प्रवृत्त हुआ। उसने विक्रम सवत् १७८७ में मृत सेनापति त्र्यम्बकरावके बालक पुत्र आनन्दरावको मराठोंका सेनापति बनाया। नवीन बालक सेनापतिके पैतृक अधिकारके स्वीकार कर उसकी माताको अभिभावक और पीलाजीराव गायकवाडको प्रतिनिधि नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त पीलाजीको नवीन उपाधि सेना खासखेल प्रदान की। और सेनापतिका कर्म करनेका आदेश दिया। एव घोषणा की कि आजसे आगेको कोईभी मरहठा सेनापति किसी दूसरेके अधिकारमें गुजरात, मालवा आदि किसी देशमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। अन्ततोगत्वा बालक सेनापतिके प्रतिनिधि रूपमें पीलाजीसे गुजरातकी चौथका आधा भाग सताराके राजा शाहुकी सेवामें पेशवाके द्वारा भेजना स्वीकृत कराया। पिलाजी गायकवाडका—आनन्दराव दभाडेका—अभिभावक बनाया जाना गायकवाड वशके गुजरातमें अभ्युदयका श्रीगणेश है। आगे चलकर पद पद पर हमें गायकवाडोंका उल्लेख करना पडेगा, अत गायकवाड वशावलीको उद्धृत करते है।

## गायकवाड़ वशावली
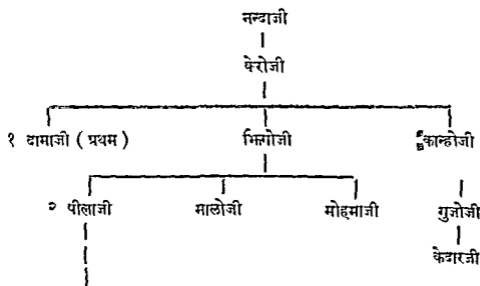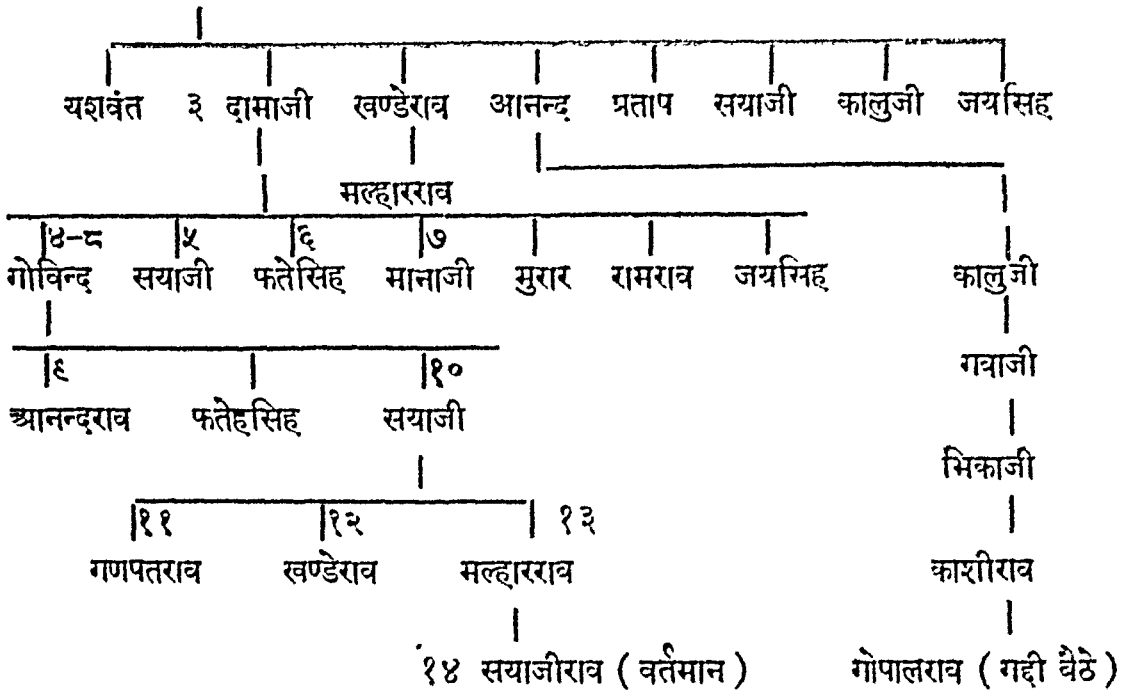
वाजीरावने इस प्रकार प्रवन्ध कर यद्यपि प्रत्येक मरहठा सैनिकको अपने अधिकार पर सुरक्षित कर दिया। किन्तु न तो उसका अपना मन और न मरहठा सैनिकोंका मन शुद्ध हुआ। इसका परिचय आगे मिलेगा। खैर इस प्रकार पीलाजी आनन्दरावका प्रतिनिधि वन कर सोनगढ़को अपना केन्द्र वना गुजरातका एक प्रकारसे सर्वे सर्वा वन गया। परन्तु उसे सुख और शान्ति नही मिली। क्योंकि मुगल वादशाहने अपने सूवा सरवुलन्दकी शर्तोंको नही माना और मरहठोंको गुजरातसे निकाल वाहर करनेके लिये जोधपुरके महाराजा अभयसिहको सूवा वनाकर भेजा। अभयसिह दिल्हीसे चलकर अहमदावाद आये और सरवुलन्दके मनुष्योंके हाथसे उसे वलपूर्वक छीन लिया। एवं वरोदाको हस्तगत कर महमद वहादुरखां वावीको विजित प्रदेशका अधिपति वनाया। अभयसिहके आनेके समय पीलाजी डाकोरकी यात्राको गया था। सम्वाद पाकर वह छीने प्रदेशको पुन. स्वाधीन करनेकी धुनमें लगा। परन्तु अभयसिहने युद्धमें प्रवृत्त होनेके स्थानमें कौशलसे काम लेना चाहा। और पीलाजीसे मैत्रीकी वातें करने लगा। और इस संवंधमें दोनों एक दूसरेसे मिलने लगे। अन्तमें उसके संकेतानुसार पीलाजी मारा गया। अर्थात् जव एक दिन मिलनेके वाद जानेके लिये उठातो एक राजपूत सैनिकने कुछ संवाद देनेके वहानेसे उसके कानमें कुछ वातचीत करनेका संकेत किया, और जव उसने उसके प्रति अपना कान झुकाया, तो वातें करनेके स्थानमें अपना कटार

पीलाजीके पेटमें भोंक दिया। इस प्रकार पीलाजीको कृतमखाके साथ किये हुए अपने विश्वासघातका फल विक्रम १७८८ में भोगना पड़ा। एव "इस हाथ दे और उस हाथ ले" कथानक चरितार्थ हुआ।

पीलाजीके इस प्रकार विश्वासघातसे मारेजानेका सवाद पाकर बटपद्राके देशाईने अपने मित्रकी मृत्युका प्रतिशोध करनेके लिये भीलोंको एकत्रित कर उपद्रव मचाया। और उक्त देशाईका हाथ बटानेके लिये पीलाजीका भाई मालोजी जम्बूसरसे आगे बढ़ा और गोरखा याजीको मार भगा बड़ोदाको हस्त गत किया। इधर पीलाजीके आठ पुत्रोंमसे ज्येष्ठ पुत्र दामाजी सोनगढसे सेना लेकर आगे बढ़ा। और मार काट, लूट खसोट का बाजार गरम किया। दामाजी साम, दाम, विभेद आदि द्वारा समस्त गुजरातको स्वाधीन करने लगा। अभयसिंहके प्रतिनिधिको अहमदाबादमे मार भगाया। लूटपाट करता हुआ जोधपुरके समीप तक पहुच गया। विक्रम १७९६ में दामाजीके सेनापति रघोजीने फकीरुद्दौला, जो गुजरातका सूबा बनाया गया था, को आगे बढनेसे रोका। दामाजीने फकीरुद्दौलाको सूबा न स्वीकार कर अपने हाथके कठपुतला मोमीनखाको सूबा बनाया। इसी वर्ष बाजीराव द्वितीय पेशवाकी मृत्यु नर्मदा काठेके रावेर नामक स्थानमें हुई। और उसका पुत्र नानासाहेब उर्फ बालाजी बाजीराव तीसरा पेशवा हुआ।

बालाजी बाजीरावके पेशवा होने परभी दामाजीकी स्वतन्त्रतामें कुछ न्यूनता न हुई। इस घटनाके तीन वर्ष बाद विक्रम १७९९ में मोमीनखा मरा और बादशाहने अबदुल अजीजको सूबा बनाकर गुजरात भेजा। परन्तु वह दामाजीके हाथसे मारा गया। अनतर दामाजीने अपना अधिकार खूब, ही बढाया। यहा तक कि विक्रम १७९७ में उसने मालवानेभी पदाक्रान्त किया। इस प्रकार बालाजी बाजीरावके पेशवा होने पश्चात मरहठोंका प्रभाव समुद्र तरगके समान बढ रहा था। परन्तु शाहुका दिन बडे कष्टमे व्यतीत होता था। उसको अपने एक मात्र पुत्र और प्रिय पत्नीकी मृत्युका घोर कष्ट हुआ। और उसका स्वास्थ्य बिगडा। वह अतिम दिनकी घड़िया गिन रहा था। मरहटा सरदार शाहुके उत्तराधिकारीके सबधमें अनेक प्रकारके मनसूबे बाध रहे थे, अतमें राजारामके पौत्र और शिवाजीके पुत्र राजारामको गोद लेना निश्चित हुआ। शाहुकी मरण शैयासे बालाजीने एक आज्ञापत्र प्राप्त किया। उसके आधार पर वह मरहठा साम्राज्यका सर्वे सर्वा बन गया। राजारामको राजा बनाना निश्चित रूपसे घोषित किया गया। एवं उक्त आज्ञा पत्रके अनुसार कोल्हापुरको स्वतत्र राज्य माना गया। पश्चात शाहुकी मृत्यु हुई।

शाहुकी मृत्यु विक्रम १८०५ में हुई और राजाराम गद्दी पर बैठा। उसके गद्दीपर बैठतेही बालाजीने सताराके स्थानमें पूनाको राज्यधानी बनाया और अपने मनके मुताबिक मरहठा राज्यका प्रबन्ध करने लगा। राजाराम पूर्ण रूपेण अयोग्य निकला। वह बालाजीके हाथका कठ पुतला बन गया। परन्तु उसकी दादी ताराबाईसे यह बरदाश्त न हुआ। उसने एक दिवस राजारामको राज्य कारभारमें प्रवृत्त हो ब्राह्मणोंके हाथमें मरहठा राज्यलक्ष्मीको जानेसे बचानेके लिये आदेश किया। परन्तु उसका आदेश निष्फल हुआ। अतः उसने विक्रम १८०७ में दामाजी गायकवाड़को गुजरातसे शीघ्रही आकर ब्राह्मणोंके ग्राससे मरहठा राज्य लक्ष्मीको बचानेके लिये आग्रह किया। दामाजी बालाजीसे प्रथमसेही असंतुष्ट था क्योंकि इस घटनाके कुछ महीना पूर्व बालाजीने गुजरातकी आयका आधा भाग मांगा था। इस हेतु वह गुजरातसे सताराके लिये चल पड़ा। उधर जब ताराबाईको दामाजीके आनेका संवाद मिला तो उसने राजारामको कैद कर बालाजीके अनुयाइयोंको खूबही ठोका पीटा। वे सतारा छोड़कर भाग खड़े हुए। दामाजी ताराबाईकी सेवामें उपस्थित हुआ। अनन्तर सतारामें भावी युद्धकी आशंकासे अस्त्र शस्त्र और अन्नादि संग्रह किया गया। इस घटनाका संवाद पा बालाजी घटनास्थल पर उपस्थित हुआ और विश्वासघातसे दामाजी और उसके परिवार तथा दभाड़े परिवारको बन्दी बनाया। अनन्तर उसने ताराबाईसे आत्मसमर्पण करनेको कहा परन्तु उसने इन्कार किया। इसपर बालाजीने उससे लड़ना युक्ति संगत न मान पूना चला गया। अन्तमें जानोजी भोंसलेकी मध्यस्थतासे ताराबाई और बालाजीके मध्य शान्ति स्थापित हुई। और ताराबाई सतारासे पूना आई। राजाराम बन्दी रखा गया।

दामाजी गायकवाड़को (दभाड़ेके कर्ज रूप) १५००००० देनेके साथही दभाड़ेके इलाकेसे ५०००००) प्रतिवर्ष देना स्वीकार करना पड़ा। एवं स्वभुजबलसे अर्जित गुजरात प्रान्तकी आधी आय, चौथ और सरदेशमुखीका खर्च देनेके बाद, देना स्वीकार करना पड़ा। कथित आयके लिये मुल्क बाटा गया। बॉसदा राज्यसे गिरों लिए हुए विसुनपुर परगनाको दामाजीने अपने हिस्सेमें रखा और उसकी चौथ ३०००) वार्षिक देना स्वीकार किया। इस प्रकार दामाजी अपनी स्वतंत्रता खरीद कर गुजरात लौटने लगा तो बालाजीने उसके साथ रघुनाथरावको लगा दिया। कि वह साथ रह कर दामाजीसे कथित सन्धिके नियमोंका पालन करावे। गुजरात लौटते समय दामाजी और रघुनाथरावने खूबही लूटपाट मचाया। गुजरातके विभाजित अंगको स्वाधीन करनेके पश्चात्भी दामाजी और रघुनाथरावने लूटपाटका बाजार गरम रखा। यहां तक कि वे अहमदाबाद पहुंच

कर नगरको हस्तगत करनेकी धुनमें लगे। इस समय मुगल सूबा जमामुराम्खा दूसरा था। प्रथम उसने वीरताके साथ मरहठोंका सामना किया। परन्तु अन्तमें उसे सुलह करनी पड़ी। सुलहके अनुसार अहमदाबाद छोड़कर उसके स्थानमें पाटन, वडनगर, बीजापुर और राधनपुर लेकर सतोष करना पड़ा। उसने राधनपुरको केन्द्र बना नवीन स्वतत्र राज्य विक्रम सवत् १८१३ में स्थापित किया, और गुजरातका प्रधान नगर मरहठाके अधिकारमे आनेके साथही मुगलोंका नाम गुजरातमे सदाके लिये उठ गया। इस घटनाके कुछ पश्चात पानीपतके युद्धमे मरहठोंको हारना पड़ा। और बालाजी बाजीरावकी मृत्यु हुई। और विक्रम सवत् १८१८ में बालाजी बाजीरावका दूसरा पुत्र माधवराव अपने चचा रघुनाथरावके साथ सतारा जाकर अपने पेशवा पदको राजारामसे स्वीकार कराया।

यद्यपि माधवराव पेशवा बना परन्तु उसका चचा रघुनाथराव वास्तवमे पेशवा हुआ। और इसके नामसे मनमानी घरजानी करने लगा। उसने सर्व प्रथम गगाधरको प्रतिनिधिपदसे हटाकर उसके पुत्र भास्करावको उसका स्थान दिया। एव नारूशकर राजा बहादुरको मुतालिक बनाया। अनन्तर विक्रम १८१६ म पेशवाकी आज्ञासे दामाजीने राज्य पीपलाको पदाक्रान्त कर नानोद, भालोद, वारीती और गोवाली परगनाओंकी आयका आधा भाग मागा। पर इस घटनाके एक वर्ष बाद विक्रम १८२० में राज्य पीपलाके राजा रायसिंहजीकी भतीजीके साथ दामाजीने विवाह किया और पूर्व कथित परगनाओंकी आधी आयकी मागको छोड दिया।

इधर दामाजी गायकवाड गुजरात राजपूत राज्योंको इस प्रकार एकके बाद दूसरेको कुचल रहा था। और उधर पूना और सतारा षडयत्रका केन्द्र बना था। रघुनाथराव मरहठा सरदारोंको पदच्युत कर अपना विरोधी बना रहा था। साथही उसके भतीजा माधवरावके साथभी उसका मन मुटाव हो गया था। अत माधवरावने रघुनाथरावका मूलोच्छेद करना चाहा। रघुनाथने दामाजीसे सहाय प्रार्थना की और उसने एक सेना अपने पुत्र गोविंदरावकी आधीनतामें भेजी। परन्तु रघुनाथ और गोविंदकी सम्मिलित सेना को हारना पड़ा। माधवने विजयी बन कर दामाजीको ५२५००० वार्षिक कर देने और ३००० सेना शान्ति समय और ४००० सेना युद्ध समय अपने व्ययसे रखनेके लिये बाध्य कर स्वीकार कराया। एव गुजरातका कुछ भाग दामाजीको कथित सैनिक सेवाके लिये देना स्वीकार किया। परन्तु इस अपमान जनक सन्धि पत्रपर हस्ताक्षर करनेके पूर्वही

दामाजी की मृत्यु हुई। उसकी मृत्युका सम्वाद पाते ही माधवरावने गायकवाड़की शक्तिका नाश सम्पादनके विचारसे पूनामें बन्दी रूपमें रहनेवाले गोविन्दरावसे रुपयाकर वसूल करके दामाजीका उत्तराधिकारी स्वीकार किया। परिणाम उसका सन्तोष जनक हुआ। क्योंकि फतेसिंह जो गुजरातमें था सयाजीरावको गद्दीपर बैठा अपने आप उसका अभिभावक बन गया। गृह कलहका अंकुर दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। गोविन्दराव और फतेसिंह एक दूसरेके कट्टर शत्रु बन गये। कुछ दिनोंके बाद पेशवाने गोविन्दरावके स्थानमें सयाजीरावको दामाजीका उत्तराधिकारी और फतेसिंहको उसका अभिभावक स्वीकार किया। अनन्तर पेशवाने आगे फतेसिंहको निराश तो कर गोविन्दरावको अपनाया। पेशवाका यह कार्य ठीक उसी प्रकार हुआ जैसा कि दामाजी प्रभृतिने विजयपुर (बांसदा) के गृह कलहमें स्वार्थ साधन किया था। इसकी ही अंग्रेज वणिक संघने पेशवा और गायकवाड़का मूलोच्छेद करनेके विचारसे इस नीतिका अनुकरण किया।

हमने पूर्वकी पंक्तियोंमें पेशवाको गायकवाड़की शक्तिका नाश संपादन करनेके लिए गृह कलहको हस्तगत करनेवाला बतलाया है। अतः उसका विशेष दिग्दर्शन कराते हैं। इधर गुजरातमें दामाजी गायकवाड़की मृत्यु पाटनमें हुई। और उसके पुत्र सयाजी, गोविन्द, रामराव उर्फ मल्हारराव मानाजीराव और फतेहसिंहरावके मध्य उत्तराधिकारका विवाद उपस्थित हुआ। पेशवा उस अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे थे। गोविन्दराव अपने पिताकी मृत्यु समय पूनामें था। उसने पेशवाको बहुत बड़ी भेट देकर अपनेको दामाजीका उत्तराधिकारी स्वीकार करा लिया। परन्तु फतेहसिंह सयाजीको गद्दी पर बैठा उसका अभिभावक बना। अतः कुछ दिनों बाद पेशवाने गोविन्दरावके पूर्वदत्त अधिकारको अस्वीकार कर, सयाजीरावको उत्तराधिकारी और फतेसिंहरावको उसका प्रतिनिधि स्वीकार कर गायकवाड़ वंशके गृह कलहको प्रचण्ड रूप धारण करनेका अवसर प्रदान किया।

गोविन्दराव गायकवाड़ और फतेसिंहके विद्रोहको प्रचण्ड रूप धारण करनेवाला हम बता चुके हैं। उक्त विग्रहमें फतेसिंह अपनेको गोविन्दरावका सामना करनेमें असमर्थ पा "ब्रिटिश वणिक सघ" के शरण विक्रम संवत् १८२८ में गया परन्तु उन्होंने उसकी प्रार्थनापर विशेष ध्यान नहीं दिया। परन्तु कुछ दिनों बाद ब्रिटिश वणिक संघ और फतेसिहके मध्य "आक्रमण और प्रत्याक्रमण में परस्पर सहयोगात्मक" सन्धि स्थापित हुई। उक्त संधिब्रिटिश जातिके गुजरातमें आधिपत्यका मार्ग

खोलनेवाली तथा गायकवाड आदिकी पराधीनताकी सूचिका थी। कथित संधिके अनुसार जब गायकवाड और भरुचके नवाबके मध्य विग्रह उपस्थित हुआ तो अंग्रेजोने आक्रमण कर भरुच छीन गायकवाडको दे दिया।

उधर पूनामभी गृह कलहने प्रवेश किया। नारायणराव मारा गया। माधवराव पेशवाके चचा रघुनाथरावने अपने दत्तक पुत्र अमृतरावको पुल्रेके साथ सतारा पेशवा पद प्राप्त करनेके लिए भेजा। परतु विक्रम १८६० मे मृत पेशवा नारायणरावके नवजात पुत्रको, सखाराम बापू और नानाराव फडनवीसके प्रतिनिधित्व करने पर, राजारामने पेशवा पद प्रदान किया और उसका अभिभावक माधवराव नीलकठ पुल्रेको बनाया।

गोविंदरावने, नारायणराव पेशवाकी मृत्यु पश्चात जब पूनाके राजनैतिक दृष्टिकोणम अन्तर पडा तो, पुन अपने उत्तराधिकारका प्रश्न उपस्थित किया। परतु फतेहसिंह पेशवाकी आधीनता स्वीकार करनेके साथ बाकी पडा हुआ चौथ आदि देकर अपनी राज्यलिप्साको सतुष्ट करनेमें समर्थ रहा। परन्तु कुछ दिनोंके बाद फतेहसिंहने ब्रिटिश वणिक सघके साथ दूसरी सधि की। इस सन्धिका उद्देश ब्राह्मण सत्ताका नाश करना था। इसके उपलक्षम ब्रिटिश वणिक सघ ने गायकवाडको स्वतत्र नरेश स्वीकार किया। " ब्रिटिश वणिक सघ " ने फतेसिंहको इस प्रकार स्वतत्र अधिपति स्वीकार किया उसका कारण पेशवाके साथ वाला विग्रह था। कथित पेशवा ब्रिटिश विग्रह लगभग चार वर्ष चला १८६३ म एक प्रबन्धसे स्थगित हुआ था। इसी विग्रहका फल था कि वणिक सघने फतेसिंहको स्वतत्र अधिपति स्वीकार किया। क्योंकि वैसा करनेम उनको अपना लाभ था। परन्तु दो वर्ष पश्चात १८३८ म जब ब्रिटिश वणिक सघकी सफलताका सूर्योदय हो रहा था तो पूर्व कथित सधिकी शर्त बदल कर गवरनर जनरलने मुम्बईके गवरनरके मार्फत फतेहसिंहके पास भेजा। इसकी शत उसके स्वार्थके प्रतिकूल थी। और वह पूर्व वत पेशवाका माण्डलिक बना दिया गया। यदि कुछ उसे लाभ हुआ तो वह इतनाही था कि उसकी बाकी कर नहीं देना पडा। और पेशवाकी सत्ता गुजरातम ज्यों की त्यों बनी रही।

इस घटनाके सात वर्ष बाद विक्रम १८४५ म फतेहसिंहराव मरा और पेशवाने मानोजीरावको मयाजीका अभिभावक स्वीकार किया। परन्तु माधवराव मर गया जो इस

समय प्रबल हो चुका था गोविंदरावका सहायक बन गया। इस पर मानोजीराव ब्रिटिश वणिक संघके दरवाजे विक्रम १८३६ वाली फतेहसिंह कृत सन्धिकी दुहाई देता हुआ पहुंचा। परन्तु वणिक संघने विक्रम १८३८ वाली सालबाई नामक सन्धिकी आड़ लेकर सहाय देनेसे इनकार किया। परन्त १८४१ विक्रममें सयाजीराव और मानोजीराव दोनोंकी मृत्यु हुई। अतः गोविंदरावके अधिकारका अपने आप मार्ग प्रशस्त हुआ। और वह विना किसी विघ्न बाधाके गद्दीपर बैठा।

इस घटनाके थोड़े दिन पूर्व सतारके राजा शाहु द्वितीयने पेशवाको वकील उल मुल्क बनाया था। अतः पेशवाका बल अधिक बढ़ गया। इधर गोविंदराव गायकवाड़ पेशवासे असंतुष्ट था। साथही पेशवा और सिन्धियाके मध्यभी दुर्भावना थी। अतः सिन्धियाकी सहायकी आशासे गोविंदरावने पेशवाके साथ सद्भावना नहीं रखी। इसी समय पेशवाने स्वाधीन गुजरात प्रदेशकी माल गुजारी वसूल करनेके लिये आपा सेरुलकरको भेजा। वह गोविंदराव गायकवाड़के आधीन गांवोंकी प्रजाकोभी तङ्ग करने लगा। यहां तक कि अहमदाबादका गायकवाड़ भवनभी उसने स्वाधीन कर लिया। अतः पेशवा और गायकवाड़के बीच युद्धकी संभावना उपस्थित हुई। ब्रिटिश वणिक संघ बीचमें कूदकर बीच बचाव करने लगा। इतनेहीमें विक्रम १८५६ में नवाब सूरतकी मृत्यु हुई। और वणिक संघने नवाबके प्रदेशको स्वाधीन किया। ब्रिटिश वणिक संघके शासक मिस्टर डन्कन सूरत आये। गोविंदरावने अपना दूत मिस्टर डन्कनके पास भेजा और आपा सेरुलकरके विरुद्ध सहाय मांगा। एवं अपने दूत द्वारा प्रगट किया कि यद्यपि पेशवाका सूबा चिमाजी आपा है परन्तु वास्तवमें शासक आपा सेरुलकर है। यदि ब्रिटिश वणिक संघ उसकी सहायता करे तो वह चौरासी प्रदेश संघको दे सकता है। परन्तु डन्कन महोदयने इस पर कुछभी ध्यान नहीं दिया अन्तमें सेरुलकर और गोविंदरावके मध्य युद्ध हुआ। और सेरुलकर बन्दी बनाया गया। परन्तु गोविंदरावकी मृत्यु हुई। और उसकी झाली राणी ( लख्तरके झाला ठाकोरकी बेटी ) सती हो गई।

गोविंदका उत्तराधिकारी आनन्दराव हुआ। परन्तु उसे सुख शान्तिके स्थानमें कांटोंका ताज मिला क्योंकि गोविंदरावके अनौरस पुत्र कानोजीरावने उत्पात मचाया। और आनन्दरावको बन्दी बनाया। एवं प्रजा तथा मंत्री मण्डलको सताने लगा। कोनाजीके प्रतिकूल

साधारणने अनाज उठाई। और वह पकड़कर आनन्दरावके सामने लाया गया। आनन्दरावने उसे एक किलाम बन्द रखा। इस घटना के थोडे दिनों बाद कडीके सूबा मल्हाररावने विद्रोह किया। परन्तु आनन्दरावने उसके साथ सन्धि कर ली। उक्त सधिके अनुसार उसकी कडीकी जागीर निश्चित हो गई। इस सधिको थोडे दिनों बाद मल्हाररावने तोड दिया और दोनोंके मध्य युद्ध छिड गया। इस विग्रहमें आनन्दरावकी बहिन और कुछ सेनापति तथा कान्होजी आदि मल्हारराव के साथ थे। बागियोने अंग्रेजोंसे सहायकी प्रार्थना की और सहायताके उपलक्षमें सूरतकी चौथ और चौरासी परगना देनेका वादा किया। आनन्दराव भी अंग्रेजोंसे सहायकी प्रार्थना कर रहा था। अन्तम अंग्रेजोने आनन्दरावको सहाय देना स्वीकार किया। और उनके इस सहाय प्रदानका कारण यह था कि उन्हे शका थी कि यदि वे सहाय न देगे तो कदाचित सिन्धिया आनन्दरावकी मदद्म आ जावेगा। अत अंग्रेजोने मेजर वॉकरकी अध्यक्षताम फौज भेजी। और वे बरोदा नगरम प्रवेश किये। अन्तम आनन्दरावने विक्रम १८५८ में सधि की जिसके अनन्तर वाकरको सूरत और चौरासी की चौथ आदि वसूल करनेका अधिकार मिला। मेजर वॉकरने आनन्दरावकी खूब मदद की। आनन्दरावने अंग्रेजोंके साथ दूसरी सधि विक्रम १८६१ म की। जिसके अनुसार अंग्रेजोंको ११५०००० वार्षिक आयकी भूमि आनन्दरावसे मिली। अन्तम विक्रम १८७१ म पेशवा और गायकवाडका सबध विच्छेद हुआ। और विक्रम १८७३ की सधिकेअनुसार पेशवाका आधिपत्य अधिकार अंग्रेजोंको मिला और बरोदा अंग्रेजोंका आधीन माण्डलिक बना।

## लाट गुजरातमे अंग्रेज।

हमारे विवेचनीय इतिहास और देशके साथ अंग्रेज जातिका सबध ओतप्रोत हो रहा है। इतनाही नहीं हमारे उत्तर कालके इतिहास कालम तो अंग्रेज जाति सार्वभौम पद धारण किये है। हम अपने उत्तर कालके इतिहास विवेचनाम अनेक बार अंग्रेजोंका उल्लेख कर चुके है। अब अंग्रेज जातिके उत्कर्ष और सार्वभौम सत्ता विकासका विवेचन करते है। अंग्रेज जातिके देशका नाम "ग्रेट ब्रिटन" युनाइटेड किंगडम है। और उसका आयतन यूरोप महाद्वीप के पश्चिम समुद्रके मध्य अवस्थित है। ग्रेट ब्रिटनका आकार प्रकार हमारे देशके एक छोटेसे प्रदेशके समान और जन संख्या भी इसी प्रकार नगण्य है। यद्यपि हमारे देशकी जन सख्या उससे लगभग

आठ गुनी अधिक है। परन्तु ब्रिटन निवासी हमारेही अधिराजा नही वरन् संसारके सबसे बड़े साम्राज्यके भोक्ता हैं। उनके राज्यमें संसारका सबसे अधिक भूभाग है। यहां तक कि अंग्रेजोंके साम्राज्यमें कभी भी सूर्यास्त नहीं होता। हमारे देश और अंग्रेजोंके देशका अन्तर ५००० मीलसे भी अधिक है। ब्रिटन और भारतके मध्य आवागमनका जल और स्थल दो पथ है। और अब तो आकाश पथभी खुल गया है। परन्तु आवागमनका सुगम मार्ग जल पथही है। अंग्रेजोंने भारतमें जल पथसे प्रवेश किया था। उन्होंने हमारे देशमें विजेताके रूपसे नही वरन व्यापारी रूपसे प्रवेश किया था। और क्रमशः अपने अध्यवसाय और कौशल, जिसका नामान्तर राजनैतिक पटुता, के बलसे समस्त देशको अधिकृत कर लिया है। एवं अपनी राजनीतिज्ञता तथा वैज्ञानिक बलके सहारेसे इस विशाल देशको कौन बतावे संसारके १–६ भाग पर और १–५ जनतापर शासन करती है। सच्ची बात तो यह है कि आज संसारमें अंग्रेज जातिकी नीतिज्ञता अपना प्रतिद्वन्दी नही रखती। यदि शर्मन्य देशाभिजात और गोकर्ण विश्वविद्यालयके अद्वितीय विद्वान अध्यापक मोक्ष मूलरके " हिन्द हमें क्या सिखा सकता है " के वाक्य यदि हमसे पूछा जाय, " संसारमें किस स्थानके मनुष्योंने सर्व प्रथम ईश्वरी ज्ञान प्राप्त किया था और सर्व श्रेष्ट है तो हम हिन्दुस्तानको बतावेंगे " को यदि हम इस प्रकार परिवर्तित कर लेवें "यदि हमसे पूछा जाय कि संसारमें कौन जाति सबसे अधिक नीति विद्या और परं कौशला है और जिसका प्रत्येक राज्यनैतिज्ञ व्यक्ति परं प्रवीण है तो हम अग्रेज जाति और और अंग्रेज राजनैतिकोंको बतावेंगे"। तो हमारे इस कथनमें न तो अत्युक्ति होगी और न मिथ्यात्वका समावेश होगा। खैर अब हम विषयान्तरको छोड़ सीधे मार्गपर आते है।

भारतका व्यापारिक तथा आक्रमण प्रत्याक्रमणात्मक सबंध मध्य एसिया और यूरोप खण्डके साथ बहुत प्राचीन है। परन्तु इस अधिक पुराकाल के संबंध विवेचनके झमेलेमें न पड़कर अपने इतिहासके उत्तरकालसे संबंध रखनेवाली अवधिका विचार करते है। प्राचीनकालके समानही भारत और यूरोप खण्डका आवागमन मार्गसे चलता था।

१) जल–स्थल मार्गसे होनेवाला व्यापार प्रथम नौकाओं द्वारा अरब समुद्र होकर एलेक्जेन्ड्रीआ पहुँचता था। और वहांसे वेनिस और जिनेवा इत्यादि इटलीके बन्दरोंसे यूरोप खण्डमें प्रवेश करता था।

२) स्थल मार्ग दो भागोंमें बटा था।

अ) कन्धार ईरान–भारतसे चलकर कन्धार, ईरान, लघु एशीआ और पेलिस्टाइन

आ) और कन्धार, काबुल–भारतसे चलकर कन्धार, काबुल, बलख, समरकन्द और केस्पिअन समुद्र पार कर यह मार्ग पुन स्तम्बुल और वल्गा नदी मार्गसे जर्मनी होकर दो भागोंमें बट जाता था।

प्रथम यह व्यापार मूर जातिके हाथमें इस्वी सन १४५३ पर्यन्त था। परन्तु उसी वर्ष तूर्कोने स्तम्बुल और कोन्स्टेन्टिनोपोल विजय किया और यह व्यापार मार्ग बन्द हुआ। अत यूरोप निवासिओंको भारतके साथ व्यापार मार्ग अनुसन्धानकी चिन्ता हुई। इस समय यूरोप खण्डमें पोर्चुगीजोंका सौभाग्य सूर्य चमक रहा था। और वे पर साहसिक तथा पटु नाविक थे। अब वे सबसे प्रथम मार्ग अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुए। इस्वी सन १४९२ में कोलम्बस भारतका मार्ग अनुसन्धान करनेको चला परन्तु अमेरिका चला गया। किन्तु सन १४९८ म वास्को डिगामा भारत पहुँचनेम समर्थ हुआ और भारत वसुन्धराके कालीकट नामक स्थानम उतरा। और स्थानीय राजा जमोरिनसे साक्षात् किया। जमोरिन उसके अनुकूल पडा परन्तु अरबोंने उसका विरोध किया। अत दूसरे वर्ष १४९९ म लिस्बन लौट गया। इसके अनन्तर इस्वी सन १५०७ में काब्रल केलिकट आया और व्यापारिक कोठी खोल कर बैठ गया। पुन १५०९ में वास्को डीगामा पुन केलिकट आया उस समय उसे जमोरिन के साथ युद्ध करना पडा। परन्तु कोचीन और कनानोरके साथ अनुकूलता हुई। इसी अवधिमें पोर्चुगल नरेशने ६ पटु व्यक्तियोंका आर्मडा नियुक्त कर भारत भेजा। और वे यहा आकर केवल व्यापारमहीं प्रवृत्त नही हुए परन्तु व्यापारिक लाभकी दृष्टिसे दुर्ग आदि बना लडने झगडनेमी लगे। अल्बेर्क अरमडाके पश्चात् भारत आया और १५१० मे गोआ पर अधिकार जमाया। १५१२ म बीजापूरकी सेनाने गोआ पर आक्रमण किया परन्तु हटाई गई। अलबेर्क १५१० में मरा। अनन्तर इन्होंने १५४५ पर्यन्त दक्षिण भारतमें समुद्र मार्गसे गुजरातमें आकर दिव और खम्भात आदि स्थानाको अधिकृत किया। एव सन १५६४ पर्यन्त भारतके विविध स्थानोंमें व्यापारिक केन्द्र बनाया तथा लका आदि अनेक द्वीपोंको विजय किया परन्तु इनका सौभाग्य अस्ताचलोन्मुख हुआ। इन्हें पराभूत करनेवाले अंग्रेज और डच भारतीय

व्यापारिक रंग मञ्चपर उपस्थित हो उनके हाथमें व्यापारके साथही उनके अधिकृत भूभागको हड़प गये।

तिथि क्रमके अनुसार यद्यपि अंग्रेज वणिक संघका स्थान प्रथम है और उनके संघ स्थापन तथा भारत आगमन पर विचार करना उचित प्रतीत होता है तथापि डच-डेन और फ्रेन्चोंका विचार क्रमशः प्रथम करते हैं। क्योंकि इनका संबंध क्षणिक और हमारे ऐतिहासिक कालके लिये कुछभी महत्व नहीं रखता।

अंग्रेजोंके अनुकरणमें डचोंने "संयुक्त डच वणिक संघ" स्थापित किया और भारतमें व्यापार करनेके लिये चल पड़े। और अपने चिर शत्रु पोर्चुगीजोंके स्थानको हस्तगत करने लगे। एकके बाद दूसरा पोर्चुगल प्रदेश उनके अधिकारमें आने लगा। इन्होंने १६४१ में लटेवियाको केन्द्र बनाया और लंकाको विजय किया। और भारत वर्षके कालीकट नामक स्थानमें उतरे। वहांसे चलकर नेगापटन, चिनसुरा, सूरत, भरूच और कोचीनमें व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। परन्तु अंग्रेजोंने इन्हेभी अन्तमें मार भगाया।

डेनोंने सन १६१६ में वणिक संघ स्थापित किया और सिरामपूर आदि स्थानोंमें व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। इनकोभी अंग्रेजोंने निकाल बाहर किया। सबके अन्तमें फ्रेन्च जाति व्यापारिक मञ्चपर उपस्थित हुई। यों तो फ्रेन्चोंका व्यापार ईसवी सनके सत्तरहवीं सदीके प्रारम्भसेही चल पड़ा था! परन्तु ईसवी सन १६६४ में फ्रेन्च वणिक संघकी स्थापना हुई और उसका प्रथम नायक कालबर्ट हुआ। फ्रेन्चोंने भारत वसुन्धराके सुसलिपट्टम् नामक स्थानमें। अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। किन्तु डचोंने वहांसे उन्हें निकाल बाहर किया। तब उन्होंने मार्टिनके नायकत्वमें सन १६७४ में पान्डिचेरी बसाया। बंगालमें जाकर चंद्रनगरमें डेरा जमाया। और बंगालकी खाड़ीसे निकल कर अरब समुद्रके पश्चिम तटवर्ती भूभाग पर दृष्टिपात किया। एवं लाटके परं प्रसिद्ध भरूच और सूरत नामक नगरोंमें अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। वास्तवमें यदि देखा जायतो अंग्रेजोंका सच्चा प्रतिद्वन्द्वी कोई वसुन्धरा पर हुआ है तो वह फ्रेन्च जाति है।

इंगलेन्डकी गद्दी पर नवीन एलिजाबेथ सन १५५८ में बैठी। और उसका राज्य सन १६०३ पर्यंत ४५ वर्ष रहा। इसके इस लम्बे राज्यकालमें अंग्रेज जातिकी सर्व मुखीन उन्नति हु

पूँच, फ्लेण्डर्स और नेदरलेण्ड की हजारों प्रजा स्पेनके राजा फिलिप के अत्याचार से पीडित हो इगलेण्ड म आकर बस गई। ४००० फ्लेण्डर्स वाले इगलेण्ड के नोर्विच म बसे और वह शीघ्र ही ऊनी वस्त्र का केन्द्र बना। सैकडो फ्रान्सीसी रेशमी बिनने वाले जुलाहे खास लण्डन म बसे और रेशम का व्यवसाय चल पडा। इन विदेशियों के व्यवसायके फलस्वरुप वस्त्र व्यवसाय समुद्र समान बढा। योर्कशायर और लेंकेसायर केन्द्र बन गया। अग्रेज नौकाय व्यवसायिक पदार्थ लेकर भूमध्यसागर और अन्यान्य स्थानों म आने जाने लगीं। अग्रेज नाविक दूर देशों में प्रवास करने के लिये लालायित होने लगे। होपकिन इगलेण्ड से चल कर गायेना पहुँचा और कुछ दिनो वहा निवास कर छल बल से ३०० निग्रो गुलामों को पकडा। ड्रेक प्रथम अग्रेज नाविक है जिसने जलमार्ग से ससार भ्रमण किया। वह प्रथम पाच नौकाओं को लेकर स्पेनियार्ड नौकाओंको लूटने के लिये दक्षिण समुद्र में घुमा। परन्तु चार नौकाए विछुड गईं। तथापि उसने हिम्मत नहीं छोडी और स्पेनियार्ड नौकाओं को लूट कर बहुतसा सोना और चादी प्राप्त किया। किन्तु घर आते उसे डर लगा कि कहीं बडी प्रबल स्पेनियार्ड नौकाओंसे भट न हो जाय । अत वह प्रशान्त महासागर के बीच घुस गया। और पूर्व हिन्द को पीछे छोडता हुआ हिन्द सागर और केप ओफ गुड होप से होकर तीन वर्ष म घर पहुचा। रानी इलिजाबेथ ने उसका पूर्ण सत्कार कर एक तलवार के साथ नाइट की उपाधि प्रदान की। जिल्बर्ट और रेलिंग नामक दो वैमात्रिक बधुओं ने अमेरिका में जाकर न्यु फौन्डलेण्ड और विर्जिनिया नामक दो उपनिवेश बसाये

स्पेन नरेश फिलिप इगलेण्ड से असन्तुष्ट था। उसने 'इन्वीन्सीबल आर्मेडा' नामक नौका सघको जिसमें १३० नावें थीं और जिसमें २०००० सिपाही और ८००० नाविक थे—को इगलेण्डपर आक्रमण करनेके लिये भेजा। परन्तु उक्त नौका सघको पूर्ण रूपेण अग्रेजोंने नष्ट कर दिया और साथ ही स्पेनके दक्षिण तटपर आक्रमण कर कार्डि नगरको हस्तगत किया इसके बाद ११ दिसम्बर सन १५९९ को अग्रेज वणिकोंका "ब्रिटिश ईस्ट इडिया" नामक सघ भारतसे व्यापार करनेके लिये बनाया गया। और भारतके साथ व्यापारीक सघर्षका प्रारम्भ हुआ। जब अग्रेज भारतके प्रति अग्रसर हुए तो पोर्त्तुगिज और डच उसके विरोधमें खडे हुए। क्यों कि उस समय वही दोनों समुद्रको अपने आधीन मानते थे।

यहां तक कि पोरचुगीजोंको पोप महाशय नवीन दुनिया अमेरिका आदिका न्याय संगत स्वामी घोषित कर चुके थे। परन्तु अंग्रेजोंके भाग्य के बाल रविका उदय हो चुका था। उसकी कीरणें शीघ्रतासे विकसित हो रही थी। वे सन १५८८ में स्पेनियार्ड "इन्वीन्सिवल आर्मेडा" का नाश कर चुके थे। अंग्रेज नाविक अमेरिका में पहुंच चुके थे संसारकी परिक्रमा कर चुके थे। अत: इन दोनों जातियोंके विरोध जन्य हानि रूप बाधासे और भी उत्साहित हो गये। एवं सन १६११ में बंगालकी खाड़ीके पश्चिम तटवर्ती मछली पट्टममें केन्द्र स्थापित किया। दूसरे वर्ष सन १६१२ में अरब समुद्रके पश्चिम तटवर्ती लाट वसुन्धरा के सूरत नगरमें कोठी खोली। और सावली नामक स्थानमें पोरचुगीजोंका मान मर्दन किया। और अपना आतंक अन्यान्य नाविकों तथा देशियों पर जमाया। अंग्रेज वणिकोंका मार्ग प्रशस्त करनेके विचारसे तत्कालीन इंगलेण्ड नरेश जेम्स प्रथमने सन १६१५ में भारत सम्राट जहांगीरकी सेवा मे अपने दूत सर थोमस रॉ को भेजा। वह इंगलेण्डसे चल कर सूरत उतरा और वहांसे बुरहानपूर होता हुआ सन १६१६ की जनवरी में बादशाहकी सेवामें अजमेर नगरमें उपस्थित हुआ। और बादशाहके लश्करके साथ मांडु, बुरहानपुर और अहमदाबाद आदि स्थानो मे लगभग दो वर्ष पर्यन्त फिरता रहा। परन्तु जो व्यापारिक सुगमता इंगलेण्ड नरेशने मांगी थी उसको असंगत और अनुचित बताकर बादशाहने अस्वीकार कर दिया। तब वह सन १६१८ मे सूरत वापस आ गया। और सन १६१९ स्वदेश लौट गया। परन्तु अंग्रेज हतोत्साह नहीं हुए। लड़ते झगड़ते अपने प्रति द्वन्द्वियों डच आदिसे उनके अधिकृत भूभागको छीनते झपटते अपना व्यापार चालू रक्खा। सन १६२५ में बंगालमें प्रवेश कर अर्मागावमें केन्द्र स्थापित किया। सन १६३९ में फ्रान्सीसी डे ने चन्द्रगिरीके राजासे वर्तमान मद्रास नगर और सेन्ट ज्योर्ज दुर्गका पट्टा प्राप्त किया। सन १६५० में बंगालके मुगल सूबेदारसे बंगालमें व्यापार करनेका परवाना प्राप्त कर हुगली और कासीम बजारमें केन्द्र स्थापित किया।

इंगलेण्ड नरेश चार्ल्स प्रथम सन १६६० में गद्दीपर बैठा और सन १६६१ में पोरचुगल राज्य कुमारी केथेराइनसे विवाह किया। दहेज में उसे वर्तमान बम्बई द्वीप मिला। इस घटनाके चार वर्ष बाद सन १६६४ में महाराजा शिवाजीने सूरत नगरको लूटा। उस समय सूरत नगरमें अंग्रेज, फ्रैंच, डच आदि अन्यान्य यूरोपिअनोंका व्यापारी केन्द्र था। परन्तु

शिवाजीके आक्रमण समय केवल अंग्रेज और डचोंने नगरकी रक्षाके लिये अपना हाथ उठाया। उसके पाच वर्ष पश्चात इंगलेण्ड नरेश चार्ल्स प्रथमने दहेजम मिला हुआ वर्तमान मुम्बई अंग्रेज वणिक्सघको सन १६६६ म दश पाउण्ड वार्षिक देनेके शर्तपर दे दिया। अंग्रेज वणिक सघको अपने राजासे वर्तमान मुम्बई मिलने पश्चात् दूसरे वर्ष शिवाजीने पुन सूरतपर आक्रमण कर तीन दिवस पर्यन्त लूटा। उससे सूरतका व्यापार सदाके लिये नष्ट हो गया। सन १६८६ म अंग्रेजोंका मुठभेड मुगल बादशाह औरंगजेबके साथ हुआ। सन १६६० में चार्नाकने हुगली किनारेके गोविन्दपुर, सुतानटी और कालीघाट नामक तीन ग्राम ११०० रुपियाम खरीद कर वर्तमान कलकत्ता नगरका सूत्रपात किया तथ कलकत्तका प्रसिद्ध दुर्ग फोर्ट विलियमका निर्माण किया और इसी वर्ष लाट प्रदेशके सूरत नगरसे अंग्रेज वणिक सघने हटकर अपना केन्द्र मुम्बईको बनाया। इस प्रकार ब्रिटिश सघका भारतमें मुम्बई, मद्रास और कलकत्ता प्रधान स्थान हुआ।

सूक्ष्म रूपसे ब्रिटिश वणिक जातिका उत्कर्ष और ब्रिटिश वणिक सघके जन्म तथा विकासका परिचय देने पश्चात हम केवल अपने विवेचनको लाट देशके साथ सबध रखनेवाली परिस्थितिके साथ ही परिमित करेंगे। क्योंकि अन्यान्य बातोंसे हमारा सबध नही है। लाट देशके साथ मुम्बई वाली वणिक सघकी शाखाका सबध है। इस शाखाने मुम्बईको केन्द्र बना अपना व्यापार प्रचलित रखा। परन्तु देशकी राजनैतिक हलचलसे अपनेको पूर्ण रूपेण अछुण्ण रखा। परन्तु सन १७७२ में वणिक सघने लाटको राज्यनैतिक हलचलमें भाग लिया। दामाजी गायकवाड की मृत्यु पश्चात उत्तराधिकार लिये जब उसके पुत्रोंमें विवाद उपस्थित हुआतो उसके पुत्र फतेहसिंहने सघसे सहाय माँगा और उसने उसके साथ आक्रमण प्रत्याक्रमणमें परस्पर सहयोगात्मक सधि की और उसके अनुसार भरूचके नवाबसे भरूच छीन उस दे दिया। पर भरूच इलाकेका आधा भाग अपने पास रखा। इसके अनन्तर सघ देशके राज्यनैतिक मच पर खेलने लगा।

इसी वर्ष १७७२ में पेशवा माधवरावकी मृत्यु पश्चात उसका छोटाभाई पेशवा बना परन्तु थोडे दिनों बाद १७७३ म उसे सिपाहियोंने विद्रोह कर राघोबा (रघुनाथराव) के सामनेही उसे मार डाला। अनन्तर राघोबा पेशवा बन बैठा। परन्तु तीन महीना बाद नारायणरावकी स्त्री नेपुत्र प्रसव किया। वह जब ४० दिनका हुआ तो राजारामने उसे पेशवा बनाया। इसपर

रघुनाथरावने विद्रोह किया परन्तु १७७४ के मार्चमें हार कर उत्तर हिन्दुस्तानमें गया। किन्तु किसी स्थानमें आश्रय न मिलनेसे सूरतमें आकर अंग्रेज वणिक संघसे प्रार्थना की। संघने निम्न शर्तोंपर सहाय देना स्वीकार किया।

१–संघ रघुनाथरावको पेशवापद प्राप्त करनेमें सैनिक सहाय प्रदान करेगा।

२–संघके सैनिक सहाय प्रदानके उपलक्षमें रघुनाथराव पेशवापद प्राप्त करनेके अनन्तरः–

अ) संघको सूरत और भरूचके आसपास २२५००० वार्षिक आयवाला भूभाग देगा।

आ) एवं सेनाका कुल व्यय रघुनाथरावको देना होगा।

इस संधिका नाम सूरत संधि पड़ा और संघने इसके अनुसार एक सेना देकर रघुनाथरावको पूना भेजा और दूसरी सेना कर्नल केटिंगकी अध्यक्षतामें गुजरातमें रवाना की। कर्नल केटिंगकी सेनाने गुजरात जाकर अड़ास नामक स्थानमें पेशवाकी सेनाको हराया। परन्तु रघुनाथरावके साथ जानेवाली सेनाको मरहटोंके सामने मुहकी खानी पड़ी। संघकी सेनाको मरहटोंसे पिटते देख कर कलकत्ताके प्रधानने रघुनाथरावके साथ सन १७७५ की सूरतवाली संधिको अन्यायपूर्ण बताकर अस्वीकार किया। पेशवासे दूसरी संधि स्थापित करनेके लिये मेजर आप्टनको इस वर्षके अन्तमें पूना भेजा। मिस्टर आप्टनने सन १७७६ के मार्चमें निम्न शर्तके साथ संधि की। जो पुरन्दरकी संधिके नामसे अभिहित हुई।

१–संघ राघोबा ( रघुनाथराव ) को नाना फडनवीसके सुपुर्द करेगा।

२–संघ संधिकी शर्त पूरी करेगा इसको विश्वास दिलानेके लिये अपने दो कर्मचारियोंको प्रतिभूरूपमें पूना भेजेगा।

३–भरूचके पासवाला भूभाग सिन्धियाको सौंप देगा

४–भविष्यमें संघ रघुनाथरावसे कुछ भी सम्बन्ध न रखेगा।

५–रघुनाथरावको ३००००० वार्षिक मिलेगा। और उसे कोपरगांवमें रहना होगा।

६–संघ पेशवाकी सत्ता स्वीकारेगा।

बलिहारी अलौकिक न्याय परायणताकी ? खैर थोडे दिनोंके बाद सघने पुरन्दरकी इस सधिको तोड़ दिया। उनके तोडनेका कारण यह था कि बोर्ड ओफ डायरेक्टरकी दृष्टिमें राघोबा कृत सूरत वाली सधि न्यायोचित ठहरती थी। और उसने उसके पालनका आदेश किया। अत सन १७७८ में सघने राघोबाके साथ दूसरी सधि की और उनका मरहट्टोंके साथ प्रत्यक्ष विग्रह प्रारभ हुआ। इसी अवसरम सघके नेता हेस्टींग्सने कूटनीतिमे काम लिया। माधोजी भोसलसे गुप्त सधि कर युद्धमें प्रवृत्त होने से उसे पृथक रखा। जनरल गोडार्ड भोपालके नवाबसे मैत्रीकर गुजरातमे घुसा। कर्नल योकाम सिंधियाके शत्रु गोहदके राजासे मैत्री स्थापित कर सिंधियासे भिड गया। और सन १७८१ म फतेसिंह गायकवाडसे मैत्री की जिसकीशर्तें (१) गायकवाड पेशवासे स्वतत्र माना जायगा (२) अग्रेज गायकवाडकी सहायता ३००० फौजसे करगे (३) समस्त गुजरात प्रदेश अग्रेज और गायकवाड आपसमें बाट लगे। बादको सेनोंने डभोई और अहमदाबादको हस्तगत किया। अन्तमें महाराष्ट्रमें घुसा परन्तु आगे नहीं बढ सका। किन्तु मुम्बईकी सेनाने पानवेल, कल्याण, मुम्बई आदि विजय किया। तथापि सघको हैदरअलीके साथ चाले युद्धके कारण सन १७८२ मे सलबाईकी निम्न शर्तवाली सधि करनी पडी।

१–सिंधियाके कुल किला आदि सघ वापस करेगा।

२–भरुच सिंधियाको समर्पण करेगा।

३–सघको शाष्टि द्वीपादि मिलेगा।

४–रघुनाथरावको २५००० मासिक वृत्ति मिलेगी। परतु पेशवापदकी प्राप्तिपर दृष्टिपात न करेगा।

५–सघ अहमदाबाद प्रदेश फतेसिहराव गायकवाडको समर्पण करेगा।

६–सघ सवाई माधवरावको पेशवा स्वीकार करेगा।

७–पेशवा अग्रेज सघके अतिरिक्त अन्य यूरोपियन व्यापारियोंको सुगमता नहीं देगा।

८–सघ रघुनाथरावको कभी भी भविष्यम आश्रय नहीं देगा। और पेशवाके अन्तर मध्य और अन्याय बातोंमें हस्तक्षेप नहीं करेगा।

परन्तु सन १७९५ में सवाई माधवरावकी मृत्यु हुई और पेशवा पदका विवाद उठा तो अंग्रेजोने कथित सन्धिकी शर्तोकी उपेक्षा कर हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। क्योंकि उन्हें उपयुक्त अवसर मिला। इस समय पेशवा पदका अभिलाषी राघोबाका पुत्र बाजीराव था। दौलतराव सिंधियाने उसको कैद कर उसके भाई चिमनाजीरावको पेशवा बनाने चला। परन्तु नाना फडनवीसने दौलतरावका विरोध कर उसे बन्दीमुक्त किया। अत. वह पुनः सन १७९६ में पेशवा बना। पेशवा बनने बाद उसने सिंधियासे मिल कर नानाको बन्दी किया। नानाके बन्दी होने पश्चात् वह सिंधियाके विरुद्ध हुआ। अतः उसने नानाको छोड़ दिया। और वह सन १८०० में मर गया। नानाके मरनेके पश्चात बाजीराव अपने सरदारोंके साथ लड़ने झगड़ने लगा। उसके भाई विठोजीरावको मरवा डाला। दौलतराव सिंधियाको सर करनेके विचारसे उसके और जसवन्तराव होलकरके विवादमें घुसा परन्तु होलकरके विरुद्ध चलने लगा। उसकी जागीर जप्त की। उसके भतीजे खण्डेरावको कैद किया। अन्तमें दौलतरावको जसवन्तने सन १८०२ के अक्टोबरमें पूनामें हराया और राघोबाके दत्तक पुत्र अमृतरावके पुत्र भास्कररावको पेशवा बनाया। अतः बाजीराव अंग्रेज वणिक संघके शरण गया। और सन १८०२ के ३१ वी दिसंबरको बसई नामक निम्न सन्धिपर हस्ताक्षर किया।

१—अंग्रेज वणिक संघ और बाजीराव एक दूसरेको आक्रमण प्रत्याक्रमण समय सहाय प्रदान करेंगें।

२—अंग्रेज बाजीरावको पेशवा पद प्राप्त करनेमे सहाय देगे।

३—इसके उपलक्षमें बाजीराव अंग्रेजोंको २६००००० वार्षिक आयवाला प्रदेश देगा।

४—एक अंग्रेज सेना अपनी सेनामें रखेगा।

५—किसी अन्य युरोपियनको अपनी सेनामें नही रखेगा।

६—अपने राजनैतिक विवादको अंग्रेजोंकी मध्यस्थतासे निर्णय करायेगा।

७—इस निमित्त एक ब्रिटिश रेजिमेण्ट पूनामें रखेगा।

८—गुजरात आदि छोटे राज्योंसे स्वत्व उठा लेगा।

इस सधि पत्रके अनुसार एक अंग्रेज सेना पूनामें गई और सर आर्थर वेलेस्लीने तत्परतासे उसे पेशवा पदपर अधिष्ठित किया। एव लाटका वाँसदा, सचीन, राज्यपीपला, माडवी तथा कोकणका धर्मपुर और गुजरातके दूसरे राज्य पेशवाकी आधीनतासे मुक्त हो ब्रिटिश के नैतिक जुल्म जुडे। पुनश्च इन राज्योंपर जो पेशवाका सार्वभौम अधिकार और तज्जन्य स्वत्व था वह अवान्तर रूपसे वणिक सधको मिला। बाजीरावको पेशवा बना उन्होंने सिंधिया और होल्करको अपने देशमें जानेके लिये सवाल किया परन्तु इन दोनोंको कथित सधिके अनुसार महाराष्ट्र साम्राज्य और उसका अन्त प्रतीत हुआ अत उन्होंने उसे नही माना। अत सन १८०३ में अंग्रेजोंके साथ उनकी लडाई शुरू हुई। किन्तु इस समय अंग्रेजोंका भाग्य चमक रहा था। उन्होंने सर्वत्र विजय प्राप्त किया। सप्टेम्बरमें लार्ड लेक अलीगढ हस्तगत कर दिल्ली गया। और सिंधियाकी सेनाको हराकर दिल्लीपर अधिकार किया और अन्ध मुगल बादशाह अंग्रेजोंका रक्षित बना। गगा यमुनाके दोआबसे सिंधियाकी सत्ताका अन्त हुआ। इधर दक्षिणमें आर्थर वेलेस्लीने अहमदनगर अधिकृत किया अनन्तर सिंधिया और भोंसलेकी सेनाको हराकर असीरगढ और बुरहानपुर लिया। अन्ततोगत्वा कर्नल वुडिंग्टनने भरूच छीन लिया। उधर भोंसलेकी सेनाका अर्गोलाम पूर्ण पराजय हुआ। इस प्रकार सिंधियाको अपने साथी भोसलेके साथ अंग्रेजोंसे सन्धि करनी पडी। उन्होंने दोनोंसे पृथक पृथक सन्धि की। १७ दिसम्बर सन १८०४ को भोंसलेके साथ सधि हुई। उसके अनुसार उसने बालेश्वर, कटक और गोदावरी तथा वर्धाके मध्यका भूभाग अंग्रेजोंको दिया। एव सम्बलपुरके समीपवर्ती रजवाडो तथा निजामपरसे अपना स्वत्व उठा लिया और अंग्रेजोंका सरक्षित बना। तथा किसी युरोपियनको अपनी नौकरीमें नहीं रखना स्वीकार किया। इधर दौलतरावको भी अहमदनगर और अजण्टाके पासका मुल्क, भरूच और गगा यमुनाके मध्यका मुल्क देना पड़ा। बादशाह आलम और जयपुर, जोधपुर और बुन्दीपरका स्वत्व छोड़ना पड़ा। अन्ततोगत्वा अंग्रेज सघका रक्षित राजा होना स्वीकार करना पड़ा। तब सघने उसे असीरगढ, चम्पानेर और बुरहानपुर वापस किया। इस लूटमें अहमदनगर पेशवाको, एजन्टादि भूभाग निजामको मिला।

सघने मराठा, गायकवाड पेशवा, भोसला और सिंधिया, की कमर तोड कर गगा यमुना तटके दिल्ली आदि, बुन्देलखण्ड, गोंडवाना, ओड़ीसा, छोटा नागपूर, मालवा,

राजपूताना, गुजरात और काठियावाड़ में अपना आधिपत्य स्थापित कर लियाथा परन्तु मरहठा साम्राज्यका दीप टिम टिमाता था। संभव था कि उसे पुनः शक्ति संचय रूप तेल मिल जाय और वह पूर्ण शक्ति रूप ज्योति प्राप्त कर सके। यह आशंका होल्करके तरफसे थी। क्योंकि उसकी शक्ति अक्षुण्ण बनी थी। एवं वह कथित सिंधिया, भोंसले और वणिक संघके युद्ध समय चुप चाप बैठा था। यदि उसने अपने भाइयोंका साथ दिया होता तो कदाचित इस युद्धके परिणामका इतिहास भिन्न प्रकारसे लिखा गया होता। परन्तु खेदकी बात है कि उनका साथ देनेको कौन बतावे जब संघ सेना एक आध स्थानों पर विजयी हुई तो उसने सघके सेनापतिके पास सम्वाद भेजा कि वह सिंधियाके प्रतिकूल संघकी सहायता करेंगे यदि संघ उसे कुछ भूभाग देनेका वचन देवे। बलिहारी है स्वार्थान्धातकी! परन्तु संघको उसकी सहायताकी आवश्यकता न थी। अतः उसने उसकी उपेक्षा की। अनन्तर जसवंतरावने राजपूतानाके राजाओंको—जो संघके आधीन हो चुके थे—सताने लगा। अन्तमें सन १८०४ में संघके साथ जसवंतका विग्रह प्रारंभ हुआ। प्रथम जसवंत विजयी हुआ। कर्नल सामूनको युद्ध क्षेत्रमे अपना सारा सामान छोड़ भागना पड़ा। जसवंतराव दिल्ही तक मारता कूटता चला गया परन्तु अन्तमें उसे हारना पड़ा। उसके परं मित्र भरतपुर वालोंको अंग्रेजोंने हराया। उसने अंग्रेजोंकी आधीनता स्वीकार कर ली। जसवंतकी कमर टूट गई। अन्तमें उसने अंग्रेजोंके हाथ आत्म समर्पण किया। उन्होंने उसको उसका सारा प्रदेश कुछ भूभागको छोड़ वापस किया। वहभी सन १८०५ में उसे मिल गया। १८११ में जसवंतरावकी मृत्यु हुई।

अन्ततोगत्वा होते हवाते सन १८१८ में अंग्रेजोंको पूर्ण विजय प्राप्त हुई। बाजीराव पेशवा पराभूत हुआ तथा पदभ्रष्ट कर उत्तर हिंदुस्तानमें विठूर नामक स्थानमें भेज दिया। सतारा पति अंग्रेजोंका कैद बना। अंग्रेज गुजरात, लाट, महाराष्ट्र आदिके स्वामी बन गये। इतनाही नही काठियावाड़, राजपूताना, मालवा, बुंदेलखण्ड, गंगा यमुना दोआब, बंगाल, विहार, ओड़ीसा, नागपूर, छोटा नागपुर तथा दक्षिण भारत आदि भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें संघका सार्वभौम एक छत्र प्रभाव स्थापित हो गया। संघ मनभाया करने लगा। किसी भारतीय नरेशमें इसके प्रतिकूल उंगली उठानेका साहस न रहा। हां १८५७–५८ के बलवाके समय

अंग्रेजोंको घोर चिन्तोंम पडना पडा था। इस समय बाजीरावने अपने मनके गुबारे खुल कर फोडे। कानपुर आदि हस्तगत कर एकबार पुन स्वाधीनता प्राप्त करनेकी चेष्टाम प्रवृत्त हुआ। महाराणी लक्ष्मीबाईने भारतीय स्त्री समाजका–अपने हाथके बलका कौशल दिखना मुखोज्वल किया। तातिया टोपीने लाट प्रदेश तक आकर अपने हाथके जौहर दिखलाये। परन्तु भारतीय सरक्षित नरेशोंने दिल खोल कर सघको साहाय्य प्रदान किया। सघ इस विप्लव समयमी विजयी हुआ। परन्तु सघका अन्त दूसरे प्रकारसे हुआ। भारत, इगलेडकी राणी विक्टोरियाके आधीन हुआ। उन्होंने भारतकी बागडोर अपने हाथ ली। अनेक प्रकारका वादा किया। परन्तु उसका पालन किया या नही यह अज्ञेय नहीं है, अंग्रेज जाति भारतका शासन परं कौशलके साथ करती है इसने भारतकी सेनासे अंग्रेज साम्राज्यका खूब विस्तार किया। भारतीय सेनाने काबुल, बरमा, चीन, आफ्रीका म युध्द किया है। और वहाकी जातियोंको अंग्रेज साम्राज्यके आधीन बनाया है। इसने विद्या आदिका खूब प्रचार किया। रेल, तार, डाक आदि बना कर प्रजाको आनन्द दिया है। परन्तु सबसे अमूल्य वस्तु स्वातन्त्र्यका अपहरण किया है। अंग्रेजोंके ससर्गसे भारतीयों के दृष्टिकोण बदल गए है। उनके हृदयम जातीयताके अकुर रोपण हो चुके है। वे स्वाधीनता और पराधीनताके अन्तरको समझ गये है। धर्म और जातीयता के सकुचित विचारके कुपरिणामस वे अब अनभिज्ञ नहीं रहे है। परन्तु चिरकालसे आनेवाली फूट जन्य विशृखला धमान्धता और ऊँच नींचका भाव अभी उनका पिण्ड नहीं छोड रहा है तथापि दूरदर्शी और अनुभवी व्यक्तियों और स्वदेश और स्वजातिके निमित्त सर्वस्व परित्याग करनेवाले नव युवकोंका अभाव नहीं है। वे स्वातन्त्र्य प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील हो रहे है। जातीय महासभा सन १८८५ से इसमें प्रयत्न शील है विगत जर्मन युद्ध समय भारतीयोंने अंग्रेजोंकी सहायता धन, जनसे दिल खोलकर की थी। १२००००० से अधिक भारतीय सेनाने युद्धमें भाग लिया फ्रान्सके अल्सास और लोरेन्सम जबर जर्मनोंके छक्के छुडा फ्रान्सकी लाज बचायी। मेसेपोटेमियाम जाकर तुर्कोके दात तोडे। अंग्रेजोंने भारतीयोंकी शक्ति और राज्यभक्तिकी भूरि भूरि प्रशसा की। उपलक्ष्यमें शासन सुधार हुआ। परन्तु वह भारतीयोंको सतुष्ट नहींकर सका।

अतः भारतीयोंने नवीन शासन सुधार योजनाका जन्मकाल सन १६२१ से ही विरोध किया। सर्व प्रकारके आन्दोलन से काम लिया। अन्तमें सरकारका आसन डोला उसकी कुम्भकरणी निद्रा भंग हुई। उसे नव निर्मित "माउन्ट फर्ड" सुधार योजना में परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत हुई। इतना होते हुए भी उसने भारतीयोंकी मांग "स्वभाग्य विधान ( Selfdetermination ) की उपेक्षा कर साइमन कमीशन नियुक्त किया। देश के ओरसे छोर पर्यन्त विरोधका ववन्डर उठ गया। गर्म नर्म सवोंने विरोध किया पर कमीशन अपने मार्ग पर अग्रसर होता गया। अन्त में अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। रिपोर्टने भारतीय विक्षुब्ध हृदयको और भी विक्षुब्ध बनाया।

अन्तमें सरकारको अपनी भूल मालूम हुई। उसने भारतीय और ब्रिटिश प्रतिनिधियोंकी गोलमेज सभा आवाहन किया परन्तु दुर्भाग्य से भारतीय प्रतिनिधियोंका निर्वाचन जनता से न होकर उनकी नियुक्ति सरकार द्वारा हुई। अतः तीनवार गोलमेज सभा होनेपरभी सन्तोपजनक परिणाम नही हुआ। गोलमेज सभाकी रिपोर्ट "साइमन कमीशन" की रिपोर्टसे भी असन्तोपकारक हुई। यदि कुछ हुआ तो वह यह ही कि भारतीय-भारत और ब्रिटिश-भारतके शासनका एकीकरण स्वीकृत किया गया। एकी करणकी योजना अब राजकीय स्वीकृति प्राप्त कर चुकी है।

प्रस्तुत सुधारके अनुसार अव भारत वर्षकी सरकारका नाम "Federal Government" संघ सरकार होगा। इसके "Federal Unit" सांघिक मण्डल दो भागोंमें विभक्त हैं। जिनका नाम भारतीय भारत और ब्रिटिश भारत है। "Federal Legislature" संघसभा दो भागोंमें वटी है। प्रत्येक शासन सभामें ब्रिटिश भारतको २-३ और भारतीय भारतको लगभग १-३ प्रतिनिधि निर्वाचन करनेका अधिकार है।

भारतीय भारत का सांघिक मंडल आसाम, वंगाल विहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश संयुक्त प्रदेश, पंजाव, सीमा प्रदेश, सिन्ध, मद्रास, वम्बई १२ भागोंमें वटा है। प्रत्येक मंडलको अपने आभ्यान्तरिक शासनमें "Provincial Autonomy" स्वतन्त्र शासन का अधिकार प्राप्त है। योंतो प्रत्येक प्रान्त और मंडलको अपना "Legis lature" प्राप्त है परन्तु वंगाल विहार आदि कतिपय प्रांन्तोंमें छोटी वड़ी दो धारा सभायें हैं।

भारतीय भारतका साधिक (Unit) मडल भी अनेक भागोंमें बना हुआ है। मैसूर, ट्रावनकोर, हैदराबाद, बडोदा, काश्मीर आदि बडे राज्य "Separate entity" है और छोटे राज्यों का अनेक "Unit" बनाया गया है।

प्रस्तुत सुधार ने यद्यपि भारतीय भारत को ब्रिटिश भारतके कार्यों में हस्त क्षेप करने का अधिकार प्रदान किया है परन्तु ब्रिटिश भारतको भारतीय भारतके अतर विधानमें हस्तक्षेप करने का कुछ भी अधिकार नहीं दिया है। अत भारतीय सघ शासनके स्थापित होतेही भारतीय नरेशोंको ब्रिटिश भारतके अतर में हस्तक्षेप करने का अवसर मिलेगा। परन्तु भारतीय सघशासन तभी सगठित होगा जब लगभग आधे राजगण सम्मिलित होंगे।

नवसुधार योजना ब्रिटिश भारत में १ ली अप्रैल सन १९३७ में लागू होगी। इसके निमित्त अभीसे धारा सभाओंके निर्वाचनके लिये प्रत्येक राजनैतिक दल सरगर्मी से काम कर रहा है।

हम विवेचनीय इतिहासके सभी पूर्व और परकालीन राज्यवशोंके उत्कर्षापकर्षका दिग्दर्शन करा चुके है। आशा है इसके अवलोकन पश्चात् आगे चलकर इतिहासके अगो पागोंके विवेचनको हृदयगम करनेम हमारे पाठकोंको सहायता मिलेगी।

# युवराज शिलादित्य का दान पत्र।

## प्रथम पत्रक।

१ ॐ स्वस्ति जयत्याविष्कृत विष्णोर्वाराह चोभितार्णव। दक्षिणो-न्नत दंष्ट्राग्र वि

२ श्रान्त भुवन वपु'॥ श्रीमता सकल भुवन संस्तूयमान मानव्यस गोत्राणा

३ हारिती पुत्राणा सप्त लोक मातृकाभिस्सप्त मातृकाभिर्वर्धितानां कार्तिकेय प

४ रि रक्षण प्राप्त कल्याण परंपराणा भगवन्नारायण प्रसाद समासा दितवाराह ला

५ ञ्छनेक्षण वशीकृताशेषमहीभृता चौलुक्य नामान्वये निज भुज बल पराजिता

६ खिल रिपु महिपाल समिति विराम युधिष्ठिरोपमान सत्य विक्रम श्री पुलकेशी वल्लभः तस्य

७ पुत्रः परम महेश्वर मातापितृ श्री नागवर्धन पादानुध्यात् श्री विक्रमादित्य सत्या।

८ श्रय पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परम महेश्वर भट्टारकेन अनिवारित पौरुषा

९ क्रान्त पल्लवान्वयाज्ज्यायसा भ्रातासमभिवर्धित विभूतिर्धराश्रय श्री जयसिंह

१० वर्मा तस्य पुत्रः शरदमल सकल शशधर मरीचिमाला वितान विशुद्ध कीर्ति पताका।

---

# युवराज शिलादित्यका दान-पत्र।

## द्वितीय-पत्रक।

१ विभास्ति समस्त दिगन्तरालयः प्रदत्त द्विजराज वर लावण्य सौ

२ भाग्य संपन्न कामदेव सकल कला प्रवीणःपौरुषवान विद्याधर चक्र

३ वर्तीव श्रयाश्रय श्री शिलादित्य युवराजः नवसारिकामधिवसतः नवसारि

४ का वास्तव्य काश्यप गोत्र गामीः पुत्र स्वामन्त स्वामी तस्य पुत्रा

५ य मातृ स्थविरः तस्यानुजन्म भ्राता किक्क स्वामिनः भागिक्क स्वामिने अध्वर्यु ब्रह्मचारि

६ णे ठहारिका विषयान्तर्गत कराडवलाहार विषये आसट्टी ग्रामं सोद्रंकं सप

७ रिकरं उदकोत्सर्ग पूर्वम्माता पित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोभि वृद्धये दत्तवान् ॥

८ वाताहतदीप शिखा चंचलां लक्ष्मीमनुस्मृत्य सर्वैरागामिभि नृप-तिभि धर्मदायोऽ

९ नु मन्तव्यः। बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजाभिः सगरादिभिः। यस्य यस्य यदा भूमि

१० स्तस्तस्य तस्य तदा फलं॥ माघ शुद्ध त्रयोदश्यां लिखितमिदं सन्धि विग्रहिक श्री धनंजयेन

११ संवत्स शत चतुष्टय एक विंशत्यधिके ४२१ ओं।

# युवराज शिलादित्यके दान पत्र

## का

## छायानुवाद ।

कल्याण हो। वाराह रूप धारी भगवान विष्णु, जिन्होंने समुद्रका मथन और अपने ऊपर उठे हुए दक्षिणान्तके अग्रभाग पर पृथ्वीको विश्राम दिया, का जय हो। श्रीमान् मानव्य गोत्र सम्भूत हारिती पुत्र, जो सकल समागम स्तुतिका पात्र है, और जिसको सप्त मातृआने सप्त मातृकाओंके समान पालन किया तथा जिसकी रक्षा भगवान कार्तिकेयने की है, और जिसने परपरागत वाराहध्वजको भगवान विष्णुकी कृपासे प्राप्त किया है, पुनश्च जिसने क्षण मात्रमें पृथिवीको शत्रु रहित किया उस चौलुक्य वशमें राम और युधिष्ठरके समान सत्याश्रय श्री पुलकेशी वल्लभ हुआ जिसने अपने भुजबलसे समस्त शत्रु राजाओं को वशीभूत किया। उसका पुत्र परम महेश्वर माता पिता और नागवर्धनका पादानुध्यात श्री विक्रमादित्य सत्याश्रय हुआ। उस परम भट्टारक महाराजाधिराज पृथ्वी वल्लभने पल्वों के समस्त पौरुषको आक्रान्त किया। उसका छोटाभाई जयसिंह अपने भाई के द्वारा अभिवर्धित राज श्री जयसिंहवर्म्मा हुआ। जिसका पुत्र पूर्ण विकसित चद्रमा समान कीर्तिमान, कामदेव के समान कांतिमान–ब्राह्मणो के समान विनीत–सकल कलाओं का ज्ञाता–पौरुष तथा विद्वान चक्रवर्ती तुल्य श्री आश्रय युवराज शिलादित्यने नवसारिका वास करते हुए नवसारी के रहने वाले काश्यप गोत्री गामी स्वामीके पुत्र स्वामन्त स्वामी–उसके पुत्र मातृस्थविर के छोटेभाई विक्रमस्वामी के पुत्र भागिवस्वामी अध्वर्यु ब्रह्मचारीको ठाहरिका विषय के उप विषय कण्डवला-हारि के आसट्ठी नामक ग्रामको समस्त भोगभाग आदि दाय युक्त सकल्प पूर्वक माता पिता तथा अपने पुण्य और यशकी वृद्धि के लिए–सासारिक वैभव को वायु से क्षत दीप शिखा समान चचल विचार कर प्रदान किया। इस धर्मदायको समस्त आगामी नरेशोंको पालन करना चाहिए। क्योंकि इस वसुधा का पूर्ववर्ती सागर आदि अनेक राजाओं ने भोग किया परन्तु पृथ्वी का स्वामी जो होता है उसको ही उसके दान का फल मिलता है। माघ शुद्ध त्रयोदशी को इस शासन पत्र को सन्धि विग्रहिक श्री धननयने लिखा। सवत्सर सौ चार एक विंश। ४२१। ओं।

---

# युवराज शिलादित्यके दान पत्र
## का
## विवेचन।

प्रस्तुत ताम्रपत्र युवराज शिलादित्य का शासन पत्र है। ८. १। २ लम्बा और ४. ३। ४ चौड़े आकार के ताम्रपट पर उत्कीर्ण है। ताम्रपटों की संख्या दो है। प्रथम ताम्रपट में पंक्तिओं की संख्या १० और दूसरे में ११ है। दोनों पटों के मध्य छिद्र हैं उसमें एक अंगूठी लगी है। अंगूठी के ऊपर राजा की मुद्रा है। उसमें श्री आश्रय अंकित है। ताम्र लेख पुरातन चौलुक्य शैली का है, लेखकी भाषा संस्कृत है।

लेख पर दृष्टिपात करने से दानदाता की वंशावली निम्न प्रकारसे उपलब्ध होती है।
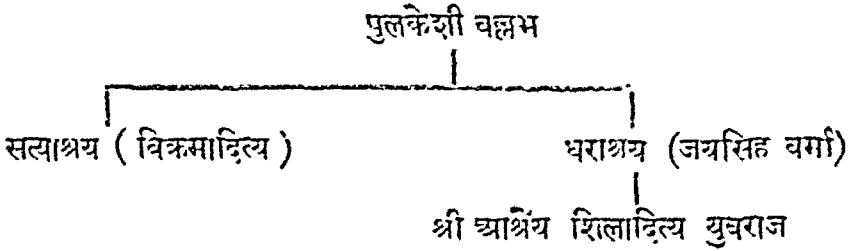
वातापिके चौलुक्य वंशकी वंशावलीसे हमें प्रकट होता है कि सत्याश्रय-विक्रमादित्य-पुलकेशी द्वितीयका पुत्र था। इस ताम्रपत्रमेंभी उक्त बातें पाई जाती हैं अतएव इस ताम्रपत्र कथित पुलकेशी वल्लभ और पुलकेशी द्वितीय अभिन्न व्यक्ति है। इस लेखमें सत्याश्रय विक्रमादित्यको "माता पितृ श्री नागवर्धन पादानुध्यात" कथित किया गया है ताम्रपत्रोंमें "पादानुध्यात" पद स्वर्गीय राजाके उत्तराधिकारीको ज्ञापन करता है। चाहे वह पूर्व राजाका भाई-भतीजा-चचा अथवा पुत्र प्रभृति कोई भी क्यों न हो। अत एव सम्भव है कि विक्रमादित्यको अपने पितासे राज्य न मिला हो। उसके और उसके पिताके मध्य नागवर्धन ने राज्य किया हो इसीको ज्ञापन करनेके लिये यहांपर "माता पिता और श्री नागवर्धन पादानुध्यात" पदका प्रयोग किया गया है। सम्भव है नागवर्धन पुलकेशीका चचेरा भाई हो।

परन्तु डाक्टर फ्लीट द्वारा सपादित लेखसे प्रकट होता है कि पुलकेशी द्वितीयके लिये भी "नागवर्धन पादानुध्यात पदका प्रयोग किया गया है। अतएव डाक्टर फ्लीट "नागवर्धन पादानुध्यात" पदका अर्थ किसी देव विशेषका करते है। पण्डित भगवान लाल इन्द्रजी भी फ्लीट महोदयके कथनसे सहमत हे। हमारी दृष्टिमे भी उक्त विद्वानोंकी धारणा सत्य प्रतीत होती है। क्योंकि "नागवर्धन पादानुध्यात" पदका प्रयोग नागवर्धनके लेखमेंभी पाया जाता है। यदि हम देवताका ग्रहण न करें तो पिता पुत्र दोनोंका एकका उत्तराधिकारी होना सिद्ध होता है। यह क्योंकर हो सकता है? अत "नागवर्धन पादानुध्यात" पदका यथार्थ भाव देवता ग्रहण करनेसे ही सिद्ध होगा।

विक्रमादित्यका उत्तराधिकारी धराश्रय जयसिंह और उसका उत्तराधिकारी श्री आश्रय शिलादित्य प्रकट होता है। यही शिलादित्य इस ताम्रपत्रका शासन कर्ता है। परन्तु वातापिके चौलुक्य वशावलीमें न तो जयसिंयका और न उसके पुत्र शिलादित्यका नाम पाया जाता है। इस अभावका कारण भी वातापिके चौलुक्योंके लेखम नही मिलता। वर्तमान लेखसे उक्त उलझन मिट जाती है क्योंकि इसमें जयसिंहके सम्बन्धमें निम्न वाक्य है —

"ज्यायसा भ्राता समभिवर्धितविभूति"

पाया जाता है। इसका भाव यह है कि विक्रमने जयसिंहको लाट देश दिया था। और जयसिंह लाट प्रदेशमें चौलुक्य वशका राज्य सस्थापक हुआ।

पर वलसाडसे प्राप्त गुजरातके चौलुक्य मगलराजके ताम्रपत्रमें वशावली निम्न प्रकार से दी गई है
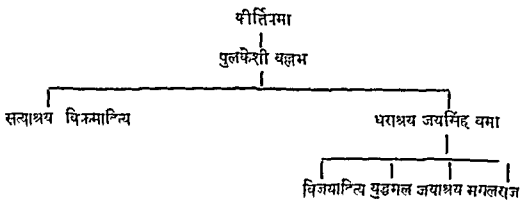
दोनों वंशावलियोंके तारतम्यसे प्रकट होता है कि कीर्त्तिवर्मासे लेकर विक्रमादित्य और जयसिंह पर्यंत कोई अन्तर नही है। परन्तु जयसिंहके पुत्रोंके नामादि सम्बन्धमें मतभेद है। नवसारिका ताम्रपत्र उसके पुत्रका नाम श्री आश्रय शिलादित्य वताता है और वलसाड़का ताम्रपत्र विजयादित्य, युद्धमल, जयाश्रय और मंगलराज नाम ज्ञापन करता है। अतएव दोनोंमें घोर मतभेद है। मंगलराजने उक्त वलसाड़वाला लेख मंगलपुरीमें शासनी भूत किया था। अन्यान्य विवरणमें भी पाया जाता है परन्तु मंगलराजके लेखमें शिलादित्यका उल्लेख नही। यद्यपि वह नवसारीवाले लेखमें स्पष्टतया युवराज लिखा गया है इससे स्पष्टतया प्रकट होता है कि वह जयसिंहका वड़ा लड़का था।

मंगलराजके लेखमें शिलादित्यका उल्लेख न पाये जानेके दोही कारण हो सकते हैं या तो वह युवराजावस्थामें ही मर गया था अथवा मंगलराजने उसे गद्दीसे उतार दिया था हमारी समझमें उसके मंगलराज द्वारा गद्दीपरसे उतारे जानेकी अधिक सम्भावना है। जवतक इसका परिचायक कोई स्पष्ट प्रमाण न मिले हम निश्चयके साथ कुछ भी नही कह सकते।

इसके अतिरिक्त नवसारी वाले प्रस्तुत ताम्रपत्र और वलसाड़वाले मंगलराजके ताम्रपत्रकी तिथियोंका अन्तर वाधक है शिलादित्यके शासनपत्रकी तिथि अंकों और अक्षरोंमें स्पष्टरूपेण संवत ४२१ और मंगलराजके शासनपत्रकी तिथि शाके ६५३ है। पूर्व संवत ४२१ न तो शक और विक्रम संवत हो सकता है। क्योंकि उसे विक्रम संवत माननेसे उसको हो शक वनानेके लिये १३५ जोड़ना पड़ेगा। अत: ४२१+१३५=५५६ होता है। इस प्रकार मंगलराजके लेख और प्रस्तुत लेखमें ९७ वर्षका अन्तर पड़ता है। दो भाइयोंके मध्य ९७ वर्षका अन्तर कदापि सम्भव नहीं। इस हेतु उक्त संवत ४२१ विक्रम संवत नही हो सकता। पुनश्च उक्त संवतको विक्रम संवत न माननेका कारण यह है कि यह समय शाके ५५६ के वरावर है। और हमें निश्चितरूपसे विदित है कि वातापिके चौलुक्य राज्य सिंहासनपर शिलादित्यका दादा पुलकेशी द्वितीय आसीन था। पुलकेशीके पश्चात हमें आदित्यवर्मा और चन्द्रादित्यके राज्य करनेका स्पष्ट परिचय प्राप्त है। एवं चन्द्रादित्यके पश्चात उसकी राणी विजयभट्टारिका महादेवीके शासन करनेका भी प्रमाण उपलब्ध है। अन्ततोगत्वा शाके ५५६ से लगभग २० वर्ष पर्यन्त शिलादित्यके चाचा विक्रमादित्यको गद्दीपर वैठनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ

था। जब वह स्वयं गद्दीपर नहीं बैठा था तो वह क्योंकर अपने छोटे भाई धराश्रय जयसिंह वर्माको लाट प्रदेशका राज्य दे सकता है। जब शिलादित्यके पिताको शाके ४४६ में स्वयं ही राज्य नहीं मिला था तो वैसी दशामें उसका पुत्र शिलादित्य युवराज क्योंकर माना जा सकता है। अब यदि कहा जाय कि मंगलराज के शासनपत्रकी तिथि अनर्गल है। तो हमारा विनम्र निवेदन यह होगा कि उक्त तिथि ठीक है क्योंकि उसके साथ वातापिके चौलुक्य राजवंशकी तिथिका क्रम मिल जाता है। अतएव हम उसे अशुद्ध नहीं मान सकते।

इन विपत्तियोंसे त्राण पानेके लिये पण्डित भगवानलाल इन्द्रजीने निम्न सभावनाओंका अनुमान किया है।

१—चौलुक्यवंश में शिलादित्य नाम नहीं पाया जाता। अतएव या तो यह ताम्रपत्र वल्लभी के राजा शिलादित्यका है अथवा जाली है।

२—यदि वल्लभी के राजा शिलादित्य का यह लेख नहीं है तो वैसी दशा में यह अवश्य जाली है। क्यों कि इसकी तिथि का मेल वातापि के राज्यवंशकी तिथि से नहीं मिलता।

इसके सबंध में हमारा निवेदन यह है कि इस शासन का कर्ता वल्लभी का शिलादित्य नहीं है क्यों कि इसकी शैली का वल्लभी वालों के लेखों की शैली से मेल नहीं खाता। पुनश्च यह लेख जाली इस कारण से नहीं है कि इसमें सूक्ष्मतर विवरण पाये जाते हैं। एवं इसकी शैली का वातापि के चौलुक्यों के लेखसे पूर्ण सामंजस्य पाया जाता है। पुनश्च इस लेख के अतिरिक्त शिलादित्य का एक और लेख सूरत से प्राप्त हुआ है। इसके पर्यालोचन से प्रगट होता है कि इस लेख के लिखे जाने के समय भी धराश्रय जयसिंह लाट के चौलुक्य राज्य सिंहासन पर सुशोभित था और राजकार्य में इसका हाथ युवराज शिलादित्य बटाता था। अपरञ्च नवसारी से प्राप्त अन्य दो लेखों में संवत ४२१–४४३–४९० लिखा है। ऐसी दशा में इस संवतका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

यद्यपि संवत ४२१ को हम विक्रम संवत से भिन्न सिद्ध कर चुके हैं। तथापि अब विचारना है कि यह कौनसा संवत है। सम्राट के गुप्तों का राज्य वर्तमान गुजरात और

काठियावाड़ प्रदेश में था। गुप्तों का गुप्त नामक संवत्सर अपना था। उक्त गुप्त संवत्सरका प्रचार उनके राज्य काल तथा कुछ दिनों पर्यन्त वर्तमान गुजरात-काठियावाड़ में था। अतः संभव है कि कथित संवत ४२१ गुप्त संवत हो। गुप्त संवत का प्रारंभ शक ८८ तथा विक्रम २२३ में हुआ था। अब यदि हम कथित संवत ४२१ को गुप्त संवत मान लेवें तो वैसी दशा में उसे शक संवत बनाने के लिये उसमें हमें ८८ वर्ष जोड़ना होगा। कथित संवत ४२१ में ८८ जोड़ने से शक ५०६ होता है। इस प्रकार युवराज शिलादित्य और मंगलराज के मध्य पूर्व कथित ६७ वर्षका अन्तर और भी अधिक बढ़ जाता है। अर्थात उक्त ६७ वर्ष का अन्तर ६७ से बढ़कर १४४ हो जाता है। इस हेतु संवत ४२१ को हम गुप्त संवत नहीं मान सकते।

वर्तमान गुजरात और काठियावाड़ प्रदेश में विक्रम, शक, गुप्त और वल्लभी संवत्सरों के अतिरिक्त त्रयकूटक नामक संवत्सर का भी प्रचार था। अब विचारना यह है कि कथित संवत ४२१ त्रयकूटक संवत्सर हो सकता है या नही। त्रयकूटक संवत्सर का प्रारंभ विक्रम संवत ३०५ में हुआ था। अब यदि हम इसे त्रयकूटक संवत मान लेवें तो ऐसी दशा में इसे विक्रम बनाने के लिये ४२१ में ३०५ जोड़ना होगा। ४२१+३०५=७२६ होता है। उपलब्ध ७२६ विक्रम को शक बनाने के लिये हमें १३५ घटाना होगा। ७२६-१३५=५९१ शक होता है। मंगलराज के शासन की तिथि ६५३ शक हमें ज्ञात है। अतः इन दोनों का अन्तर ६२ वर्षका पड़ता है। इस हेतु इस विवादास्पद संवत ४२१ को हम त्रयकूटक संवत भी नही मान सकते। अनेक पाश्चात्य और प्राच्य विद्वानों ने कथित संवत ४२१ को त्रयकूटक संवत माना है। परन्तु हम उनका साथ नही दे सकते। ऐसी दशा में इस संवत को हम अज्ञात संवत्सर कहते है।

विवेचनीय संवत ४२१ को अज्ञात संवतमानने के बादभी हमारा त्राण दृष्टिगोचर नहीं होता क्यों कि शिलादित्य और मंगलराज के समय की संगति मिलाना आवश्यक है। हम ऊपर शिलादित्य के दूसरे लेख संवत ४४३ वाले का उल्लेख कर चुके है।

हमारी समझमें यह लेख हमारा त्राण दाता है। इस लेखकी सम्प्राप्ति हमारी दृढ नौका है। इसके पर्यालोचन से प्रगट होता है कि इसमें वातापि के चौलुक्य राज सत्याश्रय विनयादित्य वल्लभ महाराज को अधिराज रूपसे स्वीकृत किया गया है। अतएव यह लेख विनयादित्य के राज्यारोहण के बादका है। विनयादित्य वातापि के चौलुक्य राज विक्रमादित्य प्रथम का पुत्र और उत्तराधिकारी था। इसका राज्यकाल शक ६०१ से ६१८ पर्यन्त है। अत सिद्ध हुआ कि युवराज शिलादित्य का प्रथम लेख ६०१ से पूर्वका और दूसरा इसके बाद का है। अब यदि हम शिलादित्य के दूसरे लेख सवत ४४३ वाले को विनयादित्य के अन्तिम समय शक ६१८ का मान लेवें तो इस अज्ञात संवत और शक सवत में १७५ वर्षका अन्तर होता है। इस प्रकार युवराज शिलादित्य का प्रथम लेख सवत ४२१ वाला शक ५९६ का ठहरता है। अत हम निश्चय के साथ कह सकते है कि इस अज्ञात सवत और शक का अन्तर १७५ है। क्यों कि इस प्रकार मानने से वातापि के चौलुक्य राज वशकी तिथि का क्रम सुचरूपेण मिल जाता है।

इस अज्ञात सवत्सर का शक सवत से अन्तर प्राप्त करने के पश्चात भी हमारा त्राण नही हुआ। क्यों कि युवराज शिलादित्य और मगलराज के समय का अन्तर का समाधान नहीं होता। इसके सबध म हम कह सकते है कि शिलादित्य के द्वितीय लेख सवत ४४३ तदनुसार शक ६१८ और विक्रम ७५३ से मगलराज के लेख का अन्तर तारतम्य समेलन से ही त्राण होगा। युवराज शिलादित्य के द्वितीय लेख सवत ४४३ वाले को शक ६१८ का सिद्ध होते ही मगलराज के लेखसे केवल ३५ वर्षका अन्तर रह जाता है। यह अन्तर कोई महत्व पूण अन्तर नहीं है। इसका निश्चित तथा सतोषजनक रीत्या समाधान शिलादित्य और मगलराज के लेखों को उनके अन्त समय के समीप वाला मान लेने से हो जाता है। मगलराज के लेखको उसके अन्त समय का अथवा अन्त समय के समीप का मानना केवल हमारे अनुमानपरही निर्भर नहीं है। वरन् हमारी इस धारणा का प्रबल सहायक मगलराज के उत्तराधिकारी और लघुभ्राता पुलकेशी का सवत ४९० वाला लेख है। मगलराज के लेख और इस लेखके मध्य केवल ८ वर्षका अन्तर है। पुनश्च शिलादित्य युवराज

अवस्थामे ही मरचुका था। अतः हम कह सकते हैं कि प्रथम लेख संवत ४२१ वाले के लिखे जाते समय वह अल्प वयस्क वालक था। परन्तु द्वितीय लेख संवत ४४३ वाले के समय वह अवश्य पूर्ण यौवन प्राप्त था। इन लेखों के संवत के संबंधमें मंगलराज के उत्तराधिकारी तथा लघु भ्राता पुलकेशी के संवत ४९० वालेलेखका विवेचन करते समय विशेष विचार करेंगे।

जयसिह वर्मा के शिलादित्य, मंगलराज, वुद्धवर्मा नागवर्मा और पुलकेशी नामक पांच पुत्रोंके होनेका परिचय मिलता है यह परिचय हमें इन पुत्रों के शासन पत्रों से मिलता है। शिलादित्य और मंगलराज के लेख का हम उपर उल्लेख कर चुके हैं। पुलकेशी का शासन पत्र नवसारी से, वुद्धवर्मा के पुत्र का शासन पत्र खेड़ासे और नागवर्धन का नासिक से मिला है। इन सव शासन पत्रों में वंशावली दी गई है। हम अपने पाठकों के मनोरंजनार्थ प्रत्येक शासन पत्र की वंशावली निम्न भागमें उधृत करते हैं। आशा है कि उधृत वंशावलियों पर दृष्टिपात करते ही हमारे कथन कि जयसिंह वर्मा के पांच पुत्र थे, की साधुता अपने आप सिद्ध हो जायगी।

## शासन पत्रोंकी वंशावलियाँः—
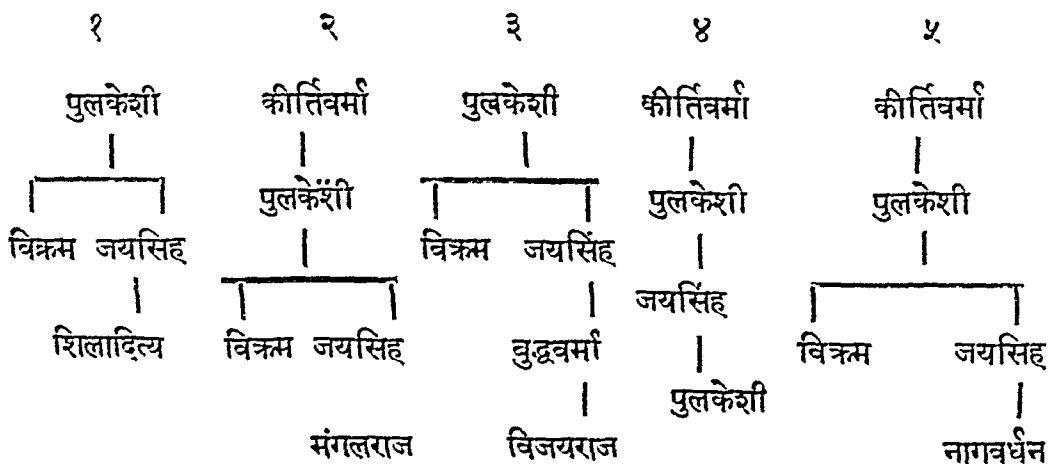
इन वशावलियो पर दृष्टिपात करने से इनकी एकता अपने आप सिद्ध हो जाती है। एव इनके तारतम्य से लाट नवसारिका के चोलुक्य वश की वशावली निम्न प्रकारसे पाई जाती है।

## परिष्कृत वशावली
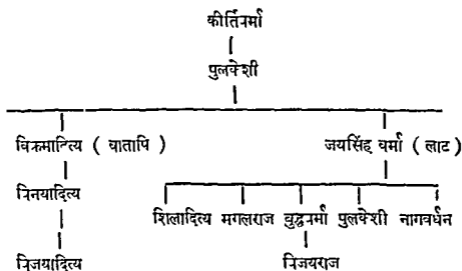
ताम्र पत्रों के पर्यालोचन से प्रगट होता है कि पुलकेशी की तुलना सूर्य कुल कमल दिवाकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम और चान्द्र पौरव वश विभूषण धर्मराज युधिष्ठिर के साथ की गई है। यदि वास्तवमें देखा जाय तो पुलकेशी कथित तुलना का भाजन अवश्य है क्योंकि चान्द्र पौरव वश की युधिष्ठिर और महाभारत पश्चात क्रमश अवनति होती गई थी, और उदयन के बाद तो वह एक प्रकारसे नष्ट ही हो गया था। क्योंकि इस वशका मुल उज्वल करने वाला पुलकेशी का दादा पुलकेशी प्रथम है। चद्र वशमें युधिष्ठिर के बाद पुलकेशी सर्व प्रथम अश्वमेघ यज्ञ करने वाला किन्तु पुलकेशी द्वितीय ने चद्रवशको पाडवों के समान गौरव

पर पहुँचाया था। क्योंकि वह भारत का एक छत्र चक्रवर्ती साम्राट था। एवं उसने अन्य देशोंके साथ राज नैतिक संबंध स्थापित कर राजदूतोंका परिवर्तन किया था। उसकी राज सभामें पारसी राजदूत रहता था। एवम् प्रसिद्ध चीनी यात्री हुआंगतसांग भारत भ्रमण करता हुआ उसकी राज सभामें आया था। इन दोनों विदेशियों का नाम भारतीय इतिहासमें सदा अमर रहेगा। क्योंकि दोनों का चिह्न आज भी उपलब्ध है।

पारसी राजदूत, भारत सम्राट चौलुक्य चंद्र पुलकेशी की सेवामें, पारसी नरेश की भेजी हुई भेंट की वस्तुएं, उपस्थित करते समय, का चित्र एजन्त गिरि (अजन्टा) की गुफामें चित्रित किया गया है, एवम् हुआंगतसांगने अपनी आंखों देखे चौलुक्य वंशके वैभवका, मनुष्यों के सदाचार प्रभृति तथा धार्मिक भावनाओं, रहनसहन, और युद्ध नीति इत्यादिका वर्णन अपने यात्रा विवरणमें बड़ीही ओजस्विनी भाषामें उत्तमता के साथ किया है।

पुनश्च ताम्र पत्र के मनन से प्रगट होता है कि पुलकेशी द्वितीय के पश्चात चौलुक्य वंशका सौभाग्य मंद पड़ा। क्यों कि पल्लवों ने इनकी बहुतसी भूमि दबाली थी। परन्तु जब विक्रमादित्य गद्दीपर आया तो उसने पल्लवों को अच्छा पाठ पढ़ाया। पल्लवों को पाठ पढ़ाने वाला धराश्रय जयसिंह वर्मा था। जिससे संतुष्ट हो कर विक्रमादित्य ने साम्राज्य के उत्तरीय भाग गोप मंडल, उत्तर कोकण, और लाटादि का राज्य प्रदान किया था। पल्लव विजय का विवेचन हम चौलुक्य चंद्रिका वातापि खण्ड में विक्रम के लेखों में कर चुके हैं।

प्रस्तुत ताम्र पात्र के शासन कर्ता युवराज शिलादित्य के लिये इसमें "शरद कमल सकल शश धर मरीचि माला वितान विशुद्धकीर्ति पताका" वाक्य का प्रयोग किया गया है। परन्तु हमारी समझ शिलादित्यमें इस विशेषणका यथार्थ अधिकारी नही था। क्यों कि प्रथम तो वह स्वयं राजा नही था यदि कुछ था तो केवल युवराज। द्वितीय वह स्वतंत्र राजाका नही वरन माण्डलीक राजा का पुत्र था। तीसरे हम ऊपर प्रगट कर चुके हैं कि प्रस्तुत लेख लिखे जाते समय वह अल्प वयस्क बालक था।

ऐसी दशाम हम कह सकते है कि कवि ने अपने स्वामी के प्रति पूर्ण रूपेण चाटुकता धर्मका पालन किया है। हमारे पाठक जानते है कवि बडेही निरंकुश और कल्पना साम्राट होते है। वे तिल का ताड और ताड का तिल अनायासही बना सकते है। यहा भी कविने शिलादित्य को अपनी निरंकुश कल्पना द्वारा महत्व के शिखर पर चढा दिया है। परन्तु वह वास्तव म इस महत्त्वका अधिकारी नहीं था।

हमारी समझ म शासन पत्र के बाह्य विषयों का सागोपाग विवेचन हो चुका। अत एव हम इसके अन्तर विवेचन म प्रवृत्त होते है। शासन पत्र से प्रगट होता है कि शासन पत्र लिखे जाने के समय शिलादित्य का निवास नवसारी में था। इसका वर्णन शासन पत्र के वाक्य "नव सारिका मधि वसत" म किया गया है। अब विचार उत्पन्न होता है कि क्या इस वशकी राज्यधानी नवसारी में थी। नवसारी के पास जयसिंह ने अपने नाम से धराश्रय नगरी नामक नगर बसाया था। उक्त नगर सप्रति धराम्री नामसे अभिहित होता है। और नवसारी से लगभग ने मील की दूरी पर है। धराम्री के ध्वसावशेष से आज भी उसके पुरातन गौरव के द्योतन करने वाले अनेक अवशेष पाये जाते है। अत समावना होती है कि जयसिंह का निवास और उसकी राज्यधानी धराम्री म हो। परन्तु स्पष्ट प्रमाण के अभाव म हम निश्चय के साथ कुछभी नहीं कह सकते। पुनश्च उसके विरुद्ध शासन पत्र म शिलादित्यका निवास नवसारी म होना स्पष्ट रूपसे लिखा गया है। एव नवसारी की प्राचीनता और राजनगर होनेका प्रमाण नवसारीकी भूमि म जहा भी खोदें प्राप्त होता है। एव प्रस्तुत शासन पत्र भी नवसारी के खडहरों में से मिला था। अत नवसारी को ही चौलुक्य वशकी राज्यधानी मानने म हमें कुछभी आपत्ति नही।

शासन पत्र कथित ग्राम के प्रतिग्रहीता कश्यप गोत्री भागिवस्वामी अध्वर्युब्रह्मचारी है। प्रतिग्रहीताकी वशावली शासन पत्र म निम्न प्रकारसे दी गई है।

दानका विषय ठहारिका विषय के उपविषय कण्डवलाहार अन्तर्गत आसट्ठी नामक ग्राम है। खेदकी बात है कि प्रस्तुत ग्राम की सीमा आदि का कुछ भी परिचय नही दिया गया है अतः वर्तमान समय में इस ग्रामका अस्तित्व है या नहीं हम कुछ भी नहीं कह सकते।

---

# जनाश्रय श्री पुलकेशी

## का

## *शासन पत्र ।*

१ ॐ स्वस्ति ॥ जयत्याविष्कृतविष्णोर्वाराह क्षोभितार्णवम् । दक्षिणोन्नत दंष्ट्राग्रे
२ विश्रान्त भुवन वपुः ॥ श्रीमतांसकलभुवनसंस्तूयमान मानव्यस गोत्रा
३ णा हारितीपुत्राणा कार्तिकेयपरिरक्षणप्राप्तकल्याणपरपराणा सप्त- लोकमातृभि स्स
४ प्तमातृभिरभिरक्षिताना भगवन्नारायणप्रसादसमासादित वाराह लाञ्छननिक्षणे
५ नक्षणे वशीकृताशेषमहिभृताचौलुक्यानामान्वये—
६ ण कमल युगल स्सत्याश्रय श्रीपृथिवीवल्लभमहाराजाधिराज परमेश्वर श्रीकीर्तिवर्मा राजस्तस्य
७ सुत स्तत्पादानुध्यात
८
६
१० पृथिवीपति श्रीहर्षबर्धनपराजयोपलब्धोग्रप्रतापः परम महेश्वरोऽ परनामासत्याश्रय
११ य श्रीपुलकेशीवल्लभस्तस्यसुतस्तत्पादानुध्यातो
१२
१३
१४ द्गुयक्रमागतराज्यश्रिय ' परमभट्टारकस्सत्याश्रय श्रीविक्रमादित्य राज स्तस्या
१५ नुजः

१६

१७ रम माहेश्वरपरमभट्टारकधराश्रय : श्रीजयसिंहवर्माराजस्तस्यसुत स्तत्पादानु

१८

१९

२० परममाहेश्वर

परम भट्टारक जयाश्रय श्री मंगलराज स्यानु

२१ ज स्तत्पादा

२२

२३

शरभ्क सीर मुदुगरो द्धारिणि तरल तर तार तरवारि धा

२४ रितो दित सैन्धव कच्छेल सौराष्ट्र चापोत्कट मौर्य गुर्जरादि राज्य निःशेषदक्षिणात्यक्षितिपतिजिगी

२५ षया दक्षिणापथ प्रवेश......प्रथममेव नवसारिका विषय प्रथ-नाथा गतेत्वरित

# जनाश्रय श्री पुलकेशी

## का

## *शासन पत्र।*

## *द्वितीय-पत्रक।*

२६ तुरग खर मुखर खुरोत्खात धरिणि धूलि धूसरित दिगतरे कुन्त प्रात नितात विमर्थ्यमान रभस्सामि धावितो

२७ दुर्भट स्थलोदार विवर विनिर्गतात्र पृथुतर रुधिर धारा राजित कवच भीषण वपुपि रणानि महा

२८ सन्मानदानराजा ग्रहण ऋयोपकृत स्वशिरोभिरभिमुखमापातिते प्रदपद प्रदर्शनाग्र दंष्ट्रोष्ठ पुटकैरने

२९ क समराजिर विवर वरिकरि कटि तट त्य विघटन विशालित घन रुधिर पटल पाटलित पट कृपाण पटैरपि मह—

३० यो वैर लब्ध परभागैःविराज जपण लो क्षिप क्षिप्रतीक्षण क्षुर प्रप्रहार विलून वैरि गिर कमलगलनालै रा

३१ ए वर सर भ सरोमाश्च कंचुकाच्छादित तनुभिरनेकधरि नेरन्द्र वृन्द वृन्दारकैराजितपूर्वैःव्यपगत स्पाक

३२ मण मनेन स्वामिनः स्वशिर प्रदानेना न्यातावदेक जन्मीग्मित्य मौग्व्यपिजान परितोषानन्तर प्रहत पटु प

३३ टहर प्रवृत्त कबन्ध वद्ध रास मण्डलीके समर शिरसि विजितेता जिकार्न के शौर्यानुरगिणा श्रीवदन्नमूनरे

३४ न्द्रेण प्रसादी कृनापरनाम चतुष्टय तन्त्र रा द क्षिण पथ साधारण चलुकी कुलालकार पृथिवी वदभ्रमानिवर्त्तकानि

३५ वर्त्तयित्रावनिजनाश्रय श्री पुलकेशी राजस्सर्वाण्येवास्मीयान्

३६ समनु दर्शयत्यस्तुवः सविदितं यथा सा।मिर्मीता पि

३७ ञ्रो शात्मनश्च पुण्य यशोभि वृद्धये वलिचरु वैश्व देवाग्नि क्रियो त्सर्पणार्थं वनवासि विनिर्गत वत्स

३८ सगोत्र तैत्तरिक सब्रह्मचारिणे द्विवेदि ब्राह्मणाङ्गदे ब्राह्मण गोविन्दसू नुने कार्मणेयाहार विषयान्तरगते

३९ पद्रक ग्राम सोद्रक

४० धर्मदायत्वेन प्रतिपादितो यतो स्या

४१

४२

४३

४४

४५

४६

४७

४८ संवत्सर श

४९ त ४००, ९० कार्तिक शुद्ध १५ लिखित नेतन्महासन्धि विग्रहिक प्राप्त पंच महाशब्द सामन्त श्री वप्प

५० दि…… ……धिकृत हरगण सुनुना ऊनाक्षरमधिकाक्षरं वा स…………प्रमाणं

# जनाश्रय पुलकेशीके शासनपत्र
## का
## विवेचन

प्रस्तुत ताम्रपत्र नवसारी ग्रामसे प्राप्त हुआ था । इसके पत्रकोंकी संख्या दो है । प्रत्येक पत्रकमें लेख पंक्तियां २५ है। पत्रकोंका आकार प्रकार १।२-६।१।२ इंच है। प्रथम पत्रकके नीचे और उपरके दोनों भागामें ३ ।१।२ दोनों तर्फ छोडकर दो दो छिद्र हे। इससे प्रगट होता है कि इन छिद्रों द्वारा कडीके संयोगसे वे जोडे गये थे। परन्तु इनको जोडनेवाली कडियाँ उपलब्ध नहीं है। अतः दोनों पत्रे पृथक है । अक्षर यद्यपि कम खोदे गये है तथापि स्पष्ट है। लिपि नवसारीमें प्राप्त शिलादित्यके शासनपत्रके समान और भाषा संस्कृत है।

इस लेखके सम्बन्धमें वियेनाके ओरियण्टल कोन्फरेन्समें एक निबन्ध पढा गया था और उक्त कोन्फरेन्सकी रिपोर्ट पृष्ठ २३० में प्रसिद्ध की गई है। एवं इस लेखका कुछ अंश बाम्बे गेझेटिअरके गुजरात नामक वोल्युम एकके पार्ट एकमें उद्धृत किया गया है। मूल लेख सम्प्रति प्रिन्स ओफ वेल्स म्युजियममें सुरक्षित है।

लेखका मंगलाचरण और अन्तिम शापात्मक अंश पद्यात्मक और शेष भाग गद्यात्मक है। इसका लेखक पंच महाशब्द प्राप्त महासन्धि विग्रहिक सामन्त श्री वप्प (जिसके पिताका नाम हरगण) है।

लेखका प्रारम्भ स्वस्ति श्रीसे होता है। और सर्व प्रथम चौलुक्योंके कुलदेव वाराहकी स्तुति की गई है। पश्चात उनका वंशगत विरद देनेके अनन्तर शासनकर्ताकी वंशावली निम्न प्रकारसे दी गई है।

### वंशावली

कीर्तिवर्मा
|
पुलकेशी वल्लभ
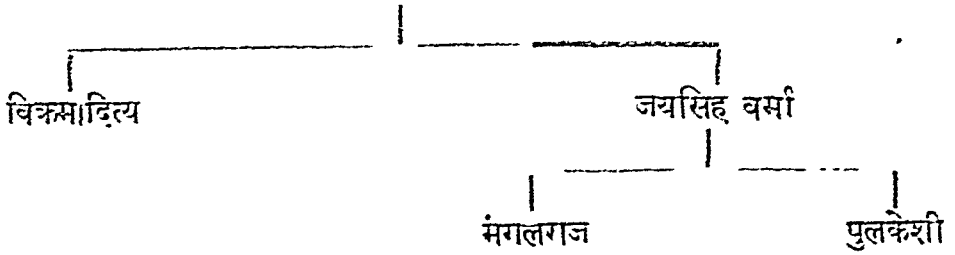
लेखमें स्पष्टरूपसे वंशावली कथित नामोंका सम्बन्ध प्रकट किया गया है। लेखसे प्रकट होता है कि कीर्तिवर्माके पुत्र पुलकेशीको विक्रमादित्य और जयसिंह नामक दो पुत्र थे। विक्रम वातापिकी गद्दीपर बैठा और जयसिंहको लाट मण्डलकी जागीर मिली। जयसिंहके मंगलराज और पुलकेशी नामक दो पुत्रोंका उल्लेख है। जयसिंहका उत्तराधिकारी मंगलराज हुआ और मंगलराजका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई पुलकेशी हुआ। पुलकेशीही प्रस्तुत दानपत्रका शासनकर्ता है। इस शासनपत्रके द्वारा उसने तैत्तरीय शाखाध्यायी वत्सगोत्री गोविन्द द्विवेदीके पुत्र अंगद द्विवेदीको जो वनवासी प्रदेशका रहनेवाला था, कार्मण्येयाहार विषयका पद्रक ग्राम दान दिया था। प्रदत्त ग्राम पद्रककी सीमा आदिका उल्लेख दानपत्रमें नहीं है। अत हम नहीं कह सकते कि प्रदत्त ग्राम पद्रकका वर्तमान समयमें अस्तित्व है या नहीं। परन्तु कार्मण्येयको हम निश्चितरूपसे जानते हैं कि यह स्थान तापी तटपर अवस्थित है और वर्तमान समय कमरेजके नामसे प्रख्यात है। कार्मण्येयका उल्लेख इस शासनपत्रके पूर्ववर्ती शासनपत्र, जो पुलकेशीके ज्येष्ठ भ्राता युवराज शिलादित्यका शासनपत्र है और सूरतसे प्राप्त हुआ था, में किया गया है। और हम भी इसके अवस्थानादिका पूर्णरूपेण विचार उक्त शासनपत्रके विवेचनमें कर चुके है।

दुर्भाग्य से इस शासन पत्र का संवत् स्पष्ट नहीं है। अतः अनेक प्रकारकी आशंकाएं विकराल रूप धारण कर सामने खड़ी होती है। चाहे इसका संवत् स्पष्ट हो या न हो, इसमें कथित ग्रामका परिचय हमें न मिले, परन्तु यह शासन पत्र भारतीय इतिहास के लिये बड़ेही महत्व का है। इस शासनपत्र के पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि पुलकेशी के राज्य कालमें ताजिक अर्थात यवन सेनाने सिन्ध, कच्छ, सौराष्ट्र, चापोत्कट, मौर्य और गुर्जर को कष्ट दिया था, अर्थात विजय करती हुई आगे बढ़ती तापी तट के वर्तमान कमलेज पर्यन्त चली आई थी। उसका विचार दक्षिणा पथ में प्रवेश करनेका था। किन्तु पुलकेशी ने उनके विषैले दांत निकाल उन्हें स्वदेश लौटनेके लिये बाध्य किया था।

शासन पत्र कथित इस यवन आक्रमणका समर्थन मुसलमानी इतिहास से भी होता है। मुसलमान इतिहास फुतूहुल बलादान के पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि खलीफा हस्सामने जुनेद को सिन्ध का शासक नियुक्त किया था। और वह खलीफाकी आज्ञा से सिन्ध से आगे बढकर मरमाड, मण्डल, दलमज, वास्स, अमेन, मालिब, बहेरमिद और जुज पर आक्रमण किया था। इन नामों पर दृष्टिपात करने से प्रगट होता है कि अरबी लिपि के दोष से स्थानों और राज्य के नाम में अन्तर पड गया है। कथित देशों में से कुछ देशों का वर्तमान परिचय पाना असभव है किन्तु अधिकाश नाम ऐसे है जिनका अनायासही परिचय पाया जा सकता है। हम निम्न भागमें फुतूहुल बलादान कथित नामों को लिख कर उनके समानन्तर में वर्तमान नामों को लिखते है।

## तुलनात्मिका सूचि

| फुतूहुल बलादान के नाम | वर्तमान नाम |
|---|---|
| १—मरमाड | मारवाड |
| २—मण्डल | वीरमगाम (चतुर्दिक) |
| ३—दमलेज | कमरेज |
| ४—वरस | भरूच |
| ५—अमेन | उज्जैन |
| ६—अल्बेले माल | भीनमाल (श्री माल) |
| ७—बहिरमद | (सभवत मौर्य वन) |
| ८—मालिब | मालवा |
| ९—जुज | भुज |

प्रस्तुत शासन पत्र हमें बताता है कि मुसलमानोंने सिन्ध, कच्छ, सौराष्ट्र, चापोत्कट मौर्य और गुर्जरोंपर आक्रमण किया था। इनसे अतिरिक्त वह स्थानोंका परिचय उद्धृत सूची से मिलता है। मुसलमानों के इस आक्रमणका मौर्य वन (चित्तोड) के मोरी परमारों उनके

इतिहास से भी समर्थन होता है और प्रगट होता है कि मुसलमानोंने मौर्य वन पर आक्रमण करने के पश्चात् मालवा उज्जैन के प्रति गमन किया था। अतः हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि मुसलमानी इतिहास का बहिरमद मौर्य वन है। ताम्र पत्र कथित गुर्जर भरूच के गुर्जर और चापोत्कट, भीनमाल के चावड़ा हैं। चावड़ों ने भीनमाल के गुर्जरों से मारवाड़ का राज्य प्राप्त किया था। मुसलमानों का कसलेज वर्तमान कमरेज शासन पत्र का कार्मण्येय है। हमारी समझ में मुसलमानों ने भरूचके गुर्जरों को विजय करनेके पश्चात चौलुक्यों के राज्य पर दृष्टिपात किया होगा। और आक्रमण करने के विचार से जब वे आगे बढ़े होंगे तो पुलकेशी ने कमलेज नामक दुर्ग के समीप आगे बढ़कर उनका मुकाबला किया होगा। आजभी भरूचसे नवसारी भूपथसे आने वालों को कमरेज होकर आना पड़ेगा। परन्तु मुसलमानों को कमरेज के समीप चौलुक्य सेना से सामना होतेही लेने के देने पड़े होंगे। और वे वाध्य होकर स्वदेश लौट गये होंगे।

हम देखते हैं कि मुसलमानी इतिहासमें मुसलमानोंके कमलेज विजयका उल्लेख है। परन्तु हमारी समझमें यह मुसलमान ऐतिहासिकोंकी डीगमात्र है। यदि वास्तवमें वे कमलेजको विजय किए होते तो वे अवश्य नवसारीतक जाते और उसे लूटते। क्योंकि नवसारी चौलुक्य राज्यकी राज्यधानी थी। वैसी दशामें अपनेको कमलेज विजेता लिखनेके स्थानमें की नवसारी विजेता लिखते। हमारी इस धारणाका समर्थन इस वातसे भी होता है कि कमलेज उस समय कोई राज्य नही, वरन नवसारीके चौलुक्योंका एक विषयमात्र था। अतः हम शासनपत्रके कथनको निर्भ्रांत और ऐतिहासिक सत्य मानते हैं।

हमारी समझमें शासनपत्रके कथनका एक प्रकारसे पूर्णरूपेण विवेचन हो गया। अब केवल उसके संवत्सरका विचार करनामात्र शेष है। हमारी समझमें इसी शासनपत्रके संवत्सरका निर्णय होनेसे नवसारीके चौलुक्योंके अन्य तीन लेखोंके संवतोंका निर्णय होगा। हम पूर्वमें मुसलमान और मुसलमानी इतिहासका अनेक वार उल्लेख कर चुके हैं। और फिर भी हमको उसका आश्रय लेना पड़ता है। हम पूर्वमें बता चुके हैं कि आक्रमणकारी मुसलमान सेनाके सेनापति जुनेदको खलीफा हस्सामने सिन्धका शासक बनाया था। खलीफा हस्सामका समय हिजरी १०५-१२५पर्यन्त है। हिजरी सनका प्रारंभ विक्रम संवत ६७६ में हुआ था। अतः हिजरी १०५=

विक्रम ७८४ और हिजरी १२५=विक्रम ८०४ के है। परन्तु हिजरी और विक्रम सवत्के मध्य में प्रत्येक तीसरे वर्ष एक महीनेका अन्तर पडता है। अत हिजरी सन १०५ और १२५ को विक्रम बनानेके लिये पूर्व कथित ७८४ और ८०४ में से ३ और ४ वर्ष घटाने पड़ेंगे। इस प्रकार हिजरी १०५ विक्रम ७८१ और हिजरी १२५ विक्रम ८०० के बराबर है। अन्यान्य ऐतिहासिक घटनाओंपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि जुनैदको हिजरी सन १२० में पुलकेशी द्वारा पराभूत होना पडा था। अर्थात यह घटना खलीफा हस्सामके राज्यके १५ वें वर्षकी है। अत जुनैदका उक्त पराभव काल हिजरी १२० तदनुसार ७९६ विक्रम है।

प्रस्तुत शासनपत्रकी तिथि कार्तिक शुद्ध १५।४९० है। यह मानी हुई बात है कि पुलकेशीने अपनी विजयके उपलक्षमे इस शासनपत्रको शासनीभूत किया था। यदि यह बात ऐसी न होती तो उक्त विजयका उल्लेख इसमे न होता। मुसलमान इतिहाससे उसके आक्रमणका समय हम पूर्वमें विक्रम सवत ७९६ सिद्ध कर चुके है। अत इस शासन पत्रका समय ४९० विक्रम सवत् ७९५ के बराबर है। इस प्रकार दोनों सवतोंका अन्तर ३०६ वर्ष प्राप्त होता है।

हमारी समझमे इस अज्ञात सवत्सरका सागोपाग विचार हो चुका। और साथ ही जयसिंह वर्माके पुत्र युवराज शिलादित्यके दोनों शासनपत्रों ने सवत ४२१ और ४४३ का निश्चित समय शाके ५९२ और ६१४ तथा विक्रम ७२७ और ७४९, मगलराजके लेख शाके ६५३ और विक्रम ७८८, और पुलकेशीके लेखका अज्ञात सवत् ४९० शाके ५६१ और विक्रम ७९६ है।

# चौलुक्यराज विजयराजके शासनपत्र

## का

## *प्रथम पत्र ।*

१ स्वस्ति विजय स्कन्धा वारात् विजयपुर वासकात् शरदुपगम प्रसन्न गगन तल विमल विपुले विविध पुरूष रत्नगुण।

२ नि करावभासिते महा सत्वापाश्रय दुर्लध्ये गांभिर्यवति स्थित्यनु-पालन परे महोदधाविवमानव्यस गोत्राणां हा

३ रिति पुत्राणां स्वामी महासेनपादानुध्यातानां चौलुक्यानामान्वये व्यपगत सजल जलधर पटल गगन तल गत शिशिर कर

४ किरण कुवलयतर यशाः श्री जयसिंह राजः ॥ तस्य सुनः प्रबलरिपु तिमिर पटलभिदुरः सतत मुदयस्थोनक्कंदिव

५ सप्य खण्डित प्रतापो दिवाकर इव वल्लभ रण विक्रान्त श्री बुद्धवर्म्म राजः ॥ तस्य सूनु पृथिव्यामप्रतिरथःश्चतुरुदाधि सलिला

६ स्वादित यशां धनद वरुणेन्द्रा कान्तक सम प्रभावः स्वबाहुवलो पात्तोर्जित राज्य श्री प्रतापाति शयोपनत समग्र सामन्त म

७ ण्डलः परस्परा पीडित धर्म्मार्थ कामनिर्मोचिप्रणति मात्रसु परितोष गंभीरोन्नत हृदयः सम्यक्प्रजा पालनाधिगतः दीना

८ न्ध कृपणत्रे: शरणागत वत्सलःयथाभिलषित फल प्रदो मातापितृ पादानुध्यातः श्री विजयराज सर्वानेव विषयपति राष्ट्र (कूटान्)

९ ग्राम महत्तराधिकारिकादिनामनु दर्शयत्यस्तु वस्सं विदित मस्माभि र्यथा काशाकूल विपयान्तरगतः सान्धिय पूर्विण पाश्चिय

१० एषः ग्रामः सोद्रकः सपरिकरः सर्वादित्य विष्टिप्राति भेदिका परिहिणः भूमिच्छिद्रन्यायेन चाटभट्ट प्रावेश्य जम्बुस

११ र सामान्य मावाजसनेय काण्वाध्वर्यु सब्रह्मचारिणा माता पित्रो-
रात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्धये वैशाख पौर्णम स्या मुदकाति
१२ सर्गेण प्रतिपादितः ॥ भारद्वाज सगोत्राय रवि देवाय पत्तिके द्वे
इन्द्रसुराय पत्तिका तावीसूराय दिव पत्तिका ईश्वरस्यार्ध पत्तिका
१३ दामाय पत्तिका द्रोणायार्ध पत्तिका अर्क स्वामिने ऽर्ध पत्तिका
मैलायार्ध पत्तिका षष्ठि देवायार्ध पत्तिका सोमायार्ध पत्तिका
राम शर्मणे ऽ
१४ र्ध पत्तिका म यायार्ध पत्तिका द्रोणधरायार्ध पत्तिका धूम्रायण
सगोत्र आणुकाय द्विवर्ध पतिका सूरायार्ध पत्तिका ॥ दण्डकीय
१५ सगोत्र भट्टः पत्तिका समुद्राय दिवर्ध पत्तिका द्रोणाय पत्तिका
त्रय तावीशर्मणे पत्तिके द्वे भट्टिनेऽर्ध पत्तिका वत्राय पत्तिका
१६ द्रोण शर्मणेऽर्ध पत्तिका द्वितीय द्रोण शर्मणेऽर्ध पत्तिका । काश्यपस
गोत्र वप्र स्वामिने त्रिस. पत्तिका दुर्गशर्मणेऽर्ध पत्तिका दत्तायो
१७ र्ध पत्तिका कौण्डीन सगोत्र बादाया——ऽर्ध पत्तिका सेलाय
पत्तिका द्रोणाय पत्तिका सोमायार्ध पत्तिका सेलायार्ध पत्तिका
१८ बलशर्मणेऽर्ध पत्तिका मायिस्वमिनेऽर्ध पत्तिका माढरसगोत्र
विशाखाय पत्तिका धराय पत्तिका नन्दिने पत्तिका कुमाराय पत्तिका
१९ रामाय पत्तिका व अयस्यार्ध पत्तिका गणायार्ध पत्तिका कोर्दुवायाऽर्ध
पत्तिका मायिव भट्टायार्ध पत्तिका शर्मणेऽर्ध पत्तिका राम शर्मणेऽर्ध
२० पत्तिका हारित सगोत्रधर्म धराय दिवर्ध पत्तिका ॥ वैण्णव सगोत्र
भट्टिने पत्तिका गौतम सगोत्र धारायार्ध पत्तिका अमधरा
२१ यार्ध पत्तिका सेलायार्ध पत्तिका ॥ शाण्डिल गोत्र दामायार्ध
पत्तिका लक्ष्मण सगोत्र काकस्य पत्तिका

—o—

# चौलुक्यराज विजयराजके शासनपत्र

का

## द्वितीय पत्र ।

२२ वत्स सगोत्र गोपादित्याय पत्तिका विशाखायार्ध पत्तिका सूरायार्ध पात्तिका माम्बि स्वामिनेऽर्ध पात्तिका यज्ञशर्मा

२३ र्ध पात्तिका तावस्त्रिराय पत्तिका कार्कस्यार्ध पत्तिका ताविशर्मणेऽर्ध पात्तिका शर्मणेऽर्ध पत्तिका कुमारायार्ध पात्तिका

२४ मात्रीश्वरायार्ध पत्तिका बाटलायार्ध पत्तिका ॥ एतेभ्यः सर्वेभ्यः बलिचरु वैश्वदेवाग्नि होत्रादि क्रियोपसर्पणार्थ आचंद्रार्कार्णव क्षि

२५ ति स्थिति समकालीनःपुत्र पौत्रान्वय भोग्याःयतोस्मद्वंशजैरन्यैर्वा-गामिभूमिपतिभि स्सामान्य भूप्रदान फलेप्सुभिः नलवेणु कदलि

२६ सारं संसार मुदधि जलवीचि चपलांश्च भोगान् प्रबल पवनाहताश्वत्थ पत्र मंचलं च श्रियं कुसुमित शिरीष कुसुम सह

२७ शायंच यौवनं माकलय्य अयमस्माद्दायोऽनु मन्तव्यः पालयितव्य श्च योऽज्ञान तिमिर

२८ पटलावृत्त मतिराच्छिद्याच्छिद्य

२९ मानं वानुमोदते स पंचमि र्महापातकै स्संयुक्तः स्यात् । उक्तं च भगवता व्यासेन षष्ठि ( वर्ष सहस्राणि स्वर्गे )

३० वसति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत । विन्ध्याटविस्वतो यासु शुष्क कोटर वासिनः। कृष्ण स

३१ र्पाहि जायन्ते भूमिदानापहारकाः बहुभि र्वसुधा ( भुक्ता राजभि स्सगरादिभि. ) ( यस्य यस्य यदा भूमिः )

३२ तस्य तस्य तदा फल । पूर्व दत्त द्विजातिभ्यो: (यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर महीमतां श्रेष्ठ दाना च्छ्रेयोऽनु पालनम्) यानीह

३३ दत्तानि (पुरा नरेन्द्रैः धर्मार्थ कामादि यशस्कराणि ॥ निर्माल्यवन्ति प्रतिमानि तानिको नाम साधुः) पुनरा ददीत ॥ संम्वत्सर श

३४ त त्रये चतुर्नवत्यधिके वैशाख पौर्णमास्या नन्नवासायक दूतक लिखित महा सन्धि विग्रहाधि कृतेन खुडस्वामिना

३५ संवत्सर ॥३९४॥ वैशाख शुद्ध १५॥ चात्रिय मातृसिंहेनोत्कीर्णानि

---

प्रस्तुत ताम्र पटोत्कीर्ण लेख आज १०७ वर्ष पूर्व सन १८२७ में उत्तर गुजरात के खेटकपुर मण्डल (खेड़ा) के समीप वहने वाली वत्रुआ नदी के कटाव से तट भागकी भूमि कट जाने से मिला था। इन पत्रों का प्रकाशन अध्यापक डासन ने रायल एसिआटिक सोसायटी के पत्र भाग १ पृष्ट २४७ में किया था। वर्तमान समय यह शासन पत्र उक्त सोसायटी के वोम्वे विभाग के अधिकारमें है।

इन पत्रकों का आकार प्रकार लगभग १३ ५/८ + ८ ७/८ इञ्च है। प्रथम पत्रक की लेख पंक्तियाँ २१ तथा द्वितीय पत्रक की १३ हैं। इस प्रकार दोनों पत्रोंकी कुल लेख पंक्तियॉ ३४ हैं। एक प्रकार से पत्रों की आद्यन्त भावी पंक्तियॉ सुरक्षित हैं। परन्तु द्वितीय पत्रक के लेखकी पंक्तियाँ २८,२९,३०,३१, और ३२ प्रायः नष्ट हो गई हैं।

यह लेख विजयराज नामक चौलुक्य राजा का शासन पत्र है। इसकी तिथि वैशाख शुद्ध १५ संवत ३९४ है। इसके द्वारा विजयराज ने जम्बुसर नामक ग्राम निवासी ब्राह्मणों को उनके वलि वैश्य देवाग्नि होत्रदि नित्य नैमित्तिक कर्म संपादनार्थ भूमिदान दिया है। पुनश्च दान का उद्देश्य अपने माता पिता और स्वात्म्य के पुण्य और यश की वृद्धि की कामना है। लेखकी भाषा संकृत और लिपि केनाडी है। यह शासन पत्र उस समय लिखा गया था जव शासन कर्ता विजय राज का निवास विजयपुर नामक स्थान में था। विजयराजकी वंशावली का प्रारंभ जयसिंह से किया गया है। और उस पर्यन्त वंशावली में केवल तीन नाम दिये गये हैं। और प्रत्येक का संवंध स्पष्ट रूपेण वर्णन किया गया है। पुनश्च विजयराज के वंशका परिचय चौलुक्य नामसे दिया गया है। इतना सव कुछ होते हुए भी शासन पत्र में घोर त्रुटियॉ पाई जाती है। क्यों कि इसमे यह नहीं वताया गया है की जयसिंह कहां का राजा और उसके वाप तथा दादा कौन थे। एवं जयसिंह की राज्यधानी कहां थी। अंततोगत्वा विजयसिंह का वाप वुद्धवर्मा तथा स्वयं विजयसिंह कहां रहता था। इसके अतिरिक्त शासन पत्रका संवत कौन संवत था यहभी नहीं पाया जाता। सवसे वढ़कर शासन पत्रकी त्रुटि प्रदत्तग्राम "पर्याय" की सीमाओं के उल्लेखका न होना है। अतः यह शासन पत्र और इसमें कथित

राजशिविर का स्थान विजयपुर-ब्राह्मणोंका ग्राम जबुसर घोर विवादका कारण हो रहा है। आज तक अनेक विद्वानों ने पक्ष विपक्ष म लेख लिखे हैं। किसी के मत से यह शासन पत्र बनावटी तो दूसरे के मतसे सत्य है।

वास्तव में देखा जाय तो इस शासन पत्र कथित ग्रामादि विवादकी वस्तु है क्यों कि शासन पत्र विजयपुर नामक ग्राम में अवस्थित राजशिविरसे लिखा जाता है। यह जम्बुसर के ब्राह्मणों को दिये हुए भूमिदान का प्रमाण पत्र है अर्थात इसके द्वारा उक्त ग्राम के ब्राम्हणों को दान दिया जाता है। यह जबुसर नामक स्थान से लगभग ४० मिल की दूरी से प्राप्त होता है। पुनश्च इसके प्राप्त होने के स्थान से विजयपुर नामक स्थान जिसके प्रति अद्यावधि विद्वानोंकी दृष्टि पडी है वह ७०-८० मिल से भी अधिक दूर प्रांतिज नामक स्थानके समाना न्तर पर लगभग २० मील की दूरी पर उत्तर पश्चिम में अवस्थित वीजापुर नामक ग्राम है। अब यदि देखा जाय तो इसके लिखे जाने के स्थान से प्रतिग्रहीता ब्राम्हणों के निवास स्थान की दूरी १२५-३० मील से भी अधिक है। परन्तु इस शासन पत्र को ब्राम्हणों के निवास स्थान तथा लिखे जाने के स्थान से कुछ दूरी पर मिलने के कारण बनावटी मानने वालोंने इस साधारण बात पर भी ध्यान नहीं दिया है कि शासन पत्र को जबुसर नामक स्थान से कोई मनुष्य अपने साथ लेकर अन्य स्थान को जा सकता है। पुनश्च उन्होंने भरूच जिला के जम्बुसर नामक तालुका के ग्राम जबुसरको ही शासन पत्र कथित जबुसर मान लिया है। अब यदि इनके माने हुए जबुसरको लेखका जबुसर और बीजापुरको विजयपुर मान लेवें तो वैसी दशामें प्रश्न उपस्थित होगा कि क्या चौलुक्यों का अधिकार जबुसर, खेडा और बीजापुर पर्यंत था। इस प्रश्नका उत्तर हम दृढता के साथ दे सकते हे कि उनका अधिकार वीजापुर पर्यन्त नहीं था। हमारे इस उत्तर का कारण यह है कि यह सर्व मान्य सिद्धांत है कि प्रस्तुत शासनपत्र कथित जयसिंह लाट नवसारिका के चौलुक्य राज्य वंशका संस्थापक था। जयसिंह के राज्य काल में भृगुकच्छ [भरूच] में गुर्जरों का और आनर्त अथवा उत्तर गुजरात के खेटकपुर [खेड़ा] पर सौराष्ट्र के वल्लभी राज के स्वामी मैत्रकों का अधिकार था। हां तापी और नर्मदा के मध्य वर्ती भूभाग पर जयसिंह के अधिकार का चिन्ह पाया जाता है। क्यों कि उसके बडे पुत्र युवराज शिलादित्य के सूरत से प्राप्त

शासन पत्र ४२१ वाले लेखमें और दूसरे पुत्र पुलकेशी के संवत ४६० वाले लेख में इसका उल्लेख पाया जाता है। एवं तापी के वाम तटवर्ती भूभाग पर उसके अधिकार का स्पष्ट चिन्ह कथित लेखों से पाया जाता है। इन दोनों लेखों में कार्मण्येय का उल्लेख है। कार्मण्येय वर्तमान कमरेज है। और तापी के वाम तट पर अवस्थित है। इस नगरकी प्राचीनता निर्विवाद है। क्यों कि इसके दुर्गावशेष से अनेक पुरातात्विक पदार्थ पाये जाते हैं। कमरेज सूरतसे लगभग १५ मीलकी दूरी पर वायव्य कोण में है।

कमरेज ग्रामसे लगभग २०-२५ मील उत्तर पूर्व में राजपीपला के अन्तर्गत जम्बु नामक एक पुरातन ग्राम है। वर्तमान समय इस गॉवमें केवल १०-१५ झोपड़ियें पाई जाती है। परन्तु गॉवके चारो तरफ लगभग दोमील पर्यन्त अनेक मन्दिरों और मकानों के अवशेष पाये जाते हैं। अब यदि हम इस जम्बु गांव को शासन पत्र कथित जंबुसर मान लेवें तो वैसी दशा में शासन पत्र संबंधी अनेक आशंकाओं का समाधान हो जाता है। प्रथम शंका जो चौलुक्यों के जंबुसर खेड़ा और प्रान्तिज के समीप वाले वीजापुर पर्यन्त अधिकार संबंधी है-का किसी अंश में निराकरण हो जाता है। क्यों कि कमरेज से और अधिक आगे २० मील पर्यन्त उनके अधिकार का होना असंभव नहीं है। अब यदि हम जंबुग्राम और कमरेज के पास पर्याय और वीजापुर नामक ग्रामों का परिचय पा जायें तो सारी उलझी हुई गुथ्थी अपने आप सुलझ जाय। कमरेज से ठीक सामने तापी नदी के दक्षिण तट पर कठोर नामक ग्राम है। कठोर से सायण नामक ग्राम लगभग ४ मील की दूरी पर है। सायण बी. बी. सी. आई, रेल्वे का एक स्टेशन है। सायण से पश्चिम डेढ़ दो मील की दूरी पर परिया ग्राम है। हमारी समझमें शासन पत्र कथित पर्याय ग्राम वर्तमान परिया है। क्यों कि पर्याय का परिया बनना अत्यंत सुलभ है। इस परिवर्तनको निश्चित करने के लिये परिवर्तन नीति को भी काममें लानेकी आवश्यकता नही है। क्यों कि पर्याय के अन्तरभावी यकार का परित्याग होकर परिया बना है। इस प्रदेशमें जयसिह तथा उसके पुत्रों के अधिकारका होना अकाट्य सत्य है। अतः हम निःशंक होकर वर्तमान परिया को शासन पत्र कथित पर्याय मानते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से शासन पत्र कथित विजयपुर का परिचय प्राप्त करनेमें हम असमर्थ है।

प्रदत्त ग्राम पर्याय का अवस्थान निश्चित होते ही जुसरको हम शासन पत्र कथित जुसर घोषित करते है। और पाश्चात्य विद्वानो की धारणा कि यह शासन पत्र बनावटी है को भ्रान्त और आधार शून्य प्रकट करते है।

शासन पत्र कथित अवुसर आदि ग्रामों के स्थानान्तिका विवेचन करने पश्चात इसकी तिथि का विचार करना आवश्यक प्रातीत होता है। इसकी तिथि सवत ३६४ है। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि जयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र युवराज शिलान्त्यि के सवत ४२१ और ४४३ के दो लेख द्वितीय पुत्र मगलराजका शक ६५३ का एक लेख और तृतीय पुत्र पुलकेशी के शक ४६० के लेखका हमें परिचय है। कथित लेखों का सवत विक्रम ७२७,७४६, ७८८, और ७६६ है। अत प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत शासन पत्रका सवत ३९४ कौनसा सवत है। यह अज्ञात सवत्सर नही हो सकता क्यों कि पुल-केशी के लेख के विवेचन में हम दिखा चुके है कि उक्त अज्ञात सवत्सर और विक्रम सवत्सर का अन्तर ३०६ वर्ष का है। सभव है यह गुप्त सवत्सर हो। गुप्त सवत मानने से इसे विक्रम बनाने के लिये विक्रम और गुप्त सवत का अन्तर ८८ वर्ष इसमें जोड़ना होगा। ३९४+८८=४८२ प्राप्त होता है। अत यह गुप्त सवत्सर नहीं। कदाचित यह शक सवत हो। शक मानने से इसम शक और विक्रम के अन्तर १३५ को जोड़ना होगा। अत ३६४=१३५=५२६ उपलब्ध होता है। अत यह शक सवत भी नहीं है। अब केवल शेषभूत वल्लभी सवत रह गया है। यदि वल्लभी सवत मानने से भी इस सवत का क्रम नहीं मिला तो हमें हार मानकर इस शासन पत्र को जाली मानना पड़ेगा। वल्लभी और विक्रम सवत का अन्तर ३७५ वर्षका है। अत प्रस्तुत सवत ३६४-३७५ -७६९ विक्रम होता है। इस सवत का जयसिंह के तिथि क्रमसे क्रमभी मिल जाता है। परन्तु तिथि क्रमके मिलने बाद भी एक दूसरी विपत्ति सामने आकर खड़ी होजाती है। वह विपत्ति यह है कि प्राप्त विक्रम सवत ७६६ जयसिंह के द्वितीय पुत्र मगलराज के राज्य काल में पड़ता है। क्यों कि उसका समय विक्रम ७४६ से ७८६ के मध्य है।

इसका समाधान यह है कि जयसिंह ने अपने चौथे पुत्र बुद्धवमा को जागीर दिया होगा। और उसका पुत्र उसकी मृत्यु पश्चात अपने पिताकी जागीरका उत्तराधि-

कारी हुआ होगा। परन्तु इस संभावनाका मूलोच्छेद शासन पत्र के वाक्य 'स्व वाहुवलोपार्जित राज्य' से होता है। क्यों कि विजयसिह स्पष्ट रूपसे अपने वाहुवलके प्रताप से राज्य प्राप्त करनेक उल्लेख करता है। इस संवंध में हम कह सकते हैं कि जयसिहकी मृत्यु पश्चात मंगलराज विक्रम ७४९ में गद्दीपर वैठा तो संभवत' वुद्धवर्मा से उसका मतभेद हो गया। और कदाचित उसने वुद्धवर्माकी जागीर के साथ कुछ छेड़छाड़ की हो। जिसका विजसिह ने अपनी वाहुवलसे दमन कर अपने अधिकार की रक्षा की हो। अथवा यह भी संभव है कि विजय और मंगलराज का मतभेद हुआ हो। पैत्रिक जागीर का अधिकार प्राप्त करने पश्चात विजयने किसी छोटे सामन्तको मार उसके अधिकार को अपने अधिकार में मिला अपने विजय के उपलक्ष में इस शासन पत्र को प्रचलित किया हो। हमारी समझमें यही यथार्थ प्रतीत होता है। किन्तु यह भी हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि शासन पत्र प्रचलित करते समय विजयका मंगलराज के साथ कुछभी संवंध नही था। वह पूर्ण स्वतंत्र था वरन उसके शासन पत्र में मंगलराज के नामोल्लेख के अभाव के स्थान में उसे अधिराज रूपसे स्वीकार किया गया होता।

# श्री नागवर्धनका दान पत्र ।

## प्रथम पत्रक ।

१ ॐ स्वस्ति । जयत्यविष्कृत विष्णोर्वाराहं क्षोभितार्णवं । दक्षिणोन्नत

२ दंष्ट्राग्र विश्रान्तं भुवनं वपु । श्रीमता सकल भुवन संस्तूयमान मा

३ नव्य सगोत्राणा हारिती पुत्राणा सप्त लोक मातृभिः सप्तमातृभि

४ रभिवर्धितानां कार्तिकेय परिरक्षणावाप्त कल्याण परपराणा

५ भगवन्नारायणप्रसाद समासादित वराह लाञ्छनेक्षण

६ क्षणवशी कृता शेष महीभृता चौलुक्याना कुलमलकरिष्णोर

७ श्वमेधावभृतस्नानपवित्रीकृतगात्रस्य सत्याश्रय श्रीकीर्तिवर्म्म

८ राजस्यात्मजोऽनेक नरपति शतमकुटतर कोठि घृष्ठ चरणारवि

९ न्दो मेरु मलय मन्दर समान धैर्य्योऽहरहराभि वर्द्धमान वर करि रथ

१० तुरग पदाति बलो मनोज्ञवैकु कंन्ठ चित्राख्य प्रवर तुरंग

११ मेणो पार्जित स्वराज्य विजिन चेर चोल पण्ड्य क्रमागत राज्यत्र

१२ य श्रीमदुत्तरापथाधि पति श्री हर्ष

# श्री नागवर्धनका दान पत्र ।

## द्वितीय पत्रक ।

१३ पराजयोपलब्धा परनामधेयः श्री नागवर्धनपादानुध्या

१४ तपरम माहेश्वरः श्री पुलकेशी वल्लभः तस्यानुजो आज्ञा विजिता

१५ रि सकलपक्षो धराश्रयः श्री जयसिंह वर्म्मराजः तस्य सूनुः त्रिभुवनाश्रयः

१६ श्री नागवर्धनराजः सर्वानिवागामी वर्त्तमान भविष्यांश्च नरप

१७ तीन्स मनुर्दशयत्यस्तु वः संविदितं यथास्माभिर्गोपराष्ट्र विषयान्त

१८ पाति बलेग्रामःसोद्रक सपरिकर अचाट भट्टप्रवेश्य आचन्द्रार्कार्णवं

१९ क्षिति स्थिति समाकालिन मातापित्रोरुद्दिश्यात्मनश्च विपुलपुण्य यशोभि

२० वृद्ध्यार्थ वल्लभकुंर विज्ञप्तिकया कापालेश्वरस्य गुगुल पूजा निमित्त

२१ तन्निवासि महाव्रतिभ्य उपभोगाय सलिल पूर्वकं प्रतिपादित स्तदस्मद्वंश्यै

२२ रन्यैश्चैवागामी नृपतिभिःशरदाभ्र चंचलं जीवीतमा कलय्यायमस्म-द्दायोनु मन्तव्य ।

२३ प्रति पालितव्यश्चेत्युक्तं भगवताव्यासेन । बहुभि र्वसुधाभुक्ता राजाभिस्स

२४ गरादिभिः । यस्य यस्य यदाभूमिः तस्य तस्य तदा फल मिति ।

२५ स्वदत्तां परदत्तांवायो हरते वसुन्धरां । षष्ठि वर्षसहस्त्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ।

# छायानुवाद ।

कल्याण हो । वाराह रूप भगवान विष्णुकी, जिन्होंने समुद्रमथन किया और अपने ऊपर उठे हुए दक्षिणदन्त के अग्र भागपर वसुंधराको आश्रय दिया, जय हो । समस्त संसारमें प्रशंसा प्राप्त मानव्य गोत्र सम्भूत हारिती पुत्र, जो सात माताओंके समान सप्त मातृकाओं द्वारा परिवर्धित, भगवान कार्तिकेय द्वारा सरक्षित, भगवान नारायण के प्रसाद से सुवर्ण वाराहध्वज सम्प्राप्त—जिसके देखने मात्र से शत्रु वशीभूत होते हैं—उस चौलुक्य वंशका अलंकार-जिसका शरीर अश्वमेधावभृथ स्नान से पवित्र हुआ है और जो सत्य का आश्रय है-श्रीमान् कीर्तिवर्माका पुत्र—जिसने अनेक राजाओं के मुकुटों को अपने पग तलमें किया है जो मेरु और मन्दर के समान धैर्यशाली तथा नित्य वृद्धिमान है, जिसकी सेनामें गजारोही, अश्वारोही रथी और पदाति हैं, एवं जिसने वायु समान वेगवान चित्रकंठ नामक अश्वपर आरूढ़ हो अपने शत्रुओंका मर्दन कर स्वराज्य के अपहृत भूभागको, स्वाधीन किया है, एवम् चेर, चोल और पाड्य राज्यत्रयको पद दलित किया है और अनततोगत्वा उत्तरापथ के स्वामी श्री हर्षको पराभूत कर नवीन विरुद धारण किया है—श्री नागवर्धन का पादानुध्यात परम माहेश्वर श्री पुलकेशी वल्लभ है। उसका छोटाभाई राजा श्री जयसिंह वर्मा जिसने अपने भाई के शत्रुओं के समस्त मित्र राजाओंकी समिलित सेनाको पराभूत किया । और धराका आश्रय बन धाराश्रय विरुद ग्रहण किया । उसका पुत्र त्रिभुवनाश्रय राजा नागवर्धन समस्त वर्तमान और भावी राजाओंको ज्ञापन करता है कि हमने गोप राष्ट्र विषयका बलेग्राम नामक ग्राम समस्त भोग भाग हिरण्यादि सपरिकर सहित—आचार्य भट्ट की प्रेरणासे—यावत् चन्द्र सूर्य तथा समुद्र और भूमि की स्थिति पर्यन्त—भगवान कपालेश्वर के पूजनार्चन निर्वाहार्थ तथा कपालेश्वर के महाव्रतियों के उपभोगार्थ—अपने माता पिता तथा आत्म पुण्य और यश की वृद्धि अर्थ जलद्वारा संकल्पपूर्वक प्रदान किया है। हमारे वंशके तथा अन्य वंशके भावी राजाओंको उचित है कि लौकिक ऐश्वर्यको नश्वर मान हमारे इस दान धर्मका पालन करें क्योंकि भगवान व्यासने कहा है—सगरादि अनेक राजाओंने इस वसुंधराका भोग किया है, परन्तु वसुधा जिसके अधिकारमें जिस समय रहती है—उसको ही भूमिदानका फल मिलता है । जो मनुष्य अपनी दी हुई अथवा दूसरे की दी हुई भूमिका अपहरण करता है वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्टामें कृमि बनकर वास करता है।

# विवेचन ।

प्रस्तुत लेख चौलुक्यराज नागवर्धन का दान पत्र है। इस के द्वारा दाताने कपालेश्वर महादेव के पूजनार्चन निर्वाहार्थ गोप राष्ट्र विषय का वलेग्राम नामक ग्राम दान दिया है। लेख वर्तमान नासिक जिला के निर्पाण नामक ग्राम से मिला था। इसका दोवार प्रकाशन बम्बे रायल एसियेटिक सोसाइटी के जोर्नल मे हो चुका है। प्रथमवार वालगंगाधर शास्त्री ने भाग २ पृष्ट ४ और द्वितीय वार प्रो. भंडारकर ने भाग १४ पृष्ट १६ मे प्रकाशित किया था।

लेख ८.५/८X५.३/५ आकार के दो ताम्र पटोंपर उत्कीर्ण है। दोनो पट कडियोंके सयोग से जुडे है। कडियो के उपर राज मुद्रा है। उसमे श्री जयाश्रय वाक्य अंकित है। उक्त वाक्य के उपर चन्द्रमा और निम्न भागमे कमल की आकृति वनी है। प्रथम पटकी लेख पंक्तियां १२ और द्वितीय पट की १६ है। इस की शैली प्रचलित चौलुक्य शैली है। भाषा संस्कृत और लिपी गुजराती है।

लेख का प्रारम्भ चौलुक्यों के कुलदेव वाराह रूप भगवान विष्णुकी प्रार्थना और अन्त दान धर्म के फलाफल से किया गया है। लेख मे लेख की तिथि नही है। साथही लेखक और दूतक के परिचय का अभाव है। एवं प्रदत्त ग्राम की सीमा आदि भी नही दी गई है। कथित त्रुटियां विशेष चिन्तनीय है। भगवान वाराह की प्रार्थना के अनन्तर चौलुक्य वंश की परंपरा वर्णन करने पश्चात अश्वमेधावभृथ स्नान द्वारा शरीर पवित्र करनेका उल्लेख है। एवं उक्त प्रकारसे पवित्रभूत शरीरवाले राजा का नाम कीर्तिवर्म्मा अंकित किया गया है। लेख कीर्तिवर्म्माके सत्याश्रय पुलकेशी और धराश्रय जयसिंह नामक दो पुत्र वताता है। एवं दाता के पिता जयसिंह को लेख अपने वडे भाई पुलकेशी के शत्रुओं का नाश करने वाला प्रगट करता है। लेख मे दाता की वंशावली उस पर्यंत निम्न प्रकार से है।

## वंशावली।
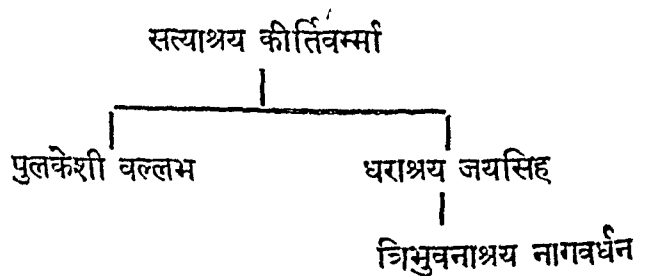
हम उपर वता चुके है कि लेख मे तिथि, लेखक और दूतक आदि का अभाव विशेष

महान भंवरमे डाल देता है। कितने विद्वान लेखकी अयथार्थताकी शकासे लेखकी वशावली गत दोपरापरिहर्थ कीर्तिवर्म्माके पुलशी, जयसिंह, बुद्धवर्म्मा और विष्णु वर्द्धन नामक चार पुत्रोंका होना प्रकट करते हैं। एव प्रकट करते हैं कि पुलकेशी ने जिस प्रकार विष्णु वर्धनको वेंगी मडल का सामन्त बनाया था उसी प्रकार जयसिह को गोप राष्ट्र का और बुद्धवम्मा को उत्तर कोंकण का बनाया था।

परन्तु हमारी समझ मे इस प्रकार वशावली गत दोष परिहार करने से त्राण प्राप्त नही होगा। क्योंकि सैकडो की सख्या मे प्राप्त चौलुक्योंके शासन पत्र इसका विरोध करते है। चाहे आप पश्चिम या पूर्व चौलुक्य वंश के शासन पत्रोंको लेव नतो आपको कीर्तिवर्म्मा का विरुद सत्याश्रय मिलेगा और न उसके अश्वमेधावभृत्य स्नान कृत पवित्र भूत शरीरका परिचय मिलेगा। अन्यान्य लेखों को पटतर करने पर भी केवल कीर्तिवर्म्मा के पुत्र पुलकेशी द्वितीय के विविध शासन हमारे कथन का समर्थन करेगे। हम यहा पर अपने समर्थन मे वेगम बाजर हैदराबाद दक्षिण से प्राप्त पुलकेशी द्वितीय के शासन पत्र का अवतरण करते है "अश्वमेधावभृत्य स्नानपवित्रीकृत गात्रस्य सत्याश्रय श्री पुलकेशी वल्लभ महाराजस्य पौत्र पराक्रमाक्रान्त वनवास्यादि पर नृपति मडल प्रतिबद्ध विशुद्ध कीर्तिपताकस्य कीर्तिवर्म्म वल्लभ महाराजस्य तनयो नय विनयादि गुण विभूत्याश्रय श्री सत्याश्रय प्रथिवी वल्लभ महाराज समर शत सघट समस्त पर नृपति पराजयोपलब्ध परमेश्वरापर नामधेय"। उधृत वाक्य हमारी धारणाका समर्थन पूर्णत करने के साथही प्रस्तुतलेख के कथन "पुलकेशी चित्रकठ नामक अश्व पर आरुढ हो" का मूलोच्छेद करता है।

यद्यपि पुलकेशीके चित्रकठ घोडे पर चढने और कीर्तिवर्म्मा के अश्वमेधावभृत्य स्नान कृत पवित्र शरीर होने तथा सत्याश्रय विरुद का खडण पर्याप्त रुपेण उपरोक्त वाक्य से होता है तथापि हम यहा पर अपने समर्थन मे पुलकेशी द्वितीय के पुत्र विक्रमादित्य प्रथमके वेगम बजार हैदराबाद दक्षिणसे प्राप्त शासन पत्रका निम्न वाक्य "अश्वमेधावभृत्य स्नान पवित्री कृत गात्रस्य श्री पुलकेशी वल्लभ महाराजस्य प्रपौत्र पराक्रमाक्रान्त वनवास्यादि पर नृपति मडल प्रणिबद्ध विशुद्ध कीर्ति पताकस्य श्री कीर्तिवर्म्म वल्लभ महाराजस्य पौत्र समर ससक्त सकलोत्तरापथेश्वर श्री हर्षवर्धन पराजयोपलब्ध परमेश्वरापरनामधेयस्य सत्याश्रय श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वरस्य प्रिय तनय चित्रकठाख्य प्रवर तुरंग मेनैकेनैव प्रेरितोऽनेक समर मुखेपु रिपु नृपति रुधिरजलास्वादन विक्रमादित्य" का अवतरण करते है। अवतरित वाक्य हमारी पूर्व कथित धारणाका समर्थन करनेके साथही चित्रकंठ घोडे का सम्बन्ध विक्रमादित्य प्रथम के साथ जोडता है।

हमारी समझमे आलोच्य लेखके कथन "कीर्तिवर्म्मा अश्वमेधावभृत्य स्नानकृत पवित्र शरीर तथा पुलकेशी द्वितीय चित्रकठ घोडे का स्वामी था" की अयथार्थता पर्याप्त रूपेण सिद्ध हो चुकी। अत हम इस सम्बन्धमे और प्रमाण आदिका अवतरण न कर वशावलीकी अयथार्थता प्रदर्शन करने मे प्रवृत्त होते हैं। पूर्वोद्धृत वाक्य द्वयसे विक्रमादित्य पर्यन्त चार नाम प्राप्त होते हैं। प्राप्त चार

व्यक्तियों का सम्बन्ध स्पष्ट रूपेण वर्णीत है। पुलकेशी द्वितीयके शासन पत्र मे उसे पुलकेशी प्रथम का पौत्र और कीर्तिवर्म्मा का पुत्र कहा गया है। उसी प्रकार विक्रमादित्य के शासन पत्रं मे उसे पुलकेशीं प्रथमका प्रपौत्र, कीर्तिवर्म्माका पौत्र एवं पुलकेशी द्वितीय का प्रिय तनय वताया गया है। साथ ही विक्रमादित्य को चित्रकंठ घोडे पर आरुढ होने वाला वर्णन किया गया है।

आलोच्य शासन पत्र को धराश्रय जयसिह के भाई के पास चित्र कंठ घोडा का होना स्वीकार है। उधर धराश्रय जयसिह के अन्य पुत्र युवराज शिलादित्य के पूर्व प्रकाशित शासन पत्र मे धराश्रय जयसिह को स्पष्ट रूपेण विक्रमादित्य का भ्राता और पुलकेशी का पुत्र वताया है। ऐशी दशा मे हम निश्शंकोच हो आलोच्य शासन पत्र की वंशावली को दोपपूर्ण वताते है। आलोच्य लेख को, हम उपर वता चुके है; वंशावली गत दोप अन्यान्य दोपो के साथ मिल कर शंका महोदधि के महान भवर डाल देता है। अव विचारना है कि प्रस्तुत शासन पत्र मे इस प्रकार की त्रुटियां क्यो पाई जाती हैं।

यद्यपि लेख कथित त्रुटिक्यों के कारण शंका महोदधि के महान भवंर में पडा है। इसकी यथार्थता संदिग्धता को प्राप्त है। तथापि हमारी समझ मे लेख मे कितनी ऐसी साम्यता आदि पाई जाती हैं जिनको दृष्टि कोण मे लाते ही लेख शंका महोदधि को अपने आप उत्तीर्ण कर जाता है। हमारी समझ सम्यतादि का दिग्दर्शन कराने के पूर्व इसकी तिथि आदि अन्य त्रुटियों का विचार करना ही उत्तम प्रतीत होता है॥ अतः हम लेख का समय विवेचन सर्व प्रथम हस्तगत करते है।

लेखमें दान दाताको धराश्रय जयसिहका पुत्र और राजा नामसे अभिहित किया गया है। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि प्रस्तुत लेख दान दाता के राजा होने पश्चात लिखा गया है। साथही यही भी मानी हुई वात है कि दाता अपने पिता की जीविता अवस्था मे राजा नामसे कदापि अभिहित नही हो सकता। इस हेतु लेख दाता के पिता की मृत्यु पश्चात लिखा गया है। पूर्व मे युवराज शिलादित्य के शासन पत्रका विवेचन करते समय सिद्ध कर चुके है कि धराश्रय जयसिंह शक ६१८ के आसपास पर्यन्त जीवित था। अत. यह लेख अवश्य शक ६१८ के वाद लिखा गया होगा। क्योकि धराश्रय जयसिह की मुत्यु होनेके लक्षण दिखते है। जयसिह का उत्ताराधिकार उसका दूसरा पुत्र मंगलराज हुआ था। एवं मंलराजकी समकालितामें ही जयसिंह के पौत्र और वुद्धवर्मा के पुत्र विजयराज को राजा रूपमें शासन पत्र प्रचलित करते पाते है। संभवतः जयसिह ने अपनी मृत्यु समय मंगलराज को उत्तराधिकारी और अन्य पुत्रों वुद्धवर्म्मा, नागवर्धन और पुलकेशी आदि को जांगीर प्रदान किया हो और वे अपने अधिकृत स्थानोंपर राजा रुपसे शासन करते हों। यदि ऐसी वात न होती तो वुद्धवर्म्माका पुत्र विजय राज अथवा नागवर्धनको इस प्रकार शासन पत्र शासित करते न पाते।

आलोच्य शासन पत्र की तीथि संवन्धी दोप का आनुमनिक रूपेण समाधान करने पश्चात हम लेख की वंशावली गत दोप के परिहार मे प्रवृत होते है। प्रस्तुत लेख की लिपी गुर्जर

लिपी है । अत इसके लेखक को उक्त लिपी का ज्ञान था और वह सभवत गुर्जर था। गुर्जर लिपी का नागवर्धन के प्रदेश मे प्रचार नही था। इस हेतु लेखक उसके यहा नवागन्तुक था। उसे चौलुक्यों के इतिहास और वशावली आदि का ज्ञान नही था। उसकीही अज्ञानता वसात वशावली मे दोष आगया है।

वशावली गत दोष को लेखक के मत्थे डालने पर भी हमारा त्राण नही क्योंकि गुर्जर प्रदेश मे रहने वाले के चौलुक्यों के इतिहास से अनभिज्ञ होने की सभावना को मानने की प्रवृती नहा होती। कारण कि गुर्जर प्रात चौलुक्यों के प्रभाव से दूर नही था। दान दाता के पिताका राज्य लाट प्रदेश मे था। जहापर दान दाताके भाई और भतीजे लेख लिखे जाते समय शासन करते थे। इतनाही नही उनका अधिकार लाट मे लगभग ३४ ३५ वर्ष पश्चात पर्यन्त स्थित होनेके प्रत्यक्ष चिन्ह पाये जाते है। इनका सबन्ध भी वातापिके साथ बना हुआ था। क्यों कि हम मगलराज के भाई और उत्तराधिकारी पुलकेशी को दक्षिणापथ मे प्रवेश करने वाले अरबों के साथ युद्ध करते पाते हैं। ऐसी दशा मे हम लेखक को चौलुक्य इतिहास से अनभिज्ञ कदापि नही मान सकते।

अब विचरना है कि आलोच्य लेख की लिपी से परचित पर चौलुक्या के इतिहास से अनभिज्ञ यदि गुर्जर नहीं था तो कौन था। हमारी समझमें प्रस्तुत लेखकी लिपीको गुर्जर लिपी न मान कैथी लिपी माननाही युक्ती सगत प्रतीत होता है। कैथी लिपी प्रदेश निवासी का चौलुक्यों के इतिहास से अनभिज्ञ होना असभव नही। क्योंकि उक्त प्रदेश में चौलुक्यो का प्रभाव नहीं था। अब देखना है कि वह कौनसाप्रदेश है जहापर गुर्जर लिपी से मिलती जुलती कैथी नामक लिपी का प्रचार था। आलोच्य कैथी लिपीका प्रचार चौलुक्योंके प्रभाव से अति दूर मगध प्रदेशमें था और आज भी है। कैथी लिपी और गुर्जर लिपी के मध्य पूर्णरुपेण साम्यता है। दोनो के दो तीन अक्षरों को छोड कर सब अक्षर एक है। अत हम आलोच्य लेख के लेखक को गुर्जर न मान मागधी घोषित करते है।

आलोच्य लेख की लिपी को मागधी "कैथी" लिपी घोषित करते हीं प्रश्न उपस्थित होता है।। गुजराती और कैथी लिपीयोंका अति दूरस्थ दो भिन्न प्रातो मे क्योकर प्रचार हुआ ? गुर्जर लिपी कैथी लिपी की जननी या कैथी लिपी गुर्जर लिपी की जननी है ? गुर्जरों की प्रवृती अपनी लिपी को कैथी की जननी बतानेकी अधिक होगी और हम उन्हे उनकी इस प्रवृती के लिये दोष नही दे सक्ते क्योकि यह मानव स्वभाव है। उधर कैथी लिपी वालों कीं प्रवृती अपनी लिपी को गुर्जर लिपी की जननी बताने की होगी। परतु इस का निर्णय करने के पूर्व हमे विचारना होगा। "किसी देश अथवा जाति की लिपी अथवा सस्कृती का प्रभाव अन्य देश और जाति पर तब तक नही पडता जब तक प्रभावान्वित देश अथवा जाति प्रभाव डालने वाले देश या जाति के राज नैतिक प्रभाव मे कुछ समय के लिये नहो। कथित कुछ समय शताब्दियो का होना आवश्यक है"। क्या

वर्तमान गुर्जर प्रदेश का राजनैतिक प्रभाव कैथी लिपी वाले प्रदेश मगध, मिथिला, वनारस, अवध आदि में किसी समय था। इस प्रश्न का सिधा उत्तर है कि भारतीय इतिहास उच्चे स्वर मे घोषित करता है कि उक्त प्रदेश गुर्जर प्रदेशके प्रभाव में कदापि नहीं थे वरन गुर्जर प्रदेश ही सेकडो वर्ष पर्यत कैथी लिपीवाले प्रदेशों के राजनैतीक यूप मे वंधा था। इतनाही नही ज्ञात ऐतिहासिक काल से लेकर आज पर्यंत का इतिहास प्रगट करता है कि गुजरात प्रदेश मे राज्य करने वाले मौर्य, क्षत्रप, त्रयकूठक, सैन्द्रक गुप्त, मैत्रक, गुर्जर, चौलुक्य और राष्ट्रकूट आदि कोईभी वंश गुर्जर प्रदेश का निवासी नहीं था।

कथित राजवंशोंमेसे मौर्य, गुप्त और मैत्रक मगध-अवध निवासी, त्रयकूट और सेन्द्रक संभवतः मध्य प्रान्त वासी, चौलुक्य और राष्ट्रकूट दक्षिणापथ वासी थे। हां गुर्जर वंश और क्षत्रपोंका मूल निवास अद्यावधि निश्चित नहीं है। ऐसी दशा में नतो सैन्द्रक या त्रयकूटक और न चौलुक्य या राष्ट्रकूट गुर्जर लिपी का प्रचार करने वाले माने जा सकते है। इन वंशो के हटते ही गुर्जर और क्षत्रप वंश सामने आता है परन्तु इन दोनों को हम गुर्जर लिपी का प्रचार करने वाला नही मान सकते। कारण कि यद्यपि इनका राज्य गुर्जर प्रदेश में था परन्तु इनके प्रभाव का मगध आदि कैथी लिपी प्रदेश में अत्यन्ताभाव था। कथित चौलुक्य आदि राज वंशों के विचार क्षेत्र से हटतेहीं केवल मौर्य गुप्त और मैत्रक वंश त्रय शेषभूत रह जाते हैं। इन तीनों वंशों का राजनैतिक प्रभाव गुर्जर प्रदेश में लग भग एक हजार वर्ष रहा। संभव है इन तीनो मे से किसी ने मगध प्रवासी होने के कारण अपनी लिपी का प्रचार अपने अधिकृत काठियावाड—गुर्जर प्रदेशो में किया हो।

हम मौर्य तथा गुप्तों को कैथी लिपी का गुर्जर प्रदेश में प्रचार करनेवाला नहीं मान सकते। हां मैत्रकोंको हम निश्शंकोच होकर कैथी लिपी का गुर्जर प्रदेश में प्रचार करने वाला घोषित करते हैं। हमारी इस घोषणा का कारण प्रवल है। काठियावाड प्रदेश मे मैत्रक वश की स्थापना करने वाला भटारक था। वह गुप्तों का सेनापति था। वह कठियावाडमें नवागन्तुक था। वह गुप्तो द्वारा कठियावाडमें शासक रूपसे भेजा गया था। अतः जव स्वतंत्र बना तो उसने अपनी लिपी का प्रचार अपने अधिकृत प्रदेश में किया। एवं काल पाकर उसकी लिपी गुर्जर लिपी नामसे प्रख्यात हुई।

हमारी कथित धारणा शेख चिली की उड़ान मात्र नही है। वरन हमारे पास उसके प्रवल कारण है। मैत्रक वंश को पश्चात्य और प्राच्य अनेक विद्वानों ने अपनी अभिरुची के अनुसार किसी ने विदेशी, किसी ने गुर्जरोसे अभिन्न, किसी ने हून और किसी ने अन्य जातिका वताया है। जिनकी प्रवृती भारतीयता के प्रति अधिक झुकी थी तो उन्होंने मैत्रकोंको पौरणिक सूर्य्य वंश से मिलाकर उन्हे शिशोदियों का पूर्वज घोषित किया है। परन्तु कवि सोढल कृत उदय सुन्दरी की उपलब्धी ने सभ को मौन वना दिया है। कथित पुस्तक का लेखक अपने को मैत्रक राज वंश का वंशधर और अपनी जाति

का नाम बालम कायस्थ लिखता है। हमारी समझमें यद्यपि हमने अपनी पुस्तक "नेसनलिटी औफ दी वल्लभी कींगस"में पूर्ण रुपेण मैत्रकों की जातीयता पर प्रकाश डाला है। तथापि यहा कवि सोढलके कथन का अवतरण देना असगत नही वरन विषय को स्पष्ट करने वाला होगा। इस हेतु यहा पर उसका अवतरण देते है।

वशस्य सच्चरित सारवत किमग
सगीयते सुललिताकुटिलस्य तस्य।
येनान्तरा धृतभरेण धराधिपत्ये
राज्ञा जयत्यहत विस्तरमातपत्र॥
किंबहुना। तृतीय मद्गतो मेप
कायस्थ अति लोचन।
राज वर्गो वहन्नेष भवेदत्र महेश्वर॥

उधृत वाक्य में कवि ने अपनी जाति का परिचय दिया है। हा मानते है कि कायस्थों के प्रचलित जातीय कथानकसे इसमे कुछ अन्तर है। हमारी समझमे वह अन्तर नगण्य है क्योंकि अपनी मातृभूमि से हजारो मिल की दूर पर रहने तथा अपने जातीय बन्धुओं से सबध विच्छेद हो जाने के कारण अपने जातीय कथानक में अन्तराभास का समेलन करना असभव नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे सामने अग्निकुल मानने वाले चौलुक्य, चौहान, प्रतिहार और परमार आदि राज वश है। इन चार राजवशों में परमारो को छोड किसी के शासन पत्र आदि में उनका अग्निकुड से उत्पन्न होना नहीं पाया जाता। पर आप उनमेंसे किसी से पूछें वे अपनेको अग्निकुल बतावेंगे। परमारोके शासन पत्र आदि उन्हें अग्निकुण्ड सभूत बताते है पर ऐसा प्रकट करने वाले शासन पत्रों से पूर्व भारी शासन पत्रों में उनका भी अग्निवशी होना नहीं पाया जाता। कवि सोढल के पूर्वज वल्लभी राजवश के नाश पश्चात लाट देश में चले आये थे और वह अपने मातृक वशमें आश्रित था। कवि का समय विक्रम की ११वी शताब्दि का प्रारभ है। इस हेतु वल्लभी राजवश की स्थापना और कवि सोढल के समय में लगभग ५५० वर्ष का अन्तर है। राजवश के उच्छेद और कवि के समय में लगभग डेढ सौ वर्ष का अन्तर है।

कवि सोढल ने अपनी पुस्तक स्थानक (वर्तमान थाना) पति शिलाहार वशी राजा मुमुनि को अर्पण की थी। अत कवि का आत्म परिचय के अन्तर्गत अपने को वल्लभी राज वशोद्भूत—केवल इतना हीं नहीं शेष वशधर—प्रकट करना ध्रुव सत्य है। यदि ऐसी बात न होती तो लाट के चौलुक्य और स्थानक के शिलाहार जिनके साथ उसका घनिष्ट सबध था, एव अन्यान्य राजवंश तथा जन समुदाय और विद्वान प्रभृति उसके कथनका अवश्य ही विरोध किए होते

कवि के वंश परिचय के संवन्ध में हमारा विचार है कि कोईभी व्यक्ति अपने वंश परिचय को सौ डेढसौ वर्ष के अन्तर्गत नही भूल सक्ता, अतः उसका स्वदत्त परिचय निर्भ्रान्त है। हां उनकी वातें विलग हैं। जिनके वंशका कोई स्थान हीं नहो। यहां तो वातही दूसरी है, कवि का वंश, वल्लभी का प्रख्यात राजवंश है। जिसनें लगभग तीन शताब्दियों पर्यन्त वड़े गौरव के साथ कुशद्विप अर्थात वर्तमान काठियावाड़ और आनर्त वर्तमान खंभात और खेडा आदि प्रदेश में राज्य किया था। धर्म और न्याय परायणता में अद्वितीय था। विद्वानों को आश्रय प्रदान करनें मे मुक्त हस्त था। दान धर्म में कर्ण का प्रतिद्वन्द्वी था। भट्टी ऐसे महाकवि जिसकी राजसभा के भूषण थे। जहां वौद्ध, जैन, और वेदानुयायी सम भाव से निवास करते थे। धार्मिक चर्चा नित्य प्रति हुआ करती थी। जो उत्तराधीश्वर श्री कंठ और कन्नौजाधिपति के वंश के साथ वैवाहिक संवन्ध सूत्र में वॅधा था। ऐसे प्रख्यात वंश का स्मृति चिन्ह शेष वंशधर के हृदय पट पर नहो यह कदापि माना नही जा सकता।

साधारण से साधारण वंश के वंशधर आज साभिमान अपने वंशका स्मृति चिन्ह अपने हृदयमें जीवित रखे हुए हैं। हजारों वर्ष व्यतीत होने के कारण कथानकमें यद्यपि नाना प्रकार की अनर्गल वातें घुसी हैं पर उसका चिन्ह लुप्त नही हुआ है। फिर कविको हम अपने वंश का स्मृति चिन्ह अन्यथा वर्णन करने वाला क्यों कर मान सकते हैं। अतः कविने जो अपना वंश परिचय दिया है, उसमें किन्तु परन्तु को स्थान प्राप्त होनेकी संभावना कालत्रय में भी नही है। इस हेतु कवि चित्र गुप्त वंशीय (वाल्मीकि) वालम कायस्थ था।

मैत्रक वंशकी जातीयता निश्चित होते ही उसका मूल निवास कायस्थ जाति का केन्द्र स्थान सिद्ध होता है। कायस्थों का केन्द्र संयुक्त प्रान्त ( अवध और काशी आदि ) और विहार (मगध और मिथला आदि) था और है। जहां आज भी कैथी लिपी का प्रचार है।

आलोच्य शासन पत्र के लेखक और उसकी लिपी का निश्चय करने पश्चात हम पूर्व कथित साम्यतादि को लेते हैं। आलोच्य लेख की पंक्ति १० में दान दाता के पितृव्य को चित्रकंठ अश्व का स्वामी कहा गया है। विक्रमादित्य के शासन पत्र के पूर्वोद्धृत वाक्य में स्पष्ट रूपेण उसे उक्त घोडे का स्वामी' माना गया है। प्रस्तुत लेख की पंक्ति १३ मे दाता को नागवर्धनका पादानुध्यात कहा गया है। युवराज शिलादित्य के पूर्व प्रकाशित लेख की पंक्ति ७ में नागवर्धन पादानुध्यात वताया गया है।

इन साम्यता आदि तथा पूर्व कथित कारणो से हम शासन पत्र को यथार्थ घोषित करते है साथही शासन पत्र का पर्याप्त रूपेण विवेचन मान इतनेही से अलम् करते है।

---

# लाटपति त्रिलोचनपाल

का

## शासन पत्र ।

ॐ नमो विनायकाय । स्वस्ति जयोऽभ्युदयश्च ।

वाणंवीणाक्ष माले कमल महिमथो बीजपूरं त्रिशूल
खट्वांग दान हस्त सहिताः पाणयो धारयन्तः ॥
रक्षन्तु व्यंजयन्तः सकल रस मयं देव देवस्य चित्तं
नो चेदेवं कथं वा त्रिभुवन मखिल पालित दानवेभ्यः ॥१॥

दधाति पद्मामथ चक्र कौस्तुभं गदामथो शंखमिहैव पंकज ।
हरि स पातु त्रिदशाधिपो भुव रसेषु मर्वेषु निशण्ण मानसः॥`॥

कमण्डलुं दण्ड मथ स्रुचं विभु
विभाति माला जपदत्त मानस ।
सृजत्यजोलोक मयोरित रिपु
रसैश्च सर्वै रसितो विशेषतः ॥ ३ ॥

कदाचिदुदैत्यै खेदोत्थ चिन्ता मन्दर मन्थनात ।
विरचे श्चुलुकाम्भोधे राजरत्न पुमान् भूत ॥ ४ ॥

देव किं करवाणीति नत्वा प्राह तमेव सः ।
समादिष्टार्थ ससिद्धो तुष्टः स्रष्टा ब्रवीच्चत ॥ ५ ॥

कान्यकुब्जे महाराज राष्ट्रकूटस्य कन्यका ।
लब्ध्वा सुखाय तस्यात्वं चौलुक्याप्नुहि सन्तिं ॥ ६ ॥

इत्यमब भवेत्तत्र सतति वितता किल ।
चौलुक्यात्प्रथिता नद्या स्रोतासीव महीधरात् ॥ ७ ॥

तत्रान्वये दपित कीर्तिरकीर्ति नारी
संस्पर्श भीत इव वार्जितवान्परस्य ।
बारप राज इति विश्रुत नामधेयो
राजा बभूव भुवि नाशित लोक शोकः ॥ ८ ॥

श्री लाट देश साधिगम्य कृतानि येन
सत्यानि नीति वचनानि मुदे जनानाम् ।
तत्रानुरंज्य जनमाशु निहत्य शत्रून्
कोशस्य वृद्धि फलमार्थ निरन्तरं यः ॥ ६ ॥

तस्माज्जातो विजयवर्मतः गोगिराजः क्षितीशा
यस्मादन्ये मनु पतयः शिक्षता राजधर्मम् ।
यो गोत्रस्य प्रथम निलयो पालकोयः प्रजानां
यः शत्रूणामामित सहसो मूर्ध्नि पादं व्यधत्त ॥ १० ॥

आत्मभू रुद्धृता येन विष्णुनेव महाम्भसा ॥
वालिभिः सा समाक्रान्ता दान वैरिव वैरिभिः ॥ ११ ॥

प्रद्युम्न वन्मदन रूपधरोऽच्युतस्य
श्री कीर्तिराज नृपतिःस बभूव तस्मात् ।
यो लाट भूप पदवीमपि गम्यचक्रे
धर्मेण कीर्ति धवलानि दिगन्तराणि ॥ १२ ॥

सन्तान तन्तुषु प्रोताश्चौलुक्य मणयो नृपाः
तस्यां तु मणिमालायां नायकः कीर्तिभूपतिः ॥ १३ ॥

गो : पिण्डे भौतिकभूरि पदार्थायतने गुरौ ।
सूते क्षीरं शिशुकार्थ माना स्त्रीषु तथैव तम् ॥ १४ ॥

आजन्म दृष्टयाति मनोहरस्य
मुदा तथा पूर्वतः सर्वलोकः ॥
यथामृता पूर्ण घटीसमानं
नारिश्चतापि स्तुता विन्दुपातैः ॥ १५ ॥

समेऽपि स्पृहणीयत्वे पक्वान्नस्यैव योषिताम् ।
भोगस्तेन परस्त्रीणां मुच्छिष्टस्यैव वर्जितः ॥ १६ ॥

लग्नं तथा क्षमापानि पाणि पादे स्थितं यथा वक्षसि रत्नहारैः
गौण त्यजाद्भिः श्रुति कुण्डलाभ्यां कृत्वा पदं मुख्य मथास्थितैस्तै ॥ १७ ॥

आलम्बनीभूत महीधरास्तानुल्लंघ्य जुष्टं पतनं गुणौघैः ॥
कुतोऽन्यथा ते सहजा बभूवु कथं च ते तत्सह वृद्धिमापु ॥१८॥

स यौवनौन्मत्त गजेन्द्र पार्श्वाद्धावन्मनो मारय देव मेतत्
तस्मादृते ह्यीन्द्रिय खेटकेन विलंघिता वैषयिकीन सीमा १९ ॥

कायेन गेहादि निभेन जीवो व्योमेव जन्तो व्यवधीयते स्म ॥
तस्मात्परास्मिन्न हमेव मत्वा लक्ष्मी समां योऽर्थि जनैर्भुक्त २०॥

बाहुबलौ कोप गुरो श्च वासो वक्षस्तथा नम्र मवेक्ष्य चापं ।
दर्पोद्धतं मस्तक मेव येषा द्विषा छिनत्ति स्म रणे स वीरः २१ ।

पृष्ठ ददच्चाप मभिद्विष य प्रियं चकार द्विपति प्रयुक्तः ॥
लक्ष्यानुगा मागण पुगवास्ते जाताः कुतार्थास्तत एव तस्मात् ॥ २२

तस्यासीद विचार कीर्ति दयिता निस्त्रिशहस्तस्य या
संग्रामे सभयेव हन्त सहसा गच्छत्परेषाम् गृहम् ।

सा वाचापगमायतेन दधनी दिव्य प्रताप पुरो
दूभ्रन्ता सप्त ससुद्र मण्डल भुव शुद्धेति गीता सुरै ॥ २३॥

तस्माच्च वत्सराजो गुणरत्न महानिधि जातः ।
शूरो युद्ध महार्णव मथनाय मन्दरः ख्यात ॥ २४ ॥

आबाल्यादियमत्र मूर्तै भुवने भद्रैः सम श्री स्थिता
क्रीडाप्यत्र वधूरिव स्वविषय प्रच्छादयन्ती सती ।

तामेवाधिकता नपत्य विरता भर्तुः मनो जानती
सा विष्णोरिव वत्सराज नृपते सापत्न वर्ज स्थिना । २५ ।

सदैकाम्बर दुस्थत्वे काश्चित्कोण श्रिता दिश ।
इती वाच्छादयत्यागी वत्सेश. कीर्ति कर्पटै ॥ २६ ॥

तस्याद्भ सभव श्रीमास्त्रिलोचनपति नृप
भोक्ता श्री लाट देशस्य पाण्डव कलि भूभुजा । २७ ।

हेमरत्न प्रभ छत्र सोमनाथस्य भूषणम्
दीननाथ कृते सत्र मषारित मकारि च २८ ॥

त्यागेऽपि मार्गणा यस्य गुण ग्रहण गामिन

सत्य धर्मो धवे वक्रः शौर्येगोपाल विक्रमः २९ ॥

अहो वृद्धस्य तस्यासन्शत्रवो विकलाः भृशम्
भोक्तु-स्तस्यैव ते चित्रं विहार बल शालिनः ३०

शत्रोः संगर भूपणस्य समरे तस्यासिना पातिते
मूर्धन्याशु गलत्सु कण्ठ वलया युक्तस्य पूरेष्वलम्
तत्तेजोमय वान्हि तापित वपु स्तस्या सवर्णस्य तं
नूनं भाजन मुल्ललास सहसा खग्गोर्ध्वं हस्तं चलम् ॥ ३१ ॥

धर्म शीलेन तेनेदं चलं वीक्ष्य जगत्रयम् ।
गोभूहिरण्य दानानि दत्तानिहि द्विजन्मनां ॥ ३२ ॥

शाके नव शतै युंक्ते द्विसप्तत्यधिके तथा ।
विकृते वत्सरे पौषे मासे पक्षे च तामसे ॥ ३३ ॥

अमावास्या तिथौ सूर्य पर्वण्यंगार वारके ।
गत्वा प्रत्यगुदन्वंत्तं तीर्थे चागस्त्य सत्रके ॥३४ ॥

गोत्रेण कुशिकायात्रभार्गवाय द्विजन्मने ।
विश्वामित्र देवराता वादलः प्रवरास्त्रयः ॥ ३५ ॥

इमानुद्धहते ग्रामं माधवाय त्रिलोचनः।
धिलिश्वर पथकान्त द्विचत्वारि संख्यके ॥ ३६ ॥

एरथाणा नव शत मदादुदक पुर्वकम् ।
समस्तायं ससीमान मघाटै स्तरुभि र्युतम् ॥ ३७ ॥

देव ब्राह्मणयोर्दायान्वर्जयित्वा क्रमागतान् ।
पूर्वस्यां दिशि नागाम्बा ग्राम स्तन्तिका तथा ॥ ३८ ॥

वटपद्रक माग्नेयां याम्यां लिङ्गवटः शिवः ॥
इन्द्रोत्थनतुर्नैऋत्यां वहुनादश्वा परे स्थित : ॥ ३९ ॥

वायव्यां टेम्बरूकं च सौम्यां तु तलपद्रकम् ।
ईशान्यां कुरूण ग्रामः सीमायां खेटकाष्टकम् ॥ ४० ॥

आघाटनानि चत्वारि आयैः सहसीमकैः
तस्मा द्विज वरस्य (अस्य) भुञ्जतो न विकल्पना ॥ ४१ ॥

कर्तव्या कैश्च न नरैः सार्थं साधु समाख्यकैः ।
अथैव यदि लोप्तास्य स सदा पापभाजनम् ॥ ४२ ॥

पालनेही परो धर्मं हरणे पातकं महत् ॥ तथाचोक्तम् ॥

सामान्योऽयं धर्मसेतुं र्नृपाणा काले काले पालनीयोभवद्भि ।
स्ववंशजो वा परवशजो वा रामोवत प्रार्थयते महीशा ॥ ४३ ॥

कन्या मेका गवामेकां भूमे रप्यार्ध मङ्गुलम् ॥
हरन्नरक माप्नोति यावदा भूत सप्लवम् ॥ ४४ ॥

यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रै धर्मार्थ कामादि यशस्कराणि ।
निर्माल्यवन्ति प्रति मानि तानि को नाम साधु पुनराददीति४५॥

बहुभि वसुधा भक्ता राजभि सगरादिभि ।
यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तस्य तदा फलम् ॥ ४६ ॥

लिखितंमयामहासान्धिविग्रहिकश्रीशंकरेण॥स्वहस्तोऽयश्रीत्रिलोचनपालस्य

---

# लाटपति श्री त्रिलोचनपाल

## के

## शासन पत्र

## का

## छायानुवाद।

भगवान विनायक को नमस्कार । कल्याण—जय और अभ्युदय हो ।

भगवान देवाधि देव महादेव जिन के हाथों में— वाण, विणा, पद्म त्रिशूल खट्वाङ्ग वरदान और भयकी प्रचूर शक्ति है—अन्यथा वे किस प्रकार दानवो से संसारकी रक्षा कर सकते हे—रक्षा करे ॥ १ ॥

भगवान हरि जिनके हाथों में शंख चक्र गदा और पद्म और गलेमें कौस्तुभ मणीकी माला है और जो समस्त संसार के मानस पर निवास करते हैं उक्त त्रिदशाधिप रक्षा करें २ ॥

भगवान चतुरानन ब्रह्मा जिनके हाथों में कमण्डलु दण्ड और श्रुवा है जो अपनी जप मालिकाकी दानाओ के संचार क्रमसे मंत्रो का उच्चारण तथा स्वयं अज होते हुए भी संसारकी हित कामनासे मानवी सृष्ठिकी रचना करते हैं—रक्षा करें ३ ॥

किसी समय ब्रह्मा के संध्या करते समय सूर्यार्ध प्रदान करने के लिये हाथके चुलुक में लिये हुए जल के दैत्यो के उपद्रव जन्य खेदात्मक रुप मन्दर के मन्थन से राज रत्नरूप पुरुष उत्पन्न हुआ ४ ॥

इस प्रकार भगवान ब्रह्मदेव के चुलुक से पैदा हुआ महा पुरुष ने हाथ जोड नमस्कार कर पूछा कि हे देव मुझे क्या करनेकी आज्ञा होती है । इसपर ब्रह्माने अपने समादिष्ठार्थ अर्थात दैत्यो के उपद्रव समन को लक्ष कर आल्हादित हो आदेश दिया ५ ॥

हे चौलुक्य तुम सुखकी इच्छासे कान्यकुब्ज के राष्ट्रकूट वंशी महाराज की कन्या को प्राप्त करो और उससे यथेष्ट संतान तंतुका प्रसार करो। जिस प्रकार पर्वतसे निकली हुई नदिओं से पृथिवी परिपूर्ण है उसी प्रकार तुमसे उत्पन्न चौलुक्य वंशका संसार में विस्तार होगा ॥ ६ ॥७ ॥

उक्त चौलुक्य वंशमे अतुल कीर्ति, परस्त्रिओं के संरपर्ष भय से भीत वारपराज नामक राजा हुआ । जिसने संसार के शोक को दूर किया। ॥ ८ ॥

उक्त बारप राज ने लाट देशमे जाकर अपनि निति निपुणता और भुजबलसे शत्रुओं का नाश कर प्रजा को आनन्द दे राज कोशकी निरंतर वृद्धि की ॥६॥

उक्त विजयी बारप राज का पुत्र प्रथिवी का पालक गोरगि राज हुआ। जिससे अन्याय राजाओंने राज नितिकी शिक्षा ग्रहण किया। उक्त गोरगिराज अपने वंशका प्रथम प्रथिवी पालक हुआ और उसने अपने शत्रुओं के शिर पर पाद प्रहार किया॥ १०॥

पुनश्च गोरगिराज ने अपनी अधिकृता भूमि—जो बलवान मानव रूप बैरीओंसे आक्रान्त हुई थी—का बराह रूप विष्णु के समान उद्धार किया॥ ११॥

जिस प्रकार भगवान अच्युत (कृष्ण) के सकाशसे मदनने प्रद्युम्न रूपसे अवतार लिया था उसी प्रकार गोरगिराज से अतिरूपवान कीर्तिराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसने लाट देशका राज्य पाकर अपने सुन्दर कार्य रूप उज्वल कीर्ति के किरणों से दिशाओं को परिपूर्ण कर उज्वल बनाया॥ १२॥

वंश ततु में प्रोत चौलुक्य राजओं रूप मणिमाला के मध्य श्री कीर्तिराज नायकमणि अर्थात सुमेरु मणि के समान हुआ॥१३॥

कीर्तिराज के जन्म समय उसके मनोहर रूपको देख समस्त पुरजन और परिजन आनन्दको प्राप्त हुए और जनता को उसके रूपकी प्रशंशा बारंबार करने परभी संतोष प्राप्त न होता था॥१४॥

इस प्रकार अलौकिक रूप पाने परभी वह परस्त्रियों का संसर्ग नन्दीप्त अनलके समान परित्याग करने वाला हुआ॥ १५॥

उसके पाणीपात्रे में धर्म इस प्रकार आश्रित था जिस प्रकार मनुष्य के हृदय पर रत्नहार आश्रय पाता है। एवं श्रुति अर्थात वेद उसके मुखसे निश्रित होकर कपोल मार्ग से श्रवण रंध्रम प्रवेश करता था और उसका प्रवेश कर्णकुण्डलोंके कपोल पर संचार समान प्रतीत होता था॥१६॥

उसके गुणों से संतुष्ट हो धर्म महिधर के समान उसम अचल रूप बनकर स्थित हुआ जिससे धर्मका उसमें सहज रूपसे आश्रित अर्थात स्वाभाविक रूपसे स्थित होता प्रतीत होना था इस कारण धर्मकी अधिक वृद्धि हुई अन्यथा धर्मका वृद्धि प्राप्त करना कैसे संभव हो सकता है॥१७॥

उसने अपने यौवन उमंगोन्मत्त मनरूप बलवान गजेंद्र को संयम रूप अंकुश से वशीभूत किया था अतः मनके वशीभूत होकर शान्त होने पश्चात उसके सहाय विना उसके आश्रित इन्द्रियाको अपनी मर्यादा की सीमा का उलंघन करना असाध्य हो गया॥१८॥

वह अपनी सर्व व्यापक आत्मको भौतिक शरीर रूप व्यवधान से आच्छन्न होते हुएभी अखन्ड मण्डल गगन के समान घटपट सर्व पदार्थों में अप्रतिबाधित रूपसे व्याप्त मान अपनी लक्ष्मी का अर्थीजनो के बीच सदा निराकुल होकर विभाग करता था। १६॥

उसके वाहुवलमें कोपगुरु अर्थात भगवान शंकर का वास था अतः उसने संग्राममें धनुष्यकी प्रत्यंचाको वक्षःस्थल पर्यन्त खीच शत्रुओं के अभिमानी शीरका छेदन किया ॥ २० ॥

उसने भागते हुए शत्रुओं के पृष्ट प्रदेशमे वाण मार उनका हितचितन किया क्योंकि उसके ऐसा करने पर शत्रुगण कृतार्थ हो फिर गये। अर्थात जब उसने भागते शत्रुके पृष्ट प्रदेश पर वाणमारा तो वे व्याकुल हो फर कर पीछे देखने लगे और जब वाणा घात के कारण उनकी मृत्यु हुई तो रणक्षेत्रके प्रति मुख करनेके कारण रणमें सन्मुख मरनेका फल अर्थात स्वर्ग प्राप्त हुआ। अतः उनका हित साधन किया अर्थात उन्हें स्वर्ग दिलाया ॥ २१ ॥

उसकी जो अविचार कीर्ति नामक दयिता थी वह उसके संग्राममे जातेही अचानक दुसरे अर्थात शत्रुओंके घर चली गई॥ जब शत्रुओं ने वापस करना चाहा तो वह अपने प्रतापी पतिके नगरको लोटते समय भय विह्वल हो उन्मादिनी वन सप्तसागरमें प्रवेश कर गई। परन्तु डूबने के स्थान में परं पवित्र वन और देवताओं से वन्दित हो वाहर निकली ॥२२॥

उसका अर्थात कीर्तिराज का पुत्र सर्व गुण सागर तथा अत्यन्त शूर और युद्धरूप महार्णवका मन्थन करने वाला प्रसिद्ध मन्दर पर्वत समान हुआ ॥ २३ ॥

यहां पर इस मूर्ति भवनमे वाल्य कालसे ही श्री कल्याण सम बन कर निवास करती है और शवित नववधू के समान जहां पर अपने प्रिय के साथ आनन्द वर्धन करती हुई क्रीडा करती है। एवं वीरता अपने पतिके मनोभावको जानकर उसे विशेष रूपसे प्राप्त करती है और वत्सराज को विष्णु समान मान लक्ष्मी सापत्नी दाहको छोड निवास करती है ॥ २४ ॥

सारा संसार एक वस्त्र से ढांका नही जासकता ऐसा मान किसी एक कोण अर्थात स्थान का आश्रय लेना आवश्यक मान उसका आश्रय लिया तो उसने (वत्सराज) कीर्तिपटसे आच्छादन किया। ॥ २५ ॥

वत्सराज ने सोमनाथ महादेवको रत्नजडित सुवर्ण छत्र चढाया और दिन जनों के लिये एक अन्न सत्र वनाया ॥ २७ ॥

वत्सराज का पुत्र त्रिलोचनपाल हुआ जो कलियुग में पाण्डवों के समान लाट देशका भोग करने वाला हुआ ॥ २८ ॥

त्रिलोचनपाल सत्यवादितामें युधिष्ठिर-नाश करने में वक्र और शौर्य में कृष्ण के समान है। जिसके वाण त्यागने अर्थात सन्धान करने पर भी धर्मा धर्म विवेचन करने लगते हैं ॥२६॥

त्रिलोचनपालके वृद्ध शत्रुगण अत्यन्त भ्रममे पड़ गये थे। क्योंकि उसके मुखपर आनन्द चित्रित था कारण कि वह (त्रिलोचनपाल) आनन्द देने वाला था॥३०॥

रणक्षेत्र के भुपण रूप उसके शत्रुका शिर जब उसकी तलवारसे कट कर भूमि में गिर पडा और तो उनके शरीर निश्रित रुधिर प्रवाहसे प्रवाहित शरीर रक्त प्लावित हो चमक

उठा उस समय सहसा उसके समस्त बन्धुगण उसके शौर्य से आतप्त हो अपने खग पूर्ण हाथको उपर उठाये अर्थात उसकी त्रिलोचनपालकी आधिनता स्वीकार किये ॥ ३१ ॥

धर्मात्मा त्रिलोचनपालने नयलोक को नश्वर मान ब्राम्हणों को गाय-भूमि और सुवर्ण दान दिया ॥ ३२ ॥

शक ९७२ विकृत सवत्सर के पौष कृष्ण अमावास्या तिथि मगलवारको-सूर्यग्रहण के समय पश्चिम समुद्र तट के अगस्त्य तीर्थ में जाकर ॥ ३३-३४ ॥

कुशिक गोत्री विश्वामित्र-देवरात और यादव नामक तीन प्रवर वाले माधव नामक भार्गव ब्राम्हण को नवशत मण्डलके द्विचत्वारी नामक धिलीश्वर पथकान्तर्वर्ती एस्थान ग्राम चतुराघाट युक्त समस्त आय के साथ त्रिलोचनपाल ने हाथमें जल लेकर दान दिया है ॥ ३५-३६-३७ ॥

प्रदत्त ग्राम का दान क्रमागत पूर्वदत्त देव ब्राम्हण दाय वर्जित है। इस प्रदत्त ग्रामकी पूर्व दिशा में नागम्मा और तत्तिना आग्नेय दिशा में वटपद्रक—याम्य दिशामें लिगवट शिव—नैऋत्य दिशामें इन्दोत्थान- पश्चिम दिशा में बहुनदश्व-वायव्य दिशा म टेम्वल्क, सौम्य दिशामें तलपद्रक और इशान दिशा में करूण ग्रामादि आठ ग्राम है ॥३८-३९-४०॥

इन चारो आघाटो से आवेष्टित समस्त आयों के साथ इस ग्राम को—कथित द्विजवर माधव के—उपभोग में निकल्पना अर्थात बाधा न हो ॥४१॥

साधु समाज के किसी व्यक्तिको इसमें बाधा न करना चाहिऐ। यदि कोई बाध उपस्थित करेगा तो उसे पाप होगा ॥४२॥

पालनेमे पुन्य और अपहरणमे पातक होता है। कहा भी गया है ॥४३॥

श्री राम अपने तथा अन्य वशोद्भूत भावी राजाओं से आदेश करते है कि राजाओं का यह सामान्य धर्म है कि वे अपने पूर्व भावी राजाओं चाहे वे अपने अथवा दुसरे वशके हीं क्यों न हो—उनके धर्मदायकी रक्षा करें ॥४४॥

कन्या गाय तथा अर्ध अगुली भूमिका भी अपहरण करने वाला चद्र सूर्य स्थिति पर्यन्त नर्कमें वास करता है ॥४५॥

पूर्वभावी राजाओं के—धर्म अर्थ काम और मोक्षकी इच्छा वाले को—यशको फैलानेवाले धर्मदाय को निमाल्यके समान मान कर उसका अपहरण कोइभी साधु व्यक्ति नही करता ॥४६॥

सगरादि बहुतसे राजाओं ने इस वसुधाका भोग किया है किन्तु भूमिदानका फल उसको हीं होता है जिसके अधिकारमें जब वसुधा होती है ॥ ८ ॥

महासधि विग्रहिक शकरने लिखा। हस्ताक्षर श्री त्रिलोचनपाल।

# लाटपति त्रिलोचनपाल

# के

# शासन पत्र ।

# का

# विवेचन.

प्रस्तुत लेख लाट देशके प्रख्यात नगर सूरत के एक कंसारा के पाससे श्री एच. एच. ध्रुव को निर्भय राम मनसुखराम के द्वारा प्राप्त हुआ था। जिसका प्रकाशन ध्रुव महोदयने इन्डीयन ऐन्टिक्वेरी वोल्युम १२ में किया था। कथित लेख लाट नंदिपुर पति चौलुक्यराज त्रिलोचनपाल कृत दानका प्रमाण पत्र है। यह तांबेके तीन पटोंपर उत्कीर्ण है। तीनों पटों के मध्य में दो छिद्र बनें हैं। उक्त छिद्रों में कड़ियां लगी हैं। राजमुद्रा में राजवंशका राज्यचिन्ह भगवान शंकरकी मूर्ति बनाई गई है। लेखकी लिपी देव नागरी और भाषा संस्कृत है। प्रथम पंक्ति और मध्यकी पंक्ति का कुछ अंश और अंतकी पंक्ति गद्य और शेष लेख पद्यमें है। लेखके पद्य विविध वृत्तों के छंद हैं। लेखकी तिथि पौष कृष्ण अमावास्या विकृत संवत्सर और शक वर्ष ९७२ है। लेखका लेखक महा संधिविग्रहिक शंकर हैं।

लेखका प्रारंभ "ॐ नमः विनायकाय" से किया गया है। इसके पश्चात दूसरा वाक्य "स्वस्ति जयोऽभ्युदयश्च" है। इसके बाद लेखकी कविता का प्रारंभ होता है। प्रथम भावी तीन पद मंगलाचरण युक्त है। चार से सात पर्यन्त चार श्लोक चौलुक्य वंशकी उत्पत्ति वर्णन करते हैं। ८ और ९ श्लोक राज्यवंश संस्थापक बारप देवके गुणगान करते हैं। पश्चात श्लोक १० और ११ गोरगिराज का, १२-२२ कीर्तिराजका, २३-२६ वत्सराज का और २७-३० दान कर्ता त्रिलोचनपालके शौर्य आदि का वर्णन करते हैं।

श्लोक ३१ शासन कर्ता त्रिलोचनपालके विविध दानोंका, ३२-३३ शासन पत्र की तिथि तथा प्रदत्तग्राम और स्थानादि का अभिगुण्ठन करते हैं। ३४-४० श्लोकों में दान प्रतिग्रहीता ब्राह्मण और प्रदत्त ग्रामकी सीमादि का विवरण है। अन्ततोगत्वा श्लोक ४१-४६ भूदानका महत्व, पालन का फल और अपहरणका प्रायश्चित आदि बताता है। लेखके अन्तमें शासनकर्ता त्रिलोचनपाल का हस्ताक्षर "स्व हस्तोऽयं श्री त्रिलोचनपालस्य" रूपसे दिया गया है।

लेखका साधारण रूपेण भावार्थ देनेके पश्चात हम इसके विवेचन में प्रवृत्त होते है। और सर्व प्रथम लेख कथित चौलुक्य वशकी उत्पत्तिको हस्तगत करते है। वशावली वर्णन करने वाले कथित श्लोकों से प्रगट होता है कि ' भगवान ब्रह्मा के चुलुक रूप समुद्र म उनके हन्य म दैत्यों के उपद्रव जन्य खेदात्मक मन्थके मथन से राजरत्नोंका मूल पुरुष उत्पन्न हुआ। उसनें उत्पन्न होते ही नमन कर ब्रह्मासे पूछा कि हे भगवान हम क्या करें। उसकी विनम्र वाणी सुनकर ब्रह्माने आदेश दिया कि हे चौलुक्य राष्ट्रकूट वशी कान्यकुब्ज नरेशकी कन्या को प्राप्त कर-सतान उत्पन्न कर। चौलुक्य वश जिस प्रकार पर्वत से निकली हुई नदिओं से पृथिवी परिपूर्ण है उसी प्रकार ससार म व्याप्त होगा"। चौलुक्य चन्द्रिका वातापि खण्डके प्राक्कथन नामक शीर्षकके अन्तर्गत चौलुक्य वश की उत्पत्ति आदि का हमने पूर्ण रूपेण विवेचन किया है। और अकाट्य रूपेण सिद्ध किया है कि प्रस्तुत लेखके कवि शकर और उसके कुछ परकाल में होने वाले वातापि कल्याण के चौलुक्य राज विक्रमादित्य छठे के राज्य पण्डित विल्हण एव पाटणके चौलुक्यो के इतिहास लेखक जैन पण्डित गण में से किसीको चैलुक्यों के वास्तविक वशवृत्तका ज्ञान नही था। उन्हो ने अपनी अज्ञानता अथवा निरकुश कल्पनाकारी भावुकता के कारण चौलुक्य पदके यौगिक अर्थको लक्ष बना अभूतपूर्व कल्पना की है। अत यहा पर पुन विवेचन में प्रवृत्त होना पिष्ट पेषण और समयका दुरुपयोग मान आगे बढ़ते है। आशा है पाठक हमें क्षमा करेंगे और विशेष बातो को जानने के लिये उक्त स्थानको अवलोकन करने के लिये कष्ट उठावेंगे।

हम ऊपर बता चुके है कि प्रशस्ति के ८ से ६१ पर्यन्त में त्रिलोचनकी वशावली और वशावली गत पुरुषोंका कुछ ऐतिहासिक विवरण अलकार के आवरण से ढक दिया गया है। इन श्लोकों के पर्यालोचन से वशावली में बारपराज, गोरगिराज, कीर्तिराज वत्सराज और त्रिलोचनपाल आदि पाच नाम पाये जाते है। परन्तु त्रिलोचनपालके दान और लाट देश प्राप्त करनेवाले बारपराज के पौत्र कीर्तिराजके शक ६४२ के शासन में वशावली का प्रारभ बारप क पिता निम्बारकसे किया गया है। अत दोनों शासन पत्रोंके तारतम्य से निम्न वशावली त्रिलोचनपाल पर्यन्त होती है।

निम्बारक
|
बारपराज
|
गोरगिराज
|
कीर्तिराज
|
वत्सराज
|
त्रिलोचनपाल

वंशावली का विशुद्ध स्वरूप करने पश्चात हम प्रशस्ति कथित विवरण के विवेचन में प्रवृत्त होते हैं प्रशस्ति के श्लोक ८ और ९ से प्रकट होता है कि वारपराजने अपनी नीति निपुणता तथा सुप्रबंध से लाट देश प्राप्त किया और वहां जाकर शत्रुओंका नाश कर प्रजाका मनोरंजन करता हुआ कोपकी वृद्धि किया। इससे स्पष्ट है कि वारपराज ने लाट देश अपने भुजबल प्रतापसे नही प्राप्त किया था और न वह अपनी इच्छासे लाट देशमें आया था वरन वह किसीके आधीन और किसी देश विशेष का शासक था। उसके स्वामी ने उसके सुप्रबंध आदि से प्रसन्न हो उसे लाट देश का शासन भार दिया। जहां जाकर वारपने अपने स्वामी के शत्रुओं का नाश किया और सुन्दर शासन द्वारा लाट देशकी प्रजाको प्रसन्न करता हुआ राज्य कोपकी वृद्धि संपादन किया। अतः विचारना है कि वारपका स्वामी कौन था जिसने उसको लाट देशका सामन्त शासक बनाया और वारप ने अपने स्वामी के किस शत्रुका नाश किया।

कीर्तिराज के कथित शासन पत्र शक ९४२ वाले के विवेचन में वारपदेव के स्वामी और सामन्त बनाने वालेका नामादि प्रकट कर चुके हैं एवं यह भी बता चुके हैं कि लाट देशका शत्रु कौन था अत' यहां पर उसका पुनः विचार करना अनावश्यक मान आगे बढ़ते है। और सर्व प्रथम प्रशस्ति कारकी चातुकता संबंध में कुछ विचार करते हैं। प्रशस्तिकारने वारप राज को लाट देशका राज्य देनेवालेका नाम छिपाना जिस प्रकार उचित प्रतीत हुआ उसी प्रकार वारप को परास्त करनेवालेका भूल जाना युक्ति संगत प्रतीत हुआ। परन्तु प्रशस्तिकार हमारी समझमें अपने इन दोनों प्रयत्नों में विफलमनोरथ हुआ है। क्योंकि उसने वारपराजको अपनी निपुणता तथा सुप्रबंध के कारण लाट देश प्राप्त करना लिखा है। यदि वह ऐसा न लिख कर स्पष्टतया लिख देता कि वारपने अपने भुजबलसे लाटदेश प्राप्त किया तो वह अपने प्रयत्न में सफल होता। उसी प्रकार प्रशस्तिकार वारपराजके पुत्र और उत्तराधिकारी का वर्णन करते समय अपने छिपाए हुए भावका भण्डा फोर करता है। प्रशस्तिकार लिखता है कि "गोरगिराज स्ववंशका भवन हुआ। इसने भगवान वाराह रूप विष्णु के समान शत्रु रूप समुद्र जलसे प्लावित लाटदेशका उद्धार किया"। इससे स्पष्ट है कि गोरगिराज के राज्यारोहण समय के पूर्वही लाटके कुछ अंश पर शत्रुओ ने अधिकार कर लिया था। जिसको इसने अपने भुजबलसे उद्धार किया। पाटण के चौलुक्यों के इतिहास से हमें विदित है कि वारप को लाट देश प्राप्त करनेके पश्चात अपने जीवन पर्यन्त मूलराज और उसके पुत्र चामुण्डराज से लड़ना पड़ा था। और अन्तमें वारप चामुण्डके हाथ से मारा गया था। एवं उसके मरने के पश्चात लाट देशके कुछ भाग पर पाटणवालोंका अधिकार हो गया था। जिसका उद्धार गोरगिराज ने किया।

अन्ततोगत्वा प्रशस्तिकारने वाराहकी उपमाद्वारा अवान्तर रूपसे वारपके स्वामी वातापिके चौलुक्य राज तैलपदेव द्वितीयका संकेत कर दिया है। जिसको छिपानेका प्रयत्न

प्रथम किया था क्यों कि वाराह लाञ्छन वातापिका था। पुनश्च इससे यह भी प्रकट होता है कि गोरगिराज वारपके मारे जाने के समय लाट देशमें उपस्थित नहीं था। परन्तु उसकी मृत्युका संवाद पाकर वातापिकी वाराह ध्वजकी छत्रछाया में सेना लेकर युद्धमें प्रवृत्त हो लाट देशकी अपहृत भूमि का उद्धार किया था। गोरगिराजसे संबंध रखनेवाले प्रशस्तिके कथनका पूर्ण रूपेण विवेचन हो चुका। अतः गोरगिराज के पुत्र और उत्तराधिकारी कीर्तिराजसे संबंध रखनेवाले कथनका विचार कर तो असंगत न होगा। परन्तु ऐसा न कर गोरगिराजसे संबंध रखनेवाली अन्यान्य बातोंका विचार करते हैं। चान्देदमें द्वारावतिसे आकर शक संवत ७७२ में यादवों ने एक छोटेराज्यकी स्थापना की थी। इस वंशके सेवुनचंद्र द्वितीयका शासन पत्र शक ९९१ का हमें प्राप्त है। उक्त शासन पत्रके पर्यालोचनमें प्रकट होता है कि सेवुनचंद्र द्वितीयके पूर्वज तेसुकने गोरगिराजकी कन्या नयीयालासे विवाह किया था। हमारी समझमें यह विवाह राजनैतिक दृष्टिसे हुआ था। क्यों कि इस विवाह द्वारा गोरगिराज तथा उसके वंशजों को अपना बल बढानेका अवसर प्राप्त हुआ। क्योंकि आगे चलकर देखनेमें आता है कि गोरगिराजका मैहित्र भिल्लम वातापि पति चौलुक्यराज आहवमल से लडा था। किन्तु बडे शोककी बात है कि प्रशस्ति कारने कल्पनिक उपमाओं के अभिगुण्ठन करनेमें तो कविताओंकी भरमार किया है परन्तु इस महत्व पूर्ण घटना। वर्णन अनावश्यकमान छोड दिया है।

आगे चलकर प्रशस्ति गोरगिराजके पुत्र और उत्तराधिकारी कीर्तिराजके संबंधमें चाटुकताका अंत कर देती है। प्रशस्ति इसे रूपमें कामदेव—चौलुक्यवंशी राजारूप मालाम सुमेरु मणि—जितेन्द्रिय—परधार्मिक—वेदज्ञ—उदार—वीरशिरोमणि—विजेता और अपनी उज्वल कीर्ति से सूर्य समान दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला बताती है। परन्तु कीर्तिराजके सबसे उत्तम महत्व को उपेक्षा कर जाती है। हमारे पाठकों को मालूम है, कि कीर्तिराज नन्दिपुरके चौलुक्यों में प्रथम था जिसने वातापिके आधीनता जूएको फेंककर राजपदको धारण किया था। और उसके इस कार्य में उसका फुफेराभाई चान्देदका यादव राजा भिल्लम सहायक हुआ था।

पुनश्च प्रशस्ति कीर्तिराजका शत्रुओं पर विजय पाना वर्णन करती है परन्तु उक्त शत्रु कौन था इत्यादि के संबंध में मौनालंबन करती है। क्या प्रशस्ति अपने इस संकेत द्वारा वातापिवालों का उल्लेख नहीं करती है। संभव है कि वातापि वालोंसे हो क्यों कि जब कीर्तिराजने उनकी आधीनताका परित्याग कर स्वतंत्रताकी घोषणा किया होगा तो वे अवश्य उसे स्वाधीन करने के लिये प्रयत्नशील हुए होंगे। परन्तु वातापिका इतिहास इस संबंधमें चुप है। किन्तु मालवा धार के पमारों के इतिहास से हम ज्ञात है कि उन्होंने विक्रमके विग्रह के पश्चात वातापि वाले जयसिंह का रणक्षेत्रमें वध कर विजय पाया था। जिसके प्रतिकारके लिये आहवमलने मालवा पर आक्रमण किया था।

हमारी समझमें वातापि वालों के मालवावालों से पराभव समय उनकी निर्वलताका लाभ उठा कर अपने निकट संबंधियों चांदोद्के यादवों और स्थानकके शिल्हरोंकी सहायता से कीर्तिराज स्वतंत्र वन गया। अतः हम प्रशस्ति कथित उक्त संकेतको वातापिवालोंका द्योतक नही मान सकते।

प्रशस्ति सांकेतिक शत्रु जब वातापिवाले नही हैं तो वैसी दशामें कथित शत्रु कौन हो सकता है! पाटण के चौलुक्योंके इतिहाससे प्रकट होता है कि पाटणपति चौलुक्यराज दुर्लभराजने लाट देशपर विजय पाया था। दुर्लभराज के इस लाट देशके विजयका उल्लेख कुमारपाल भूपाल चरित्र में है और उससे प्रकट होता है कि दुर्लभराजने लाट नाथको मार कर उसके राज्य चिन्हको धारण किया था। इसका समर्थन कुमारपालके वड़नगरकी प्रशस्तिके वाक्यः—

"यस्य क्रोध पराङ्मुखस्य किमपि भ्रूवल्लरी भंगुरा।
सद्यो दर्शयतिस्मलाट वसुधा भंग स्वरूपं फलं॥"

से समर्थन होता है। अतः हम कह सकते है कि संभवतः इस युधका प्रशस्तिमें संकेत किया गया हो, किन्तु हम ऐसाभी नही मान सकते, क्योंकि संकेतमें कीर्तिराजका विजयी होना प्रकट किया गया है। यदि इसका संकेत प्रशस्तिकार करता तो अपने स्वभाव वशात वह लाट देशपर आपत्तिका आना वर्णन करता। ऐसी दशामें हम कह सकते हैं कि उक्त संकेत वातापीवालों पर विजय पानेका संकेत करता है। और प्रशस्तिकारने कीर्तिराज के पराभवको—जिसमें उसको अपने दादा वारपराज के समान—प्राण गमाने पड़े थे—को पूर्ण रूपेण उदरस्थ कर लिया है।

कीर्तिराजके उत्तराधिकारी और वत्सराज के संबंधमें प्रशस्तिकार केवल इतनाही लिखता है कि उसने सोमनाथ महादेवके मन्दिरमें रत्नजड़ित सुवर्ण छत्र चढ़ाया था। और अनाथों के लिये अन्नसत्र वनवाया था। इसके अतिरिक्त उसके संबंधमें प्रशस्तिसे कुछभी प्रकट नही होता। पुनश्च यहभी नही प्रगट होता कि सोमनाथ मन्दिर सौराष्ट्रका मन्दिर है अथवा कोई अन्य मन्दिर। और यदि उक्त मन्दिर सौराष्ट्रका मन्दिर सोमनाथ है तो क्या वत्सराज वहां स्वयं गया अथवा किसीके द्वारा उक्त रत्नजडित सुवर्ण छत्रको भिजवा दिया था। अथवा नर्मदा समुद्र संगम के समीपवर्ती अम्मलेठा ग्रामवाला सोमनाथ मन्दिर है। हमारी समझमें सौराष्ट्रका सोमनाथ मन्दिर न होकर नर्मदा समुद्र के निकटवर्ती अंम्मलेठा ग्रामकाही सोमनाथ मन्दिर है क्यों कि यह स्थान पवित्र माना जाता था और नंदिपुरके चौलुक्यों के राज्यमें था भी।

अन्ततोगत्वा प्रशस्ति वत्सराज के पुत्र और उत्तराधिकारी शासन कर्ता त्रिलोचनपालका वर्णन करती है और उसे धर्मराज युधिष्ठिरके समान सत्यवादी और भगवान कृष्णके समान शौर्यशाली और विजयी वताती है। एवं उसे अनेक प्रकारके दानादिका करनेवाला प्रकट करती है। प्रशस्तिसे प्रगट होता है कि त्रिलोचनपालने अगस्ततीर्थ

में समुद्र स्नान करके कथित एरथाण ग्राम दान दिया था। प्रदत्त ग्राम एरथान के अष्ट सीमावर्ती ग्रामोंका नाम नागम्बा, ततिका, वटपद्रक, लिङ्गवट शिव, इन्द्रोत्थान बहुणाम्श्रा, टेम्बरक, तलपद्रक और वरण ग्राम है। प्रदत्त ग्रामके विषय का नाम धीलिश्वर है अब विचारना है अगस्त तीर्थ और धीलिश्वर विषयका प्रदत्त ग्राम एरथाण तथा उसके सीमावर्ती कथित आठ ग्रामों का सप्रति अस्तित्व पाया जाता है या नहीं। मि० ध्रुव इन्डीयन एन्टिक्वेरी वोल्युम १२ पृष्ठ २०१-३ में इसके परिचय सम्बमें लिखते हैं।

"ERTHAN", the village granted is situated in the Olpad Taluka of the Surat District Five Kosh from Erthan is the place called Karanj Pardi Near Karanj Pardi there is a Hillock called Mahellaruno Tekro, and a tradition there goes that it was a place of resort of the Padshahs of old in the Padshahi Time It contained once a Palacial Building which was a place of Takhat, meaning thereby the Metropolish of the country At about a Kosh and a half from Karanj Pardi is Bhagwa Dandi And they are separated by a creek running in land Nagamba is Nagda, Vadantha is lying to the South East of Erthan Lingvat is Lingoda or Nagda in the South of Erthan or it may be Lingtharja in the Chorasi Taluka, belonging to the Sachin State Shiv is Shiv still Can Indothan be modern Earthan? Timbaruk is Taloda or Talda to the south of Erthan The other places cannot be identified"

"प्रदत्त ग्राम एरथाण सुरत जिला के ओलपाड तालुका में है। एरथाणसे पाच कोषकी दूरी पर करजपारडी है। करजपारडी के समीप महेलारना टेकरा नामक एक टीला है। स्थानिक परंपरा प्रगट करती है कि बादशाही जमाने में उक्त टेकरा बादशाहों का आरामस्थान था। वहा पर राजकी राजधानी थी। आजमी पुरातन भवनोंका अवशेष वहा पाया जाता है। करजसे देढ कोषकी दूरी पर भगवा दाडी नामक दो ग्राम है। जिनको एक समुद्रकी छोर (क्रेक) विभाजित करती है। नागम्बा वर्तमान नागडा-नारथा है। यह ग्राम एरथान के दक्षिणम अव स्थित है। परंतु सप्रति ऊजड है। वटपद्रक वर्तमान वडोदा है। जो एरथाण के दक्षिण पूर्व में अवस्थित है। लिंगोष्ण सभवत एरथाण से दक्षिण अवस्थित लिंगोना या नगदा है। यह भी सभव है कि प्रशस्ति कथित लिंगवट चौरासी तालुकाके अंतर्गत सचीन राज्यके आधीन लिंगथराजा नामक ग्राम हो शिव वर्तमान शिवा है। क्या प्रशस्ति का इन्द्रोत्थान आधुनिक एरथाण हो सकता है। टेम्बरक एरथाण से दक्षिणवाला तलोदा है। इसके अतिरिक्त प्रशस्ति कथित अन्य ग्रामोंका कुछ भी परिचय नहीं मिलता।

ध्रुव महोदय के इस कथनसे एरथाण ग्राम सूरत जिला के ओलपाड तालुका अन्तर्गत वर्तमान एरथाण सिद्ध होता है। परंतु इनके कथनमें कितनी बातें ऐसी है कि इनके कथनको

मानेकी प्रवृत्ति हमारी नहीं होती। सबसे बड़ी बात तो यह है कि एरथाणकी अष्ट सीमाओं वर्ती ग्रामों का अवस्थान का इनके कथनसे विरोध पड़ता है। क्योंकि इनके कथनानुसार एरथाण की चारों नाक वाले ग्रामों में से अधिकतर दक्षिणमें पाये जाते हैं। इनके कथनानुसार एरथाण के चतुर्दिक वाले ग्रामोंका सीमाचक्र निम्न प्रकारसे है।

चक्र १
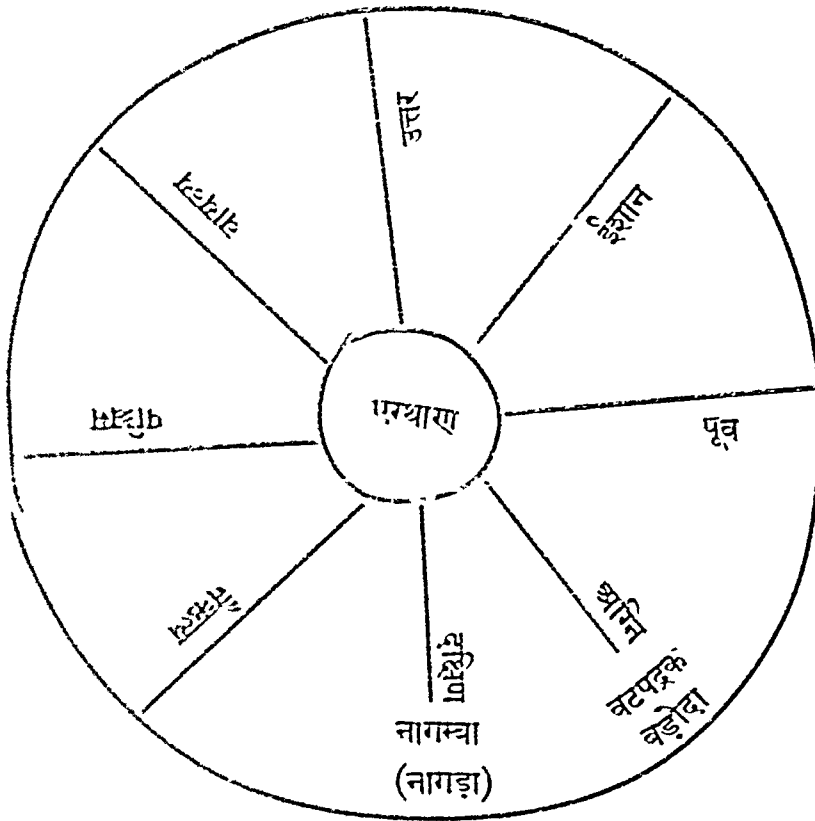
लिंगवट

( लिंगोदा या नगदा )

शिवा

( शिव )

टेम्बरुक

( नन्दोदा )

परन्तु प्रशस्ति अष्ट सीमावर्ती ग्रामोंका अवस्थान निम्न प्रकारसे बताती है। प्रशस्ति के कथित सीमाचक्र निम्न प्रकारसे है।

चक्र २
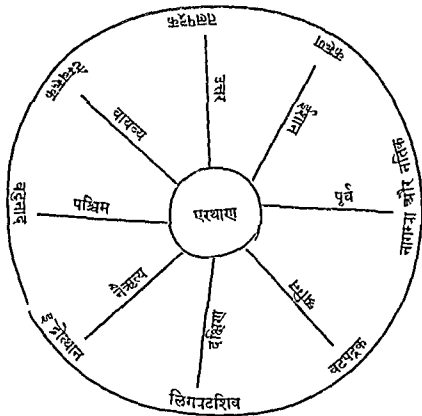
दोनों सीमाचक्रोंपर दृष्टिपात करतेही ध्रुव महोदय के कथनकी अनर्गलता अपने आप प्रकट हो जाती है। अत इसके सबंध म कुछभी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। ध्रुव महोदय लिंगवटको सचीन राज्यका लिंगथरजा बताते है। अब यदि हम लिंगवटको लिंगथरजा मानें तो यह मानना पडेगा कि प्रशस्ति कारने एरथाणकी चतु सीमाका वर्णन करते समय उसकी सीमा पर ७०-७५ मील की दूरी पर होने वाले ग्रामोंको बताया है। ऐसा विचार करना भी हास्यास्पद है। परन्तु ध्रुव महोदयने क्यों ऐसा लिख दिया है यह हमारी समझ में नहीं आता। परन्तु उनके लेखके पर्यालोचनसे हमारी यह धारणा होती है कि उन्होंने लेख लिखते समय मानचित्रका विवेचन नहीं किया था। वरना वह कदापि ऐसा न लिखते। हमारी समझमें उनके लेखकी पूर्ण रूपसे अनर्गलता प्रकट करने के लिये वर्तमान एरथाण की सीमा पर होने वाले ग्रामोंका सीमाचक्र देना असगत न होगा। वर्तमान एरथाण का सीमाचक्र निम्न प्रकार से है।

चक्र ३.
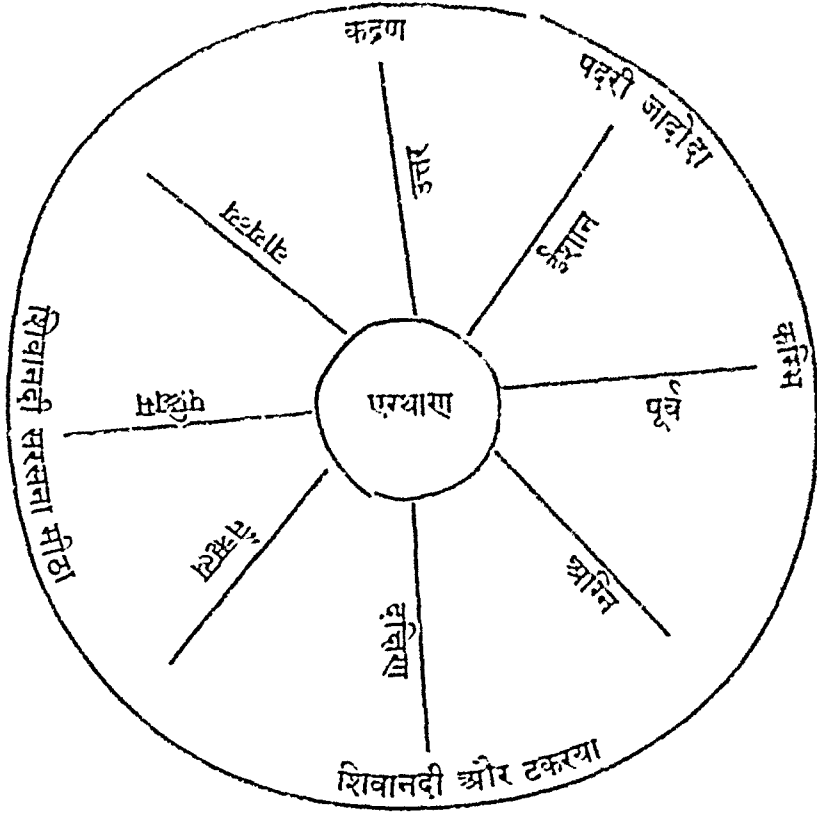
आशा है वर्तमान सीमाचक्र और ध्रुव महोदय कथित सीमाचक्रकी तुलना से हमारे पाठकों को हमारी वातोंमें कुछभी शका करनेको अवकाश न मिलेगा।

एवं हम देखते हैं कि ध्रुव महोदय ने संभवतः प्रशस्ति के ऊपर पूर्ण विचार भी नहीं किया है। क्योंकि वे एरथाण के दक्षिणमें शिवा नदीका होना प्रकट करते हैं। उनके इस कथनका वर्त मान एरथाणकी दक्षिण सीमा में अवस्थित शिवा नदीसे तारतम्यभी मिल जाता है। परन्तु चाहे उनकेकथनका वर्तमान एरथाण की दक्षिण सीमा पर अवस्थित शिवा नदी से तारतम्यभी मिल जाय तो भी उनके कथनको स्वीकार नही कर सकते। क्योंकि प्रशस्ति में शिवा नदी का उल्लेख नही। संभवत. ध्रुव महोदय ने प्रशस्ति के वाक्य "यास्यां लिङ्गवट. शिवः" के शिव शब्दों को शिवा नदी मान लिया है। किन्तु यह उनकी भारी भूल है। क्योंकि यहांपर "लिङ्गवटः शिवः" वाक्य में शिवा नदी नही परन्तु शिवः पद है। इससे स्पष्ट है कि प्रशस्तिकार लिङ्गवट नामक शिवका उल्लेख करता है। पुनश्च उसे यदि शिवा नदी का संकेत करना होता तो "शिवः" न लिख "शिवा" लिखता।

भट्ट महोदय द्वारा निश्चित अवस्थान को अस्वीकृत करने पश्चात प्रश्न उपस्थित होता है कि एरथाण तथा उसके सीमावर्ती ग्रामो का सम्प्रति अस्तित्व क्या नहीं है। इस प्रश्नका उत्तर देने के पूर्व हमें मानचित्रका पर्यालोचन करना होगा। टौपोग्राफिक्ल मैप्स शीट ना ३७ पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि वडोदा राज्य के नवसारी मण्डल तालुका पलशाणा के अन्तर्गत एरथाण नामक एक ग्राम है। उक्त ग्राम बी बी सी आइ रेलवे के टी वी सेक्शन के चलथाण नामक स्टेशन से लगभग चारमील की दूरी पर है। कथित एरथाण के चतुस्सीमावर्ती ग्राम का सीमा चक्र निम्न प्रकार से है।

चक्र ४
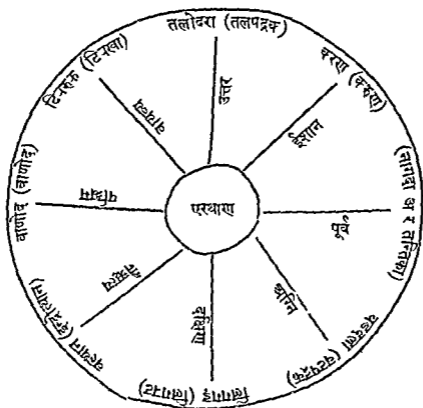
उद्धृत चक्र पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि प्रशस्ति कथित एरथाणकी सीमाका वर्तमान एरथाणकी सीमासे अधिकांशमे तारतम्य मिलता है। उत्तरभागी तलपद्रक का तलोदरा, वायव्यभागी टिम्बरक का टिम्बरवा, पश्चिमभागी वहणादध्या का वोणाद, नैऋत्यभागी इन्द्रोल्थान का चलथाण, दक्षिण भागी लिङ्गवट का लिङ्गवड, ईशानभागी

करुण का करण रूप परिवर्तित हुआ है। इस रूप परिवर्तनकी क्रिया में किसि प्रकारकी आशंका का समावेश नहीं हो सकता। हां पूर्व और आग्नेय दिशावर्ती ग्रामों के वर्तमान परिचय संबंध में हम सशंक हैं। तथापि 'आठ सीमावर्ती ग्रामों में से छै का निश्चय ज्ञान होने पश्चात हम निःशंक हो कर कह सकते हैं कि प्रशस्ति कथित एरथाण ध्रुव महोदय कथित ओलपाड तालुकावाला एरथाण न होकर वड़ोदा राज्य के नवसारी प्रान्त के तालुका पलशाणा का एरथाण ग्राम है।

हमारी समझमें प्रशस्ति कथित सब वातों का विवेचन हो चुका। अतः यदि हम इतने ही से अलं करें तो असंगत न होगा तथापि ध्रुव महोदय के पूर्व अवतरित कथन में एक वात ऐसी है जिसके संवध में कुछ कहे विना विवेचन को समाप्त करने का साहस हम नही कर सकते। ध्रुव महोदय ने अपने कथनमें महलेरुना टेकरा का उल्लेख कर अपनी पूर्व कथित संभावनाका समर्थन करनेका प्रयास किया है। और उद्धृत अवतरण के पूर्व शासन कर्ता के वंशकी राज्यधानी संबंधमें लिखते हे।

"Trilochanpal bathes in the western Sea at the Port of Agast Tirth and makes the grant from which I conclude that it or some place near it was most Probably the Capital of the Monarch."

"त्रिलोचन पश्चिम समुद्र तटवर्ती अगस्ततीर्थ में स्नान कर दान देता है। इससे हम परिणाम पर पहुँचते हैं कि कदाचित अगस्त तीर्थ अथवा उसके समीपवर्ती कोई ग्राममे इस राजा की राज्यधानी थी।"

अव यदि ध्रुव महोदय के कथनको, महेल्लेरुना टेकरा वाले कथनके साथ मिलाकर पढ़ें तो उनके आन्तरिक भावका परिचय अनायासही मिल जाता है। अन्यथा महेल्लेरुना टेकरा का उल्लेख कथित विवरण में अप्रासंगिक तथा 'सिन्दूर विन्दु विधवा ललाटे' विधवा के ललाटमें सिन्दूर की टीका के समान असंगत प्रतीत होता है। हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि त्रिलोचनपालके पूर्वजोंके इतिहासको ध्रुव महोदयने पूर्ण रूपेण पटतर किया है। अन्यथा वे इनकी राज्यधानीको भगवा दांडी या उसके समीपवर्ती महेल्लुरुना टेकरा में निर्धारित करनेका दुःसाहस न करते। हां हम यह अस्वीकार नही कर सकते कि इनकी राज्यधानीके संवधमें विद्वानोमें घोर मतभेद नही है। परन्तु उक्त मतभेद कुछभी महत्व नही रखता क्यों कि राज्यधानीका नाम नन्दिपुर सर्वमान्य है। यदि मतभेद है तो वह यह है कि नन्दिपुर भरुच नगरका उपनगर अथवा राजपीपला स्टेटका नादोद है। परन्तु हमारी प्रवृती भरुच के उपनगरको नंदिपुर माननेके स्थानमें राजापीपलाके नादोदके नंदिपुर मानने के प्रति अधिक झुकती है।

# लाटपति चौलुक्यराज त्रिविक्रमपाल

## का

## शासन पत्र

१ ॥ ॐ स्वति जयोऽभ्युदयश्च ॥ भगवते चन्द्र चूड गंगा धर शिति कण्ठ भुजङ्गमाली व्याघ्राम्बर धारी त्रिशूल पाणये नम ॥ स्वति सवत्सर शतेषु नवसु नवति नवाधिकेषु शक कालातीतेषु श्रावण सिते षष्ठ्या यथा तिथि पक्ष मास सवत्सरेषु समस्त राजावली समलङ्कृत मर्यादा नान्दिपुरे श्री मन्निम्नार्क कुल कमल दिवाकर देव सेनानी समतोपलब्धानिपाति श्री वारपदेव स्तत्पदानुध्यात सारस्वातीय पाटन महोदधि मन्थन मन्दर मेरु कर कृपाण बलाप्त वसुधाधिपत्य श्रीमन्महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री गोर्गिराज देव स्तत्पादानुध्यात श्रीमन्महा-राजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक कीर्तिचन्द्रदेव स्तत्पादानुध्यात् श्रीमन्महाराज परमेश्वर परम भट्टारक वत्सराजदेव स्तत्पादानुध्यात श्रीमन्महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक त्रिभुवनपाल देवात्मज. कर्ण कुमुदाङ्कुर तुषारोऽपि चौलुक्याब्धि विवर्धनेन्दु श्रीमन्महा-राजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक त्रिविक्रमपालदेव. समस्त राज पुरुषा न्ब्राह्मणेतरा न्जनपदाश्च प्रतिबोधयत्यस्तु सुविदितमयः नूतन जलद पट सम पाटाम्बराच्छादिते वसुधरे स्वपितृव्य श्रीमन्महाराज जगत्पाल भुजाघात सचारित वायु विताडित शत्रु मेघान्धकार विनिर्मुक्ते नागसारिका मण्डले स्वभुज बलार्णवे वाट पद्रक विषये वैश्वामित्री तटे दानवानी निमज्जिते ब्राह्मणेभ्य स्वास्तिक मंत्रोच्चारेण समाहते पुरजनै र्पातिरेक मर्यादा विस्मृत सावृते वल्लभीस्थिता पुरवधू प्रोक्षित पुष्पधारा निमज्जिते परिपूर्ण जल पल्लवाच्छादिते कनक कुम्भ सिर स्थापितो दाहार्या व्रत षोडश रव मगल गान शब्दाश्च पूर्ण कर्णकुटरे भेरी शख मृदग ताल झल्लर स्वपूर्ण दिगन्तले चैताह्शो परिवृते जनन्या लालिते रेवाया

स्नात्वा भूदेवान्विविध दानेन संतुष्य पितृण्य वारितेऽपिपैतृव्य श्रीमन्महाराज पद्म देवं नागसारिका मण्डलपाति पञ्चशत ग्राम विषयाष्टग्रामे सामन्त्याधिपत्ये संस्थापितश्चेति । ब्रह्मावर्तान्तर्गत पाञ्चाल जन पदस्य काम्पिल्य नगर विनिर्गतवेद वेदान्त सकल सच्छास्त्र निष्णात सम दम उपरति तितिक्षादि साधन चतुष्टय संपन्न जप तप स्वाध्यायाग्निहोत्र निरत गौतम सगोत्र पंच प्रवराध्वर्यु कारवशाखाध्यायी ब्रह्मदेव शर्मणा प्रचोदितः । जगत्गुरु भवानि पतिं समभ्यचर्य संसारस्या सारतां मनुवीक्ष्येति जगतो विनिश्वर स्वरूप साकल्य शुक्लतीर्थे स्थापितामहेन संस्थापित सत्रे स्थापिता निर्मिता पाठशालायाः पंचशत विद्यार्थीणां भोजनादि निर्वाहार्थं नान्दिपुर विषयान्तर्गत हरिपुर ग्रामोऽयं स्वसीमा तृणगोचर यूति पर्यन्तं सहिरण्य भाग भोग सपारिकर सर्वादायः समेन श्चास्माभिः प्रदत्तः । सामान्यं चेतत् पुण्य फलं ज्ञात्वाऽस्मद्वंशजै रन्यै रपि भाविभोक्तृभि स्समत्प्रदत्त धर्मदायोऽय मनु मन्तव्यः पालितव्य श्च । उक्तं च ।

बहुभि र्वसुधा भुक्ता राजभि स्सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमि स्तस्य तस्य तदा फलं ॥

षष्टि वर्ष सहस्त्राणिस्वर्गे मोदाति भूमिदः ।
आच्छेता चानुमंता च तान्येव नरके वसेत ।

दूतकोऽत्र महादण्डाधिपति भीमराजः । लिखित मिदं भूदेवेन सुवर्णकार विजय सुत अलटेनोत्कीर्णम् । इति स्वहस्तोयं श्री त्रिविक्रमपालस्य ।

———

# लाटपति चौलुक्यराज त्रिविक्रमपाल

## के

## शासन पत्रका

## छायानुवाद ।

कल्याण हो । जय और अभ्युदय हो ॥ भगवान जिनके ललाटपर चन्द्र विराजमान, जिनने गंगाको अपनी जटाओंमें अटका रखा-जिनका कण्ठ नीला- जिनके गलेमें नाग माला और कटिमें व्याघ्राम्बर तथा हाथमें त्रिशूल है-को नमस्कार है। शक वर्ष ६६६ के श्रावण शुक्ल षष्ठीको समस्त राजा वलीसे अलंकृत नन्दिपुर में-श्रीमाभिम्यार्क कुलरूप कमलको विकसित करनेवाला दिवाकर-देवसेनानी स्कंध के समान सेनापति श्री बारपदेव। और श्री बारपदेवका पादानुध्यात सारस्वतीय पाटण महोदधिका मन्थन करनेवाला मेरू और अपनी तलवारकी धारसे वसुधाका आधिपत्य प्राप्त करनेवाला भीम महाराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री गोरगिराज-और श्री गोरगिराजका पादानुध्यात श्री कीर्तिराज और श्री कीर्तिराजका पादानुध्यात श्री वत्सराज-और श्री वत्सराजका पादानुध्यात श्री त्रिभुवनपाल-और श्री त्रिभुवनपालका पादानुध्यात कर्णरूप कुमुद अर्थात कमलके अंकुर का नाशक तुषार तथा चौलुक्य वंश अब्धि को आनंद देने वाला चन्द्रमा श्री त्रिविक्रमपाल-आज समस्त राजपुरुषों-ब्राह्मणों तथा इतर प्रजाजनको आदेश करता है कि-नवीन बादल रूप अम्बर से आच्छादित वसुधरा के होने पर अपने चाचा श्रीमान्महाराजाधिराज जगत्पाल के भुजाघात से सचालित प्रचण्ड वायु से विताडित शत्रु रूप अन्धकारके नाश द्वारा नागसारिका मण्डलके बंधन मुक्त होने और वठपद्रक विषयके विश्वामित्री नदी तटपर अपने भुजबल रूप महार्णव में शत्रुरूप दानव सेनाके हनने पश्चात ब्राह्मणोंके स्वस्ति याचक मन्त्रोच्चार ध्वनिसे समावृत, आनन्द विभोर मर्यादा त्यागने वाली प्रजासे घिरा हुआ-नगरकी अटारिकाओंकी झरोखामें अवस्थित कुलवधुओंके फेंके हुए पुष्पोंकी धारा में निमज्जित-शिरपर जल परिपूर्ण सुवर्ण कलस लिये सैकड़ों पानी भरनेवाली स्त्रिओं के मधुरगान से परिपूर्ण भवन रंध्र और भेरी शंख मृदंग ताल झांझ के गुञ्जार ध्वनि से परिपूर्ण दिगन्तर अवस्थामें अपनी माताके आदेशसे नर्मदामें स्नान के अनन्तर विविध प्रकारके दानोंसे ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर-अपने चचाके मना करने परभी-अपने चचेरे भाई श्रीमन्महाराजाधिराज पद्मदेवको नागसारिका मण्डलके पारसी ग्राम वाले अष्टग्राम नागर विषयका सामन्तराजा बनाया और।

ब्रह्मावर्त प्रदेशान्तर्गत पंचाल जनपदके काम्पिल्य नगरसे आनेवाले, वेदवेदान्तादि सकल शत शास्त्रोंमें प्रवीण, सम दम उपरति तितिक्षादि साधन चतुष्टय संपन्न, जप तप स्वाध्याय अग्निहोत्र निरत गौतम गोत्र संभूत पंच परवर काण्वशाखाध्यायि ब्रह्मदेव शर्माकी प्रेरणासे जगद्गुरू भवानीपति शंकरकी अभ्यर्चनाकर संसारकी असारता देख शुक्लतीर्थमें अपने पितामह द्वारा संस्थापित क्षेत्र के मध्य पिताद्वारा संचालित पाठशालामें अध्ययन करनेवाले ५० विद्यार्थिओं के भोजनादि निर्वाहके निमित्त नंदिपुर विषयके हरिपुर नामक ग्राम को सीमादि तथा सर्व प्रकारकी आयके साथ दान दिया। दानकी रक्षा का फल सामान रूपसे मान हमारे वंशजो तथा दूसरे होनेवाले भावी राजाओंको उचित है कि इसका पालन करे। कहा गया है।

सगरादि बहुतसे राजाओंने इस वसुधाका उपभोग किया है परन्तु वसुधा जिस सयय जिसके अधिकारमें रहती है उस समय उसकोही पूर्वदत्त भूदानका फल मिलता है।

भूमिदान देनेवाला साठ हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्गमें सुख भोग और अपहरण करने तथा अपहरणकी अनुमति देनेवाला उतनीही अवधि पर्यन्त नरकमें दुःख भोगता है।

इस शासन पत्र का दूतक महा दण्डाधिपति भीमराज, लेखक भूदेव और ताम्र पटों पर लिखने वाला सुवर्णकार बज्जल का बेटा अल्लट है। यह हस्ताक्षर श्री त्रिविक्रमपालका है। इति ॥

# लाटपति चौलुक्यराज श्री त्रिविक्रमपाल

के

## शासन पत्र।

का

## विवेचन.

प्रस्तुत लेख लाट नन्दिपुर के चौलुक्यराज त्रिविक्रमपाल कृत शुक्ल तीर्थ अन्तर्स्थित सत्रवर्ती पाठशालाके विद्यार्थीओं के भोजनादि निर्वाहार्थ दानका प्रमाण पत्र है।- यह शासन पत्र ताम्रे के दो पटों पर उत्कीर्ण है। पटों के। मध्य दो छीद्र है। उनमें कडीआ लगी है। कडीओ पर राजमुद्रा है। राजमुद्रा में राज्यचिन्ह रूप भगवान शंकरकी मूर्ति है। पटोंका आकार प्रकार १२×८ इंच है। लेखकी लिपी देवनागरी और भाषा संस्कृत है। लेख अद्यान्तस्थान पत्रके दो श्लोकोंको छोड पद्यमय है। इसकी तिथि श्रावण शुक्ल षष्टि ९९९ शक है। इसका दूतक महाक्ष्यटाधिपति भीमराज-लेखक भूदेव और उत्कीर्णकार अल्लट है। अन्तम शासन कर्ता त्रिविक्रमपालका हस्ताक्षर है।

लेखका आरंभ "ॐ स्वस्ति जयोभ्युन्यश्च" से किया गया है। पश्चात भगवान शंकरको नमस्कार और लेखकी तिथी शब्दो में है। अन्तम शासन कर्ता का निवास नन्दिपुरमें बताने पश्चात वंशावली दी गई है। और वंशावली निम्न प्रकार से है।

निम्बारक
|
बारपदेव
|
गोगिराज
|
कीर्तिचन्द्र
|
वत्सराज
|
त्रिभुवनपाल — जगत्पाल
|
त्रिविक्रमपाल — पद्मदेव
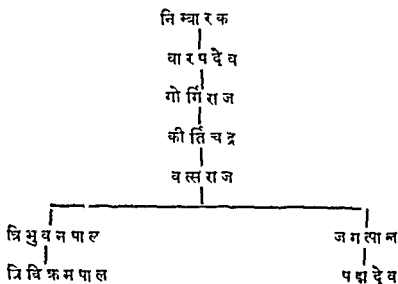
वंशावली पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि शक ६४२ और ६७२ वाले पूर्व उधृत वंशावली के नामों से इसके नामों में कुछ अन्तर पडता है। क्यों कि पूर्व वाले दो लेखों में लाट प्रदेश प्राप्त करनेवाले का नाम वारपराज और इसमें वारपदेव है। इसी प्रकार उनमें तीसरा नाम कीर्तिराज और पांचवा नाम त्रिलोचनापाल है। परन्तु इसमे कीर्तिचंद्र और त्रिभुनपाल है। इस अन्तर के संबंधमें हमारा निवेदन है कि जिस प्रकार पाटन के चौलुक्य ऐतिहासिकोंने लाटके वारपका नामोल्लेख द्वारप नमासे—वारप शब्दको संस्कृतका आवर्ण देकर—किया है उसी प्रकार प्रस्तुत शासनमें वारपको वारपदेव बताया गया है। एवं कीर्तिराज और कीर्तिचंद्र तथा त्रिलोचनपाल और त्रिभुवनपाल के संबंधमें हमारा निवेदन है कि इनका अन्तरभी नामान्तर जन्य है।

नन्दिपुर के चौलुक्यों के पूर्व उधृत दोनो लेखोंमें वारपराजके संबंध कुछभी स्पष्ट रूपसे नही लिखा गया है। परन्तु पाटणके इतिहाससे हमें ज्ञात है कि वारपका परिचय लाट देशके सेनापति नामसे दिया गया है। किन्तु प्रस्तुत शासन पत्र के, "श्रीमन्निम्बार्क कुल कमल दिवाकर देव सेनानी समतोपलब्ध अनीपति श्री वारपदेव" वाक्य में वारपको केवल सेनापति कहा गया है। इससे प्रकट होता हैं कि प्रस्तुत शासन पत्र के लेखकने निर्भय होकर ऐतिहासिक सत्यको प्रकट किया है। इतनाही नही आगे चल कर वारप के पुत्र गोर्गिराजका वणन करते समय लिखता है "सारस्वतीय पाटन महोदधि सन्थन मन्दर मेरु कर कृपाण वलाप्त वसुधाधिपत्यम्" कि वारप देवके पुत्र गोर्गिराजने सारस्वतीय पाटन रुप महोदधिको मन्थन करनेवाला मन्दराचल पर्वत था जिसने अपनी तलवारके बलसे वसुधाधिपत्य पदको प्राप्त किया था। हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि चौलुक्य चन्द्रिका पाटण खण्डमें उधृत मूलराजके लेखमे उसके राजका नामोल्लेख सारस्वत मण्डलके नामसे किया गया है। अतः इस लेखमें सारस्वतीय पदसे पाटणका ग्राहण है। अतः हम कह सकते हैं कि त्रिलोचनपालके लेखमें वारपकी मृत्यु पश्चात गोर्गिराजका दानवोंसे लाटदेशके उद्धारका उल्लेख करते समय कथित दानवोका नामोल्लेख नही किया गया है। जो शासन पत्र को त्रुठी पूर्ण तथा संदिग्ध बनाता है परन्तु उसकी पूर्ति प्रस्तुत शासन पत्र करता है।

इतना होते हुए भी प्रस्तुत शासन पत्र में कीतिराजके संबंध में कुछ भी नही लिखा गया है। परन्तु अन्यान्य ऐतिहासिक सुत्रसे हमें ज्ञात है कि उसकोभी संभवतः अपने दादाके समान पाटणके दुर्लभराजके हाथसे प्राण गवाना पडा था। पुनश्च कीर्तिराजके उत्तराधिकारीका नाम मात्र परिचय के अतिरिक्त कुछ भी नहीं लिया गया है तथापि प्रस्तुत शासन पत्रके वाक्य 'शुक्लतीर्थे स्वपितामहेन संस्थापित सत्रे" में उसकी कीर्तिको स्वीकार किया गया है।

अनन्तर शासन पत्र त्रिलोचनपाल के पुत्र और शासन कर्ताका व्रर्णन निम्न वाक्य "कर्ण कुमुदाङ्कुर तुषारोऽपि चौलुक्याब्धि विवर्धनेन्दु" में करता है और वताता है

कि वह कर्ण रूप कुमुद नामक कमलके मूलका नाश करने वाला तुषार और चौलुक्य वंश रूप समुद्रको आनन्द देनेवाला चन्द्र था। अब यदि इस वाक्यको शासन पत्र कथित अग्रभाग वर्ती वाक्य "नूतन जलद पट समपाटनाम्बरान्धान्ति वसुधरे स्वपितृव्य श्रीमन्महाराज जगपाल भुजाघात सचारित वायु विताडित शत्रुमेघान्धकार विनिर्मुक्त नागसारिका मण्डले स्वभुजबलार्णवे वाटपद्रक विषये वैश्वामित्री तटे दानवानी निमज्जिते" को एक साथ रखकर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि कथित "कर्ण कुमुदाङ्कुर तुषार' का वास्तविक तात्पर्य क्या है। इससे स्पष्ट है कि त्रिलोचनपाल के समय पाटन के चौलुक्यराज कर्णदेवने अपनी सत्ता का विस्तार कर दक्षिण में लाटदेशकी सीमा मही नदीका उल्लंघन कर वर्तमान बरोदा के पास बहने वाली विश्वामित्री नदीसे आगे बढकर अधिकार जमा लिया था। इतनाही नही सम्भवत स्तम्भतीर्थ "वर्तमान खम्बे" से समुद्र मार्गद्वारा नवसारी प्रान्तकोभी अपनी सत्ता के आधिन किया था। जहा से पाटण वालोंको प्रस्तुत शासन पत्र के अनुसार त्रिभुवनका भाई जगत्पाल-भतीजा पद्मदेव और पुत्र त्रिविक्रमपालने ठोकपीटकर निकाल बहार किया था।

पाटणके कर्णदेवका नागसारिका मण्डलपर अधिकार होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण शक संवत ९९६ का धमलाछासे प्राप्त शासन पत्र है। उक्त शासन पत्र द्वारा कर्णने धमलाछा ग्राम दान दिया है। अत हम कह सकते है कि कर्णदेवने कथित दान नागसारिका विजयके उपलक्षम दिया होगा। परन्तु पाटण वालोंका अधिकार नागसारिका मण्डलपर क्षणिक था। क्योंकि इस समय के बाद बहुत दिनो पर्यन्त उनके अधिकारका परिचय नहीं मिलता। और यह शासन पत्रों रही सही शकाको भी नष्ट करता है। क्योंकि दोनो शासन पत्राम केवल ३ वर्षका अन्तर है।

शासन पत्रके ऐतिहासिक कथनोंका विवेचन करने के पश्चात इसके अन्तर विवेचनमें हम प्रवृत्त होते है। शासनपत्र से प्रकट होता है कि शासनकर्ताके चचा जगत्पालने शत्रुओका मान मर्दन कर नागसारिका मण्डलका उद्धार किया था। और त्रिविक्रमपालने अपने कथित चचाके लडके पद्मदेवको नागसारिका मण्डलके अग्रग्राम नामक विषयका सामन्त बनाया था। अब विचारना है कि अग्रग्राम नामक नगर या सप्रति अस्तीत्व पाया जाता है या नहीं। टापोग्राफीकल मानचित्रपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि नवसारीसे लगभग ४-५ मीलकी दूरीपर दक्षिण सुरत जिला के जलालपुर ताउकामें "आठ" और इसी ताउकामें नवसारी स लगभग ७-८ मीलकी दूरीपर अग्रग्राम है। सभवत इन दोनो गावोंमेंसे कोइसी एक प्रशस्ति कथित अग्रग्राम हो सकता है। हमारी समझमें अग्रग्रामही प्रशस्तिका अग्रग्राम है। क्यो कि वहापर पुरातन अवशेष पाये जाते है।

अग्रग्राम विषयके अतिरिक्त शासन पत्रमे शुक्लतीर्थ, नन्दिपुर विषय और पदरा ग्राम हरिपुरका उल्लेख है। अब विचारना है कि इनका सप्रति अस्तित्व है या

नहीं। इनमें शुक्ल तीर्थ नर्मदा तटका प्रसिद्ध तीर्थस्थान है और आजभी शुक्लतीर्थके नामसे ही प्रख्यात है। इसका अवस्थान नर्मदाके दक्षिण तटपर भरूचसे लगभग १०-१२ मीलकी दूरीपर है। एवं अकलेश्वर राज्य पिपला लाइनके झघडीआ नामक स्टेशनसे ठीक उत्तरमे १-१॥ मीलकी दूरीपर नर्मदा वहती है। नर्मदाके वाम तटपर लिंवोद्रा नामक ग्राम है। अतः शुक्लतीर्थ और झघडीआके मध्य लिंवोद्रा और नर्मदाका व्यवधान हैं। नन्दिपुरका शासन पत्रमें दोवार उल्लेख है। प्रथमवार शासन कर्ताके निवासके रूपमे और द्वितीयवार नन्दिपुर विषयके रूपमे। नन्दिपुर स्थानमें शासनकर्ताके पूर्वजोंकी राज्यधानी थी। नन्दिपुरमें राज्यधानी होनेके संवंधमें हम पुर्वमें पूर्ण रूपेण विवेचन कर चुके है। नन्दिपुर ग्राम वर्तमान समय नांदोद नामसे प्रख्यात है और यह शुक्लतीर्थसे पूर्वदिशामें कुछ उत्तर हठा हुआ लगभग १७-१८ मीलकी दूरीपर हैं। नांदोदसे नर्मदा पुर्व दिशामें लगभग ६-७ मील और उत्तर दिशामें उतनीही दूरीपर वहती है। शुक्लतीर्थ झघडीआ और नांदोदके मध्यमे दोवती नदीसे पुर्व हरिपुर नामक ग्राम है। हरिपुर ग्राम नांदोद और झवडीयाआके मध्यवर्ती उमाला स्टेशनके निकट है। हरिपुर शुक्लतीर्थसे लगभग ७-८ मील पूर्व और नांदोदसे लगभग १०-११ मील पश्चिम है। हमारी समजमें हरिपुरका उल्लेख शासन पत्रमे नन्दिपुर विषयके अन्तर्गत किया गया है। वह संभवतः वर्तमान हरिपुरही पुरातन हरिपुर हैं क्योंकि विषयके अन्तर्गत १०-११ मीलकी दूरीपर होनेवाले गावोंका होना असंभव नही इस हेतु वर्तमान हरिपुरकेही पुरातन हरिपूर होनेकी संभवना है। पुनश्च पाठशालाके निमित्त दिया हुआ गाव पाठशालाके स्थानसे दूर देशमें नही हो सकता।

तीसरे स्थानका नाम काम्पिल्य है। काम्पिल्यके विषयमें शासन पत्रसे प्रकट होता है कि ब्रह्मावर्तके पांचाल जनपदका वह नगर था जहां के रहेने वाला ब्रह्मदेव ब्राह्मण था। जिसने शासन कर्ताको अपने उपदेश द्वारा कथित दान देनेके लिये अनुकुल वनाया था। ब्रह्मवर्त और पांचाल नाम पुराण प्रसिद्ध है। पांचाल नामसेभी पुराने ब्रह्मावर्त का ग्रहण होता है। ब्रह्मावर्त की भूरी भूरी प्रशंसा मनुस्मृतिमें पाई जाती है। प्रयाग से पश्चिम और दिल्हीसे पूर्व गंगा और यमुनाके मध्यवर्ती देशको ब्रह्मावर्त कहते है। इसी ब्रह्मावर्त के मध्य अलिगडसे पूर्व और कानपुरसे पश्चिम गंगा यमुनाके मध्यवर्ती स्थानको दक्षिण पांचाल कहते थे। दक्षिण पांचलकी राजधानीका नाम कम्पिल्य था। और गंगाके तटपर वसा था। आजभी फरूखावाद जिलामें कपिला नामक ग्राम है। जिसके चारो तरफ पुरातन नगरका अवशेष पाया जाता है। हमारी समजमें शासन पत्र का वाह्य और आभ्यान्तर विवेचन हो चुका। अतः अव इतनेही से अलम् करते है।

———

# अराकिरी-नागेश्वर मन्दिर (होन्काली)

## की

## *शिला प्रशस्ति*

श्री स्वस्ति सकल जगति सस्तुयमान चरित्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वशोद्भव श्रीमत् त्रयलोक्यमल्ल देवर राज्य प्रवर्धमान चन्द्रार्क तारा वरं सालुत्त इरे। स्वस्ति समधिगत पच महाशब्द पल्लवान्वय श्री पृथिवी वल्लभ पल्लवकुल तिलक अमोघ वाक्य काचीपुर—त्रयलोक्यमल्ल ननि नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंहदेवर कोगली अयनुरु—एलपत्तु का ग्रामं आलुत इरे। शक वर्ष ९६० नेमे सर्वजित सवत्सराय पुष्य शुद्ध पचमी बृहस्पति वार उत्तरायण संक्रान्ति यन्दु अरकेरेय अरोदेय केशीमय——भो——वज पण्डितारा काल कलचीधारा पूर्वक नागेश्वर देवरिगे देगुलद यन्दु काम ४/१-२ मतक्के तेङ्गनके —काम ४/१-२ अतु गलदे मत्त १ अरिम रोर वेदले मत्त—रा हृदनगं परे केरेगे तेन्कन कोडियार्ला नलदे मत्तर १ नेदले मत्तर ५ इ धर्म चन्द्रार्क नारावर सलवद

---

# अराकिरी प्रशस्ति

## का

# छायानुवाद।

कल्याणहो। जय के समस्त संसारमें संस्तुयमान चरित्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौ_क्य वंशोद्भव श्रीमन त्रयलोक मल्ल देव का राज्य वर्तमान था उस समय पंच महाशब्द अधिकार प्राप्त पल्लववंशी पल्लवकुल के तिलक पृथिवी वल्लभ पवित्र वाणी (सत्यसंध) त्रयलोक्यमल्ल नन्निनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंहदेव कोगली प्रान्त का महासामन्त था। उस समय सर्वजित संवत्सर शक ९६९ पौष्य मास शुक्ल पक्ष पंचमी तिथि शुक्रवार उत्तरायण संक्रान्ति के शुभ अवसर पर अराकिरी निवासी ओदियार केशीसाया ने पण्डितोंका पाद प्रक्षालन पूर्वक भगवान नागेश्वर देव के भोग राग नित नैमित्तिक पूजार्चन के निर्वाहार्थ अराकिरी ग्राममें निम्न प्रकारसे भूमिदान दिया।

| | |
|---|---|
| (१) देगुलद के लिये | मत्त १ |
| (२)………… | ,, ४ १/२ |
| (३) गलदे | ,, १ |
| (४) ओदिम हरि वेहले | …… |
| (५) कोदियाली | ,, १ |
| (६) वेहले | १ |

# अराकिरी प्रशस्ति
# का
# *विवेचन ।*

प्रस्तुत शिला लेख मयसूर राज्य के सिमोगा जिला के होन्नाली तालुका अन्तर्गत अराकिरी नामक ग्रामके नागेश्वर मन्दिर म लगा है। यह लेख अराकिरी ग्राम निवासी ओरदेया केशीमाया के दानकी प्रशस्ति है। प्रशस्ति कथित दान अराकिरी ग्रामस्थ नागेश्वर देवके भोग राग निर्वाहार्थ किसी पण्डितका पाद प्रक्षालन पूर्वक किया गया है। प्रशस्तिका कुछ अश टूट जाने से यह प्रकट नही होता कि कथित पण्डित, जिसका पाद प्रक्षालन पूर्वक दान दिया गया है, का नाम क्या था और उसका नागेश्वर देव के साथ क्या सबध था। परन्तु नागेश्वर देवके भोगरागार्थ प्रदत्त भूमिदान होने से उक्त पण्डित को हम नागेश्वर मदिरका पूजारी कह सकते है।

प्रशस्ति की तिथि शक सवत ९६९ और सर्वजित नामक सवत्सरकी पुष्प शुक्ल पचमी तथा दिन बृहस्पति वार है। प्रशस्ति लिखे जाते समय चौलुक्य कुल तिलक त्रैलोक्य मल्लका राज्य काल था और उस समय पच महा शब्द अधिकार प्राप्त पल्लवान्वय श्री प्रथिवी वल्लभ पल्लव कुल तिलक अमोघ वाक्य काचीपुर-त्रयलोकमल्ल ननिनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह कोगली पच शत तथा कतीपय अन्यान्य प्रदेशोंका सामन्त था।

प्रशस्ति में राजाका नाम त्रयलोक्यमल्ल दिया गया है। हमें अन्यान्य शिला लेखों तथा शासन पत्रा और एतिहासिक लेखोसे ज्ञात है। कि वातापि के चौलुक्य राज्य सिंहासन पर शक ९६२ से ९९० पर्यन्त आहवमल्लका अधिकार था। आहमल्लका विरुद्ध त्रैलोक्यमल्ल और नामान्तर सोमेश्वर था। अत प्रस्तुत लेख आहवमल्ल त्रयलोक्मल्लके राज्य कालिन है और उसके राज्य के सातवे वर्षका है। आहवमल्ल त्रयलोकमल्लको सोमेश्वर, विक्रमादित्य और जयसिंह नामक तीन पुत्र थे, इनमें तीसरे जयसिंहका नामान्तर सिंहन या सींगी और विरुद वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि त्रयलोक मल्ल था। अत प्रस्तुत प्रशस्ति कथित कोगली पच शत प्रभृतिका सामन्त पल्लव परमनादि जयसिंह आहवमल्ल त्रयलोकमल्ल का कनिष्ठ पुत्र है।

प्रशस्ति से प्रकट होता है कि आहवमल्ल ने जिस प्रकार अपने ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वरको वेणुवलाल प्रदेश और विक्रमादित्यको वनवासी प्रदेशकी जागीर दिया था उसी प्रकार जयसिंहको कोगली पच शत तथा अन्यान्य प्रदेशों का सामन्तराज बना शासनभार दे रखा था। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि आहवमल्लकी आयु राज्य पाते समय और प्रस्तुत प्रशस्ति लिखे जाते समय शक ९६९ मे उसके तीसरे पुत्र जयसिंहकी आयु क्या थी।

विल्हण कवि कृत "विक्रमांक देव चरित्र" के पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि आहवमल्ल को राज्य पाने पश्चात बहुत दिनों पर्यन्त कोई पुत्र नही हुआ था। परन्तु विल्हणके ही दुसरे स्थलके कथनसे प्रकट होता है कि आहवमल्ल के सोमेश्वर विक्रम और जयसिंह तीन पुत्र उसके स्वर्गवास समय शक ९९० मे पूर्ण वयस्क थे। आहवमल्लका राज्यकाल ९६२ से ९९० पर्यन्त २८ वर्ष है। अब यदि हम विल्हण का पूर्व कथन "आहवमल्लको राज्य पाने पश्चात बहुत दिनों पर्यन्त कोई पुत्र नही हुआ था" मान लेवे तो वैसी दशा में उसकी मृत्यु समय सोमेश्वर आदि को अल्प वयस्क बालक होना चाहिये। परन्तु इसके विपरीत शक ९९१ से लगभग २३ वर्ष पूर्व शक ९६८ मे विक्रमादित्यका अपने पिता के साथ युध्ध में जाना और चोल पति राजाधिराज प्रथम के साथ लडना पाया जाता है। इस युध्धका राज्याधिराज के राज वर्ष के २९ वें वाले अर्थात शक ९६८ के लेखमें वर्णन है। एवं चोल के राजा वीर राजेन्द्र के राज्य काल के चोथे वर्ष अर्थात शक ९८८ के लेखमें उसके कुण्डल संगम नामक स्थान पर आथवमल के साथ लडने का वर्णन है। उक्त युध्धमें आहवमल्ल के दो पुत्र विक्की [विक्रमादित्य] और सिगन [जयसिंह] सामिल थे।

विक्रमादित्य की प्रथम युध्ध यात्रा शक ९६८ और द्वितीय युध्ध यात्रा शक ९८८ में २० वर्षका अंतर है। अब यदि हम प्रथम युद्ध यात्रा के समय विक्रमकी आयु १५ वर्षकी भी मान लेवें तो उसका जन्म अपने पिता के राज्य प्राप्त करने के ८ वर्ष पूर्व अर्थात शक ९५३ से पुर्व सिद्ध होता है। अतः यदि हम विक्रम और उसके बडेभाई सोमेश्वर के जन्म कालका अंतर २ वर्षभी मान लेवे तो आहवमल्ल के बडे पुत्रका जन्म शक ९५१ में ठहरता है। परन्तु जयसिंह अपने पिताका तीसरा पुत्र और विक्रम से कनिष्ट था। अब यदि हम इन दोनों के जन्मका अन्तर दो वर्ष भी माने तो इसका जन्म शक ९५५-५६ में ठहरता है। अथवा संभव है कि जयसिंहका जन्म शक ९५५-५६ मे कुछ पूर्व हुआ हो। क्यों कि आहवमल्ल को कई रानिया थी। ऐसी दशामें सोमेश्वर, विक्रम और जयसिंह का जन्मकाल अंतर दो वर्ष को कौन बतावे। उससे बहुत कम अर्थात केवल महिना, दिनों या घडी पल का हो सकता है। इन तीनो भाईओं का एक माता से जन्म नहीं हुआ था। यह ध्रुव सिध्धांत है। और इनके जन्मकाल का निश्चित ज्ञान न होने से इनकी आयु पिता के राज्यरोहन समय क्या थी कहना कठिन है। परन्तु उनका जन्म पिता के राज्यारोहन के समयसे बहुत पहले हो चुका था' इन प्रमाणो के सामने बिल्हण कवि का कथन भावुक और निरंकुश कविओंके कथनके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त विल्हण के कथनकी उपेक्षा करानवाली उसके कथनमें अनेक प्रकारकी निराधार वातों की संप्राप्ती है

यदि विल्हणके ' जयसिंहका शक ९६८ के युध्धमें सामिल न होना " प्रकट करनेवाले कथनमे कुछ सत्यांशको स्वीकार करने के लिये मनोवृत्तिका झुकाव होता है। और हम थोडी देरके लिये उसमें कुछ सत्यांश मान लेवे तो भी कहना पडेगा कि उसका जन्म ९६८ के पूर्वही

हुआ था। क्योंकि उस घप उसको गोगली आदि प्रदेशोंकी जागीर मिल चुकी थी। इ। इसके अतिरिक्त यदि हम थोडी देरके लिये यहभी मान लेवे कि जयसिंहका जन्म शक ६६६ में ही हुआ था और उसके पश्चात ही उसे जागीर दे दी गई थी। क्योंकि ऐसा प्राय देखनेम भी आता है, कि राजा लोग भावी विग्रह से बचने के विचारसे अपने प्रत्येक पुत्रके जन्म पश्चात उसे जागीर आदि दे कर दृढ प्रबध कर देते है। एव जब तक वह अल्प वयस्क रहता है तब तक उसकी जागीर का प्रबध उसके नामसे कोई कर्मचारी करता है। इस प्रकार के दृष्टात का अभाव भी नही है। आहवमल्ल के द्वितीय पुत्र विक्रम की अल्पवयस्कता समय उसकी जागीर वनवासी का प्रबध उसकी माता करती थी।

चाहे हम बिल्हण के कथनको अवकाश देने के लिये पूर्व कथित रूपसे मान लेवें चाहे उसे अधिकाशमे अन्यथा होने (अर्थात विक्रमादित्य और सोमेश्वर का अपने पिता आहवमल्ल के राज्यारोहन समय से पूर्व जन्म न होंने प्रभृतिकथन) के कारण उसे त्याग देवे तोंभी हमे यह मानने में कोई आपत्ति नही है कि शक ९६८ वाले युध्ध समय जयसिंह युधम जाने योग्य नही था। वरना उसके समान वीर प्रकृती बालक यदि उसकी आयु युधमे जानेकी आज्ञा देती तो कदापि राज्य महल में क्रिडा करने के लिये पिता और भ्राता का रणक्षेत्र म जाता देखकर भी पीछे न ठहरता। अत हम निशक होकर कह सकते है कि इस शासन पत्र के लिखे जाते समय जयसिंह अल्प वयस्क बालक था और उसे कोगली पच शत और अन्यान्य प्रदेशोंकी जागीर मील चुकी थी। परन्तु हमारी इस धारणा का मूलोच्छेद प्रस्तुत प्रशस्ती का वाक्य अमोघ वाक्य करता है। क्योंकि अमोध वाक्य का अर्थ है। जिसका कथन कालत्रयमें अन्यथा न हो, जो अपनी वातो का धनी अथवा पूरा करनेवाला हो। हमारी समझमें ऐसे वाक्य का प्रयोग अल्प वयस्क अबोध बालक के लिये नही हो सकता। अत कहना पडेगा कि जयसिंह प्रशस्ति लिखे जाते समय अल्प वयस्क नहो वरण पूर्ण वयस्क था। और अपनी सत्य प्रियता, वचन बध्धता तथा प्रतिपालनता आदि गुणों के कारण ख्याति प्राप्त कर चुका था। किन्तु इस भावना का विमर्षक उसका शक ६६८ के युध्ध में सामिल न होना है।

हमारी समझमें युध्धम सामिल न होना किसीका किसी युध्ध समय न तो उसके अस्तीत्व का विमर्षक हो सकता है और न उसकी अल्प वयस्कता सिद्ध कर सकता है। क्योंकि शक ९६८ और ६८८ वाले युध्धो म जयसिंह के ज्येष्ट भ्राता सोमेश्वर का हम उल्लेख नहीं पाते है। परतु वह उस समय जिता जागता और अनेक प्रदेशो का शासन करता था। पुनश्च प्रशस्ति कथित वाक्य "अमोघ वाक्य"के आगे (काचीपुर आदि) वाक्य है। यदि दुभाग्यसे अमोघ वाक्य काचीपुर और नयलोकमल आदि के मध्य कुछ अक्षर नष्ट न हुए होते तो स्पष्ट रूपसे ज्ञात हो जाता कि काचीपुर के साथ जयसिंहका क्या सबध था। परन्तु अमोघ वाक्य काचीपुर और नयलोकमल ननिनोलम्ब के मध्यवर्ती प्रशस्ति के टुटे हुए अश को दृष्टि

कोण में लातेही स्पष्ट हो जाता है कि उक्त स्थानमें चार अक्षरोवाला कोई शब्द होना चाहिए संस्कृत साहित्यमें सौहार्द्य तथा मनो मालिन्य भाव प्रदर्शक चार अक्षरवाले अनेक शब्द पाये जाते हैं। परन्तु वातापि के चौलुक्यों और कांचीपुर वालो वशगत विग्रहको दृष्टिकोण में लाते ही हम कह सकते है कि उक्त स्थान में सौहार्द्य भाववाले शब्दोका होना सर्वथा असंभव है। पुनश्च अमोघ वाक्यं के पश्चात कांचीपुर आने से स्पष्ट है कि उसके कांचीपुर विजय अथवा संहारादि भाव द्योतन करने वाला पद होना चाहिए।

अतः हम सुगमता के साथ कह सकते हैं कि अमोघ वाक्यं कांचीपुर और त्रयलोक्यमल्ल ननिनोलम्ब के मध्य टुटे हुए स्थान पर चार अक्षर वाला विग्रह भाव प्रदर्शक "शब्द कालानल दावानल, संहारक, विध्वंशक तथा विमर्दक" आदि कोई पद होना चाहिए। हमारी समझमें अमोघ वाक्यं के पश्चात त्रयलोक्यमल्ल और कांचीपुर के मध्य कालानल पद उपयुक्त प्रतीत होता है। हम देखतेभी है कि जयसिहके शौर्यकी उपमा तुम्बुरु होसुरु वाली प्रशस्ति में दाहलके संबंध में इसी प्रकार के पदका प्रयोग किया गया है। अतः कथित वाक्य "अमोघ वाक्य कांचीपर कालानलं त्रयलोक्यमल्ल ननिनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिहदेव" ज्ञात होता है। क्योंकि इसका अर्थ होगा कि अमोघ वाक्य त्रयलोक्यमल्ल ननिनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिह देव कांचीपुरीका कालानल अर्थात जलानेवाला। जिसका भावार्थ यह है कि शक ६६८ वाले अपने पिता और भ्राता के पराभव का वदला कांची पुर के मान मर्दन द्वारा लेनेकी प्रतिज्ञाको पुरा करनेवाला जयसिह। इस वाक्यका इस प्रकार सुन्दर मनोग्राह्य तारतम्य समेलन हो जाता है।

इन वातों और अन्यान्य वातो को लक्ष कर हम कह सकते हैं कि शक ६६९ में इस प्रशस्ति के लिखे जाते समय जयसिह पूर्ण वयस्यक और अपने पिता और भ्राताओं के शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाला था। प्रस्तुत प्रशस्ति में जो उसके पिताको राजा और उसे सामन्त रूपमें वर्णीत है इसके संवंध में इतनाही कहना पर्याप्त है कि जयसिहका पिता राजा और वह अपने पिता का सामन्त था।

प्रशस्ति में जयसिहको पल्लव कुल तिलक प्रभृति लिखनेका उद्देश्य यह है कि उसकी माता पल्लव देशकी राज्य कुमारी थी। अथवा हम यह भी कह सकते है कि जयसिह अपने नानाके यहा दत्तक रूपसे चला गया था। अत उसके नामके साथ पल्लव वंशोद्भव भाव द्योतक विरुद्ध लगे है। परन्तु ऐसा मानने से एक वडी भारी आपत्ति का सामना करना पडेगा। उक्त आपत्ति यह है कि जयसिह के वडे भाईओ विक्रम और सोमेश्वर के नाम के साथ भी हम उक्त प्रकारकी उपाधिओं को पाते है। और यदि कथित उपाधि अपने नाना के यहां चले जानेका भाव दिखाने वाली है तव तो तीनो भाइओं का अपने नाना के यहां जाना सिध्ध होता है। जो किसीभी दशा में माना नही जा सकता। अतः उक्त उपाधियां जयसिहकी माता के वंशका द्योतन करने वाली है।

# नेरल गुण्डी-होनाली तालुका

## { ईश्वर मन्दिर } वाली

## वीरनोलम्ब जयसिंह परमनादि की

### शिला प्रशस्ति ।

स्वस्ति समस्त भुवनाश्रय पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्याभरण श्रीमत् त्रयलोकमल्ल देवरु चतु स्समुद्र पर्यन्तं वर सुख सत्कथा विनोदि राज्य गेयुत्ता इरे । तत्पद पाद्मोपजीवी समधि गत पंच महाशब्द पल्लवान्वय श्री पृथिवी वल्लभ पल्लककुल तिलक एकवाक्य श्री-त् त्रयलोकमल्ल नोलम्ब पल्लव परमनादि देवार दादिरवलिगे शशिरव वल्लकुण्डे मुलुरुं कोनादियु रुम सुख सत्कथा विनोदि राज्य गेयुत्ता इरे । तत्पद पाद्मोपजीवी समस्त राज्यभार निरुपित महामात्य पदवी विराजमान मानोन्नता प्रभु मन्त्रोत्साह शक्तित्रय सपन्न शिवपाद शेखर यतिदिल गरुड नामादि समस्त प्रशस्तिसहित श्रीमत् त्रयलोकमल्ल नोलम्ब परमनादि राज्य मनु विष्ठ इरे । शके वरीस ९८६ जय सवत्सरात-द्वैय नेरिलु गुन्डीय कर आदेय दितमाय सूर्य ग्रहणदोलु मल्लीकार्जुन देवरगे गदेक ४०० वेदलेय ४ मम-लिकावेप्प काल कचिधारा पूर्वक आदि कोट गो-शासनं ।

# नेरलगुन्डी प्रशस्ति

## का

## छायानुवाद ।

कल्याण हो जब के सकल संसार के आश्रय, पृथिवी के स्वामी महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वंश विभूषण श्रीमत् त्रैलोक्यमल्लदेव का राज्य चारो समुद्रकी अवधि पर्यन्त सुख और शान्ति से लहरा रहा था और श्रीमान महाराजाधिराज त्रयलोक्यमल्ल के पादपद्म आश्रित पंच महा शब्द अधिकार प्राप्त पल्लवान्वय श्री पृथवी वल्लभ कुल तिलक एक वाक्य श्री त्रैलोकमल्ल नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिहदेव दृदिरवलीग शशिरव (सहस्र) वलकुन्डे सुनुरु (त्रयरति) और कोन्डीयरुम प्रदेशका शासन सुख और शान्ति के साथ करते थे।

एवं श्री जयसिहदेव का चरणरत-समस्त राज्यभार अधिकार प्राप्त सकल मान संभ्रम युक्त स्वामी कार्य निपुण-शक्ति त्रय संपन्न-गरुड समान स्वामी कार्य सम्पादक महामात्य कथित प्रदेशोंका राज्य भार संचालन करता था।

इस समय जय संवत्सर शक ६८६ के सूर्य ग्रहण पर्वके अवसर पर नेरलगुन्डी के ओदियार हितमाय ने मल्लिकार्जुन देवके नित नैमित्तिक भोग राग पूजन अर्चन निर्वाहार्थ शासन पत्र द्वारा जल पूर्वक भूमि दान दिया।

१—गदेक निमित्त　　४००

२—वेहलेय निमित्त　　५

इस शासन का उल्लंघन कोई न करे।
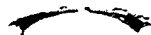
# नेरल गुन्डी होनाली प्रशस्ति

का

## *विवेचन.*

प्रस्तुत शिला प्रशस्ति मैसूर राज्य के सिमोगा जिला के होनाली ताल्लुके नेरल गुन्डी ग्रामस्थ ईश्वर मन्दिर म लगी है। प्रशस्ति नेरल गुन्डी ग्राम के ओरदेया हितमाया के सूर्य ग्रहण के समय मल्लिकार्जुन नाम मन्दिर को दिये हुए दान का वर्णन करती है प्रशस्ति की तिथि जयनामक सवत्सर शक ६८६ है। प्रशस्ति लिखे जाने के समय चौलुक्य नरेश त्रैयलोक्यमल्ल का शासन काल था। और प्रशस्ति वाला ग्राम नरेल गुन्डी त्रैलोक्यमल्ल के द्वितीय पुत्र जयसिंह वीरलोलम्ब पल्लव परमानदि के शासनाधीन प्रदेश के अन्तर्गत था। जयसिंह के शासनाधीन प्रशस्ति के अनुसार ददिर वलीगसहस्त्र वलकुण्डा त्रयशत और कुण्डीयार प्रदेश थे। प्रशस्ति मे वह प्रकट नही होता है कि कथित तीनो प्रदेशो में से नेरलगुण्डी ग्राम किस प्रदेश में था।

पुनश्च प्रशस्ति के पर्यालोचन से प्रकट होता है कि जयसिंह के प्रतिनिधि रूपम उसका महामत्रि उसके शासनाधीन प्रदेशाका शासन करता था। उक्त मत्रि को शासन सबधी पूर्ण अधिकार प्राप्त था क्योंकि प्रशस्ति के वाक्य " समस्त राज्यभार निरपित्" शासन सबधी पूर्ण अधिकार प्राप्ति का भाव प्रकट करता है।

अराम्त्रिरी पूर्वोधृत प्रशस्ति वाली प्रशस्ति से हमे प्रकट है कि जयसिंह को कोगली पचशत तथा अन्यन्य प्रदेशों की जागीर शक ६६६ में मिली थी। परन्तु उक्त प्रशस्ति के कुछ अश नष्ट हो जाने से अन्य प्रदेशोका नाम ज्ञात नही हो सकता था। वर्तमान प्रशस्तिम ददिर वलीग, वलकुण्डा और कुण्यार प्रभृति तीन प्रदेशाका नाम स्पष्ट तया उल्लिखित है परन्तु कोगली पचशत का पूर्णतया अभाव है, यद्यपि कोगली पचशतका इसम उल्लेख नहीं है तथापि इसका समावेश इत्यादि में हो जाता है और जयसिंहके शासनाधीन प्रदेशों में चारका नाम स्पष्ट मालुम हो जाता है।

प्रशस्ति में जयसिंहके अन्यान्य विरुदों और विशेषणों के साथ एक वाक्य विरुद दृष्टिगोचर होता है। एक वाक्यपद पूर्व प्रशस्तिका अमोघ वाक्यका पर्यायवाचक वाक्य है। इससे प्रकट होता है कि जयसिंह बाल्यकाल से ही अपने वाक्य का धनी अथवा अपने वचनको पूरा करने वाला था। वह सामान्य राजा और राजकुमारा के समान अपने वचनको गौरव और महत्व शून्य उपेक्षनीय नहीं मानताथा वरण जो कुछ कहता था उसे अपने लिये प्रतिनधरूप मान उसे पुरा करता था। कितने महानुभावा के विचारसे जयसिंह समान के लिये "एक वाक्य और अमोघ वाक्य" पद्य,

प्रयोग कविकी भावुकता मात्र है। परन्तु हमारी धारणामें वह भावुकता नहीं वरण यथार्थ है, क्योंकि मानव स्वभाव जो बाल्यकाल में पड़जाता है वह मरने तक भी नहीं छूटता। चाहे उस स्वभाव भाषण आदि कुछभी क्यों न हो, मानव जीवनमें किसी प्रकार के वचनका पूरा करना सत्यका प्रदर्शक है जो मनुष्य अपने वाक्य का धनी होता है उसमें किसी प्रकार के दुर्गुणका समावेश नहीं होता।

हमारी इस धारणाका देदीप्यमान उज्वल प्रमाण जयसिंह के पूर्व यौवनकालीन शक ९९६ के चितलदुर्ग जिला के हूलगुन्दी ग्राम वाली प्रशस्ति से पाया जाता है। इस प्रशस्ति वर्णित जयसिंह के गुणोंका आस्वादन हमारे पाठकों को विवेचन में अवश्य मिलेगा, इस हेतु यहां पर हम उसका उल्लेख नहीं करते हैं।

प्रस्तुत प्रशस्ति के विवेचन को समाप्त करनेके पूर्व हम उसकी तिथि सम्बन्धमें कुछ विचार प्रकट करते हैं। उसकी तिथि जय संवत्सर शक ९८६ है। परन्तु संवत्सर के साठ नाम वाले चक्र पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि शक ९८६ में जय नहीं वरण क्रोध संवत्सर था एवं शक ९८६ से ठीक दश वर्ष पूर्व शक ९७६ में जय संवत्सर था। ऐसी दशामें हम कह सकते हैं कि शक ९७६ के स्थान में भूल से ९८६ उत्कीर्ण हो गया है। हमारी इस धारणा के प्रतिकूल कहा जा सकता है कि वर्ष लिखने में भूल नहीं वरण संवत्सर के नाम में भूल हुई है। जिसका समाधान यह है कि प्रस्तुत प्रशस्तिके संवत्सरका निर्णय करने के लिये हमारे पास दो साधन हैं। प्रथम साधन तो यह है कि पूर्व भावी किसी भी विक्रम अथवा शक संवतों के संवत्सरों का यथार्थ नाम जानने की प्रक्रिया जो हमारे ज्योतिषशास्त्रके आचार्योंने निर्धारित किये हैं और दूसरा साधन यह है कि प्रस्तुत प्रशस्ति के पूर्वभावी निर्भ्रान्त संवत्सर वाले लेखों और प्रशस्तियों के समय से संवत्सरोंके चक्रकी परिगणनाकी जाय।

प्रथम साधन के संबंध में हमारा इतनाही कहना है कि उक्त गणना के अनुसार शक ९८६ में नहीं वरण शक ९७६ में जय संवत्सर पड़ता है। अब रहा द्वितीय साधन उसके संबंधमें भी हमारा निवेदन है कि इसके अनुसार भी जय संवत्सर शक ९८६ में नहीं वरण ९७६ में पड़ता है हमारे पाठकों को ज्ञात है कि जयसिंह के पिता और पितामह प्रभृतिके अनेक लेख हम चौलुक्य चंद्रिका के वातापि खंडमें पूर्व उधृत कर चुके है एव जयसिंहका आरासिरिवाला लेख पूर्व उद्धृत किया है उक्त अराकिरीवाले लेखका संवतसर्वजीत है एवं चौलुक्य राज्य उद्धारक तैलपदेव द्वितीय के निगुण्डवाले लेखका संवत्सर चित्रभानु और शक वर्ष ९०४ है। इस लेखकी तिथि और संवत निर्भ्रान्त है। अतः हम अपने दूसरे साधनका आधार स्तंभ उसीको बनाते हैं।

हमें यह ज्ञात हो गया कि शक ९०४ चित्रभानु संवत्सर था, अत. संवत्सर चक्र पर दृष्टि पात कर ज्ञात करना होगा कि चित्रभानु सवत्सर ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र की वीसीओं में से किस बीसी में है और इसकी संख्या क्या है। चित्रभानु संवत्सर ब्रह्मा की वीसी में है और इसकी संख्या १६ है। एवं वीसियोंकी सम्मिलिति संख्या वाले चक्रमें भी इसकी संख्या १६ पड़ती है।

शक ६०४ और निवेचनीय शक ६८६ में ८२ वर्षका अन्तर है। इधर सवत्सरोंकी सख्या केवल ६० है। पुनश्च उनमेंसे भी १६ व्यतीत हो गये हैं। अत सवत्सरकी सख्या ४८ है। इस ४८ को ८२ बनाने के लिये हमे सवत्सर चक्रका पूर्ण परिभ्रमण कर पुनरावर्तन करना पडेगा और ३८ सख्या वाले चक्रवर्ती सवत्सर पर्यन्त पहुचना होगा।

सवत्सर चक्रवीं ३८ की सख्या विष्णु की है। वह १८ वे नामको लेकर पुरा होता है। अब देखना है कि विष्णु की वीसी वाले १८ वें सवत्सरका क्या नाम है। उक्त वीसी के नामचक्र पर दृष्टिपात करने से १८ वी सख्यावाला सवत्सर क्रोधी सवत्सर प्राप्त होता है। अत इस प्रकारभी हमारा पूर्व कथन कि, शक ६८६ में क्रोधी सवत्सर था सिद्ध हो गया। अब केवल मात्र शक ६७६ में जय सवत्सरका होना निश्चित करना मात्र रह गया है। यह अत्यन्त सहज है, क्योंकि शक ६८६ से पूर्व शक ६७६ पडता है। जब ६८६ में विष्णुकी वीशीका १८ वा सवत्सर क्रोधी है तो उसे १० वर्ष पूर्व अथात विष्णुकी वीशीका ८ वा सवत्सर पडेगा। विष्णुकी वीशीका आठवा सवत्सरका जय नाम है। इस प्रकार भी हमारा पूर्व कथन, कि जय सवत्सर शक ६८६ में नहीं वरन् शक ६७६ में था सिद्ध हो गया। अत हम निशक होकर प्रकट करते है कि प्रस्तुत प्रशस्ति का शक वर्ष ६८६ के स्थान ६७६ में भूल से उत्कीर्ण हो गया।

———

# श्री वीर नोलम्ब जयसिंह

## का

# जतिंग रामेश्वर गिरी

## वाली

## *शिला प्रशस्ति।*

१ ॐ स्वस्ति समस्त भुवन संस्तुत महा महिम
२ ओदमोदय ओलसित पल्लवालवयं श्री
३ पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वरं
४ परम महेश्वरं विदग्धी विलासनी विलोचन चकोर चन्द्रं
५ प्रत्यक्ष देवेन्द्रं राज विद्या भुजंग अन्नन सिंग
६ श्रीमत् त्रैलोक्यमल्ल नोलम्ब पल्लव परमनादि जय
७ सिंह देवर गोयदवादाय पारिविदिनल सुखादिं राज्यं
८ गेयुतं इरे। शक वर्ष ९९३ नेम विरोधिकृत संवत्सराय
९ फालगुनद अमावासे बुधवारं वलगोति तीर्थ स्थान
१० द रामेश्वर देवरगे कार्नायकल मुनूरी वलीय
११ वारं वन्नेकलं सर्वनमस्यं आगी अमृतराशी
१२ जीयर्गे धारा पूर्वकं माडी कोत्तार। ई धर्मान
१३ आवबोर्वं किदीसिदवं वानराशी वाल गोतियल
१४ कोवलुयुं ब्राह्मण रप आलीद पात्राकन अक्कु।
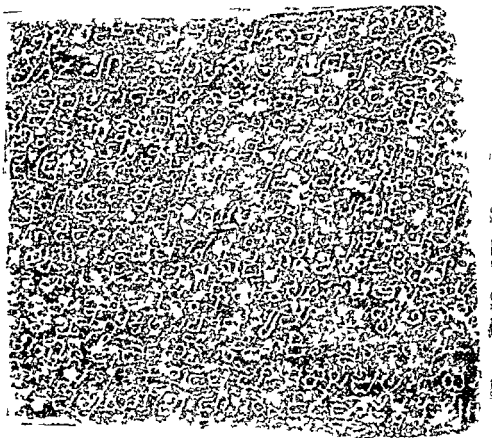
जतीग गमेश्वा का शिलालेख।

# श्री वीर नोलम्ब जयसिंह

## की

# जतिंग रामेश्वर प्रशस्ति

## का

## छायानुवाद ।

कल्याण हो। जन के समस्त ममारका स्तुतिपात्र—महामोग्य—पल्लवान्वय प्रृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्नर—पर माहेश्नर—त्रिदग्र निलासिनी विलोचन चकोर चद्र साचात देवेन्द्र राजविद्या भुजग—अनन सिग—श्रीमान त्रैलोक्यमल्ल नोलम्ब पल्लव परमनादी जयसिंह देव गोन्दावाडी सिनिर के वहिर्भूत स्थित होकर शासन करते थे।

उस समय विरोधि सवत्सर शक ६६३ के फालगुण अमावस्या बुधवारको वलगोती तीर्थके श्री रामेश्वर देव के भोगराग पूजन अर्चन निवाहार्थ कनेयकाल शत विपयान्तवर्ती वानेकाल नामक अमृत राशी को जलधारा पूर्वक प्रदान किया।

# श्री वीर नोलव जयसिंह
# की
# जतिग रामेश्वर प्रशस्ति
## का
## विवेचन ।

प्रस्तुत लेख वीरनोलम्व पल्लव परममनादि त्रैलोक्यमल्ल जयसिंह के दानका शासन है। यह लेख २ १/२ X २ १/३ फीट प्रस्तर पर उत्कीर्ण है। उक्त प्रस्तर जतिग रामेश्वर मन्दिर के पृष्ठ प्रदेश में है। अर्थात जतिग रामेश्वर मन्दिर एक प्राचीन मन्दिर है जो शक ८८४ में बनाया गया था। मन्दिर जतिग गिरि नामक पर्वत पर वना है। उक्त गिरि समुद्र तलसे ३४६६ फीट उंचा है। और चितलदुर्ग जिला (मयसूर राज्य) के सिदापुर ग्राम के समीप है।

प्रशस्तिकी लेख पंक्तिया १४ हैं। लेखकी लिपि हाले कनाडी और भाषा संस्कृत तथा कनाडी मिश्रित है। प्रशस्तिके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि जयसिंह जव नोलम्बवाडी का शासन करता था तो गोदावाड़ी ग्रामके वाहर अपनी चमुमें निवास करते समय वालगोती तीर्थके रामेश्वर नामक शिव मन्दिरके भोगाराग निर्वाहार्थ कानीयाकल तीन सौ विपयके वानेकल ग्रामको चढ़ाया था।

कथित दानकी तिथि नव चंद्र बुधवार फाल्गुण मास विरोधिकृत संवत्सर शक ९६३ है। उक्त तिथि वुधवार ३१ मार्च सन १०७२ के वरावर है। यह समय सोमेश्वर द्वितीय के राज्य काल में है। क्योंकि उसका समय शक ६६० से ६६८ तदनुसार ईस्वी सन १०६८ से १०७६ पर्यन्त है।

प्रशस्तिके पर्यालोचनसे जयसिंह के अन्यान्य विरुद के साथ "अनन सिंह" विरुद प्रकट होता है। अनन सिंह कनाडी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ अपने वडे भाइका सिंह होता है। अतः हम कह सकते हैं कि जयसिह अपने वडे भाई सोमेश्वर द्वितीयके आधीन था।

प्रशस्ति में जयसिंहको परम महेश्वर कहा है इससे प्रकट होता है कि वह शिवका अनन्य भक्त था। एवं प्रशस्ति कथित "पल्लवान्वय" का विचार पूर्वोक्त प्रशस्ति में पूर्ण रूपेण कर चुके है। अतः यहां पर इसके संबंध में कुछ भी लिखना पिष्टपेषण मात्र है।

प्रशस्ति से प्रकट होता है कि जयसिह ने प्रशस्ति कथित दान उस समय दिया था जब वह गोन्दावाडी शिबीर के समीप में निवास करता था। शिवीर अथवा उसके समीप निवास

करने का अभिप्राय शान्ति का नहीं वरण युद्धकाल का ज्ञापक है। अत यह निश्चित है कि जयसिंह या तो उस समय किसी युद्ध के लिए जा रहा था अथवा किसी युद्ध में विजय प्राप्त कर लौट रहा था। अब विचारना है कि विवेचनीय युद्ध किस ओर किसके साथ युद्धका सकेत करता है। जयसिंहने स्वतत्र रूपसे किसीके साथ युध्ध नहीं किया था क्योंकि प्रशस्तिमे उसके लिये "अननसिगम" अर्थात अपने बडे भाईका सिंह लिखा गया है। इस विरूदका भावार्थ यह है कि जयसिंह अपने बडे भाई सोमेश्वरका सिंह अथात सिंह समान पराक्रमी अद्वितीय वीर था। अत स्पष्ट है कि जयसिंह सोमेश्वर पर आक्रमण करनेवालों का पराभव करके अथवा उसकी आज्ञासे उसके शत्रुओंके देशको विजय कर कथित गोन्दावाडी शिवीर के बाहर निवास कर रहा था और अपनी विजय के उपलक्षमे अपने आराध्य देव भगवान शकर के रामेश्वर नामक मन्दिरको उक्त दान दिया था।

शक ६६६ म सोमेश्वर के राज्यरोहन पश्चात चौलुक्य राज्यका अपहरण करने के विचारसे वीर चोल ने आक्रमण किया था और उसे सोमेश्वर विक्रम और जयसिंह के सामने लेनेके देने पडे थे। उक्त युध्ध वर्तमान प्रशस्तिकी तिथि से लगभग दो वर्ष पूर्व हुआ था। अत उस विजय के उपलक्षमें यह दान नही हो सकता। अब विचारना है कि इस प्रशस्तिमे साकेतिक कौनसा युध्ध है।

काचीपति वीर राजेन्द्र चोल के राज वर्ष सातवें के—सदर्न इंडीया इन्स्क्रीपशन जिल्द ३ पृष्ठ ०६३ में प्रकाशित-लेखमे प्रकट होता है कि उसके और सोमेश्वर भुवनमल्ल के बीच एक युध्ध हुआ था। उक्त लेखसे यह भी प्रकट होता है कि कथित युध्धमें सोमेश्वर का मझला भाई विक्रम राजेन्द्र चोलसे मिल गया था और सोमेश्वरको हारना पडा था। एव राजेन्द्र चोलने सोमेश्वर से कन्नड और रट्टवाडी प्रदेश छीन लिया था तथा रट्टवाडी विक्रमको उसके देशद्रोहके पुरस्कारमें दिया था। अब यदि हम इस युध्धको प्रस्तुत प्रशस्तिमें साकेतिक युध्ध मान लेवें तो वैसी दशा में दो विपत्तिया विकराल रूप धारण कर सामने आती है। प्रथम विपत्ति यह है कि वीर राजेन्द्र चोल के कथित लेखमें शक आदि सवत का उल्लेख नहीं है और दुसरी विपत्ति यह है कि विक्रमाङ्कदेव चरित्र के कर्ता बिल्हण के अनुसार विक्रम सोमेश्वर का साथ छोडकर कल्याण से आते समय जयसिंहको अपने साथ लेता आया था।

प्रथम विपत्ति क सबध में यह कह सकते है कि वीर राजेन्द्र चोल का राज्यारोहन अन्यान्य ऐतिहासिक लेखों के आधार पर शक ६८६ का प्रारभ माना जाता है। अत उसका सात वा राज्य वर्ष शक ६६३ का प्रारभ अथात कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा हुआ। अत उसके सातवें वर्ष वाला युध्ध शक ६६३ के कार्तिक मासके बाद होना चाहिए। संभव है कि कथित युध्ध कार्तिक और फालगुण के मध्य किसी समयमें हुआ हो। हम उक्त युध्धको ही प्रस्तुत प्रशस्ति साकेतिक युध्ध मानते है।

अब रहा द्वितीय विपत्ति के संबंधका साजमंस्य संमेलन। इस संबंधमे हम विल्हण के कथनको अस्वीकार करते हैं। क्योंकि विल्हणने अपने आश्रयदाता विक्रमादित्यके चरित्रको निर्दोष और सोमेश्वरके चरित्रको दोषपूर्ण चित्रित किया है। विल्हण के कथन और कांचीपति वीर राजेन्द्र चोलके लेखको समानान्तर पर रख तुलना करतेही विल्हणकी पोल खुल जाती है क्योंकि उसने विक्रमदित्यके युध्ध समय अपने जातीय शत्रुसे मिल जानेका उल्लेख नही किया है। अपने बडे भाई और राजाका साथ युद्ध समय छोड शत्रुसे मिल जाना यदि निर्दोष और प्रशंसनीय चरित्र है तो निर्दोष चरित्रको शब्द सागर और साहित्य क्षेत्र से निकाल बहार करना पडेगा।

पुनश्च हम विल्हण के कथनको निम्न कारणोंसे भी नही मान सकते। वीर राजेन्द्र चोलकी प्रशस्ति कथित युद्ध के पश्चात भाविनी प्रस्तुत प्रशस्ति और इससे दो वर्ष पश्चात वाली हुले गुण्डी सिद्धेश्वर प्रशस्ति जयसिहको स्पष्ट रूपसे सोमेश्वर के आधिपत्य को स्वीकार करनेवाला बताती है।

अतः हम अन्तमें निशंक हो प्रस्तुत प्रशस्ति कथित जयसिहका गोवुन्द शिबीरके बाहर निवास करने प्रभृति से यही परिणाम निकालते हैं कि विक्रमादित्य जब युद्ध क्षेत्र से निकल कर शत्रु से जा मिलाना और सोमेश्वर को भागना पडा उस समय जयसिह अपने स्थान पर डटां रहा और शत्रुको प्रचुर लाभ नही उठाने दिया।

———

# हुले गुन्डी प्रशस्ति

स्वास्ति समस्त भूवनाश्रयं पृथिवी वल्लभ महाराधिराज परमेश्वर परम भट्टारकं सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्या मरणं श्री मुवनमल देवाक राज्य उत्तरात्तरामि प्रवृद्धि वर्धमान आचंद्रार्क तारा वर सालुत इरे। स्वास्ति समस्त भुवनस्तुतं अप्य मन्यामहि मोदयोल्लासित पल्लवान्वय श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर वीर महेश्वरं विदग्ध विलासिनी विलोचन चकोर चद्र प्रत्यक्ष देवन्द्र विक्रान्त कण्ठीरव मण्डलीक भैरव शरणागत वज्र पजर चौलुक्य दिक कुजर सहसाङ्कारं कीर्तिवल्लरी दलपिंत त्रिलोक राज विद्यान्गना भुजग अन्न निःगेम श्रीमत त्रयलोक्यमल्ल नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देवारे दिव्य पाद पद्मोपजीवीय अप्य। स्वास्ति समस्त दुष्टाराति मानेय मदान्ध गन्ध गजसिंह सहसोतुग रणरंग राक्षस विशालमदे भानाकुश चपल मानेय गोन्डल चतुर्मुनं मच्छरिव वैरी घट भुभुक ओकेतु गन्द कडन प्रचण्ड कायावर भीम जलद अक राम पगेय वेङ्कोलव कलीय मार कोरववाभि दसेरे मल्लम भितार कोलन-रक्षगि इव मरेवरे कावनरे कच अहित जन कदलीवन कुजर सुमट ललाट पट वैरी घृत तप लपुय वोरिदिन्द ओपुव पर मण्डल सुरेकार वैरीवङ्गार अरिवल करि चूराक वीराग्रणराय हनावितन कोलाहल कविगमक वादा वाग्मी सम्भरण नामादि समस्त प्रशस्ति साहित श्रीमन्महासामन्त केरेयूर मटगीय एच्छाय सूलगाल एल्लगतुमान आलुत इलदु स्वास्ति शक ९९५ नेय प्रमादि संवत्सरात पुष्य वहुलाष्ठमी सोम्वाराद अनद उत्तरायण सक्रान्ति तिथ्याल स्वास्ति यम नियम स्वाध्याय ध्यान धारणा मौणानुष्ठान जप समाधि सम्पन्नार अप्य श्रीमत केरेयूर ज्ञानशिव देव मौनी मुनिवर काल केरच्छी धारा पुर्वक मादी सुरगल तिथाद भोमेश्वर हिडमश्वर वादीय आगलीय उल्लदेवाण एल कोतेयीं पश्चिम दिशा वर दोल वित्त केत मर्या अरुवत्तु श्रीमान महा सामन्त मगयन गाकुद

बीरल्लगावुदं केरेयुग तन्न केरेय केरेगोदन गेयलु भीमेस्वर देवरगे
विता गलदे कम्मम १०० इन्तु भूमिदान मादीदरगे फल ॥

श्लोक ॥

यावद्दण्ड भवेदभूमिः सामन्तो दयसादिता ।
तावत्युग सहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
इन्त इ धर्मम प्रतिपालिसिद वरगे ।

श्लोक ॥

चतुरसागर पर्यन्तं पृथ्वी दत्तस्य भूपिते ॥
यद्वेदार्थं द्विजेन्द्राणां राहु ग्रहस्ते दिवाकरे ॥
तस्य तत्फल माप्नोति शिवलोके महीयते ।

इन्त इ धर्मं अलीदं महा पात्तकान अक्कु ।
अलिसाहिते श्लोक । भ्रमन्ति सुचिरं कालं क्षुत्पिपासादि पिडीतः ।

आघोर नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरं ॥
न विष विषमित्याहुः देव स्वं विष मुच्यते ।
विष मेका किनं हन्ति देवस्वं पुत्र पौत्रकं ॥

३ शिला लेखकं बरेदं श्रीमन्महा सामन्त मगीय चायत सान्धि
विग्रही बम्मयान ।

---
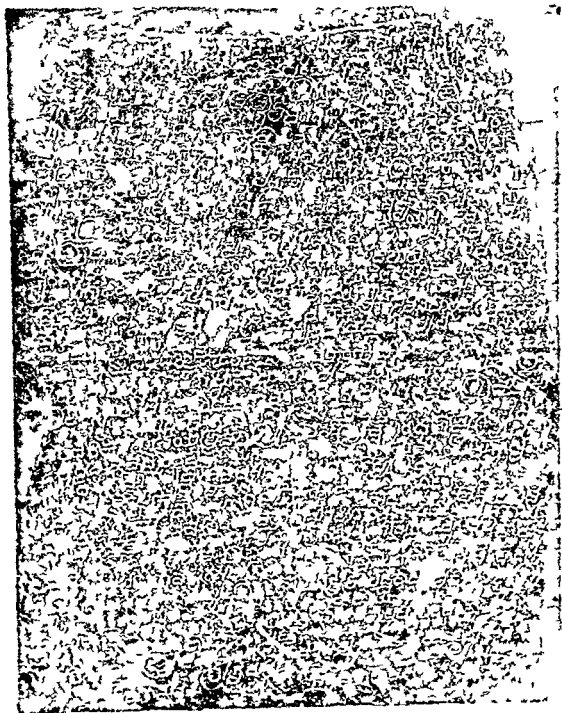
इलेगुट ( तिलल दुर्ग ) सिद्धेश्वर मन्दिर का शिलालेख ।

# हुले गुण्डी प्रशस्ति

## का

## छायानुवाद.

स्वस्ति। समस्त ससार के आश्रय पृथिवी पति महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वश विभूषण श्री भुवनमल्ल देव का राज्य लहरा रहा था। और सकल ससारम स्तुति प्राप्त महा महिम पल्लवान्वय पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर वीर महेश्वर - त्रिभुवन विलासिनीके नयन रूपी चकोर का चद्रमा—साक्षात इन्द्र विक्रान्त कठीरव - माण्डलीक भैरव - शरणागत वज्र पंजर—चौलुक्य दिक् कुंजर - सहसालकार कीर्ति वलरी परिवेष्टित त्रिलोक्य राज्य निशागना भुजंग - अनन निशिम, श्री त्रयलोक्यमल्ल नोलम्बा परमनादि जयसिंह देव का -

दुष्ट शत्रुओं मान भजक। मनान्य गजसिंह साहस चूडामणि युद्धमे राक्षस समान प्राक्रमी, बडे बडे विशाल शत्रु रूपी हाथीओ का वशकर्ता अङ्कुश - परम प्रचण्ड, भीमाकार दुष्टजनरूप कदली वनका विनाशक हाथी, बडे बडे योद्धाओके ललाट पटका विनाशक शत्रु रूप घृतका तापक अग्नि, शत्रु जल नाशक - विराम गण्य, कविओकी कविता प्रवाह का निरोधक, केरेयुर निवासी महा सामन्त मगीय पच्छाय सुलगाल प्रदेशका शासन करता था।

उस समय शक ९६७ प्रमादि सवत्सर के पुष्य बहुलाष्टमी तिथि सोमवार उत्तरायण सक्रान्ति के अवसर पर केरेयुर निवासीने यम नियम स्वध्याय ध्यान धारणा मौणानुष्ठान जप समाधि सपन्न ज्ञान शिव देव मुनीको सुरगाल तीर्थ के भीमेश्वर और हिडम्बेश्वर तथा अन्यान्य देवताओं के नित्त नैमित्तिक भोगराग पूजार्चन निवाहार्थ १०० मत्तल भूमिदान दिया।

ससारम जबतक सूर्य चद्र और तारागणों की स्थिती है। भूमिदान देनेवाला रुद्रलोकमें सहस्र युग पर्यन्त वास करता है।

वेदार्थ वित्त ब्राह्मणों को सूर्य ग्रहण के अवसर पर जो समस्त ससारके दानका पुण्य प्राप्त होता है वही पुण्य परन्तु दानके सरक्षण का होता है।

भूदान का अपहरण करने वाला क्षुत्पीपासापिडीत प्रलय काल पर्यन्त घोर रौरव नरकमें वास करता है।

विष वास्तवमें विष नही वरण देवस्व विष है। क्यों कि विषतो केवल विषपान करने वाले का प्राण हरता है परन्तु देवस्व पुत्र पौत्र आदि सब को नरक देने वाला है।

इस शासन का लिखने वाला महासधि विग्रहिक महा सामन्त मगीय एच्छायन और उत्कीर्ण करने वाला धम्मायान है।

# हुले गुन्डी प्रशस्ति

का

# विवेचन.

प्रस्तुत प्रशस्ति मयसूर राज्य के चितलदुर्ग जिलाके चितलदुर्ग होवेली के ग्राम हुले गुण्डी के सिध्देश्वर मन्दिर में लगी है। प्रशस्ति लिखे जाने के समय चौलुक्य राज भुवनमल्लका शासन था। भुवनैकमल्ल विरुद जयसिह के ज्येष्ठ भ्राता सोमेश्वरका था। सोमेश्वरका राज्यारोहण अपने पिता आहवमल्ल-त्रयलोक्यमल्लकी मृत्यु होने के १६ दिवस पश्चात हुआ था। आहवमल्लने चैत्र कृष्ण अष्टमी रविवार शक ६६० तदनुसार रविवार २६ मार्च १०६८ को जल समाधि ली थी। और सोमेश्वरका राज्याभिषेक वैशाख शुक्ल सप्तमी शुक्रवार तदनुसार ११ एप्रील सन १०६८ को हुआ। इस हेतु प्रस्तुत प्रशस्ति सोमेश्वर के राज्य कालके पांचवे वर्षकी है।

प्रशस्तिमें जयसिहके वीरनोलम्ब आदि विरुदोंके साथ "श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर वीर विदग्ध विलासिनी विलोचन चकोर चंद्रम् प्रत्यक्ष देवेन्द्र विक्रान्त कन्ठीरवं माण्डलीक भैरवं शरणागत वज्र पंजर चौलुक्य दिकंकुंजर साहसालंकार किर्तीवल्लरी वलापीत" प्रभृति दिये गये है। इन विरुदोंमें श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज "परमेश्वर" स्वातंत्र्य प्रदर्शक विरुद हैं। परन्तु हम जयसिहको स्वतंत्र नही मान सकते क्योंकि प्रशस्ति के प्रारंभ में स्पष्ट रूपसे भुवनैकमल्ल सोमेश्वर का अधिपत्य स्वीकार किया गया है। किन्तु उत्तार भावी विरुदों 'प्रत्यक्ष देवेन्द्र विक्रान्त कन्ठीरव माण्डलीक भैरव साहसालंकार चौलुक्य दिकक्कुंजर" को लक्षकर हम इतना अवश्य माननेको कटिवध्ध हैं, कि जयसिह अद्वितीय वीर परम साहसी और चौलुक्य राज्यका संरक्षक था। अत' महाराजाधिराज आदि विरुद सर्वथा उसके उपयुक्त थे। संभव है, उसने सोमेश्वरकी आधीनता नाम मात्रके लिये स्वीकार किया हो पर वास्तवमें स्वतंत्र हो गया हो।

इसके अतिरिक्त प्रशस्ति उसके विरुदों में महेश्वर और शरणागत वज्र पंजर वताती है। इन दोनोंमें महेश्वर विरुद उसका शैव होना और शरणागत वज्र पंजर—आश्रित जनोंकी रक्षा करनेवाला प्रकट करता है। हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि जयसिह के शक ६६६ वाली प्रशस्ति का वाक्य "अमोघ वाक्यं" और शक ९७६ वाली प्रशस्ति का वाक्य "एक वाक्य" को लेकर हमने वहुत जोर दिया है और जयसिहको अपने वाक्य का धनी आदि लिखा है। और यह भी लिखा है कि एकवाक्यता मनुष्य के उत्कृष्ट और महत्वशाली जीवनका प्रथम सोपान है। एवं यहभी प्रकट किया है कि हमारी इस धारणाका समर्थन प्रस्तुत प्रशस्ति से होता है। अव हम अपने पाठकोंका ध्यान वर्तमान प्रशस्ति के वाक्य "शरणागत वज्र पंजर" प्रति आकृष्ट करते हैं। कथित वाक्य का भावार्थ है कि अपने आश्रित के प्रति किये गये घात के

लिये ढाल। मनुष्यमें जब तक एकतानयता न होगी वह अपने शरणागतकी रक्षा कदापि नही कर सकता। उक्त गुणोंसे वञ्चित मनुष्यको शरणागत मनुष्यकी रक्षा करनेमें जहा कुछभी आपत्तिकी भनक मिली नही की उसने उसको उसके शत्रुओंके आधीन किया। यह मानी हुई बात है कि शरणागतकी रक्षा करने में अपने प्राणा बाजी लगानी पडती है।

प्रशस्ति जयसिंहका वर्णन करने पश्चात उसके सामन्त मगीया इच्छाया कोन्पुर निवासी का उल्लेख करती है। मगीय इच्छाया सूलगल सम्प्रति का शासक और उसका महा सामन्त था। प्रशस्तिकारने मगीय इच्छाया के विशेषणों के वर्णन करनेमें पाण्डित्यका प्रचूर रूपेण परिचय दिया है। उसके विरुद के सम्बध लिखना अनावश्यक मान हम आगे बढते है। प्रशस्ति का उद्देश्य मगीय इच्छाया कृतदानका वर्णन है। मगीयाने सूलगलके भीमेश्वर और हिडम्बेश्वर नामक मन्दिरोंके लिये जप नियम स्वध्याय निरत ज्ञानशिवको १०० मातरभूमि दिया है। प्रस्तुत भूमिकी सीमा प्रभृतिका वर्णन करने पश्चात प्रशस्ति भूमिदान के फल और अपहरण जन्य पापादि का वर्णन करती है। परन्तु अन्यान्य शासन पत्र और शिला लेखो समान प्रचलित फलाफल कथन करनेवाले व्यास के नामसे प्रचलित श्लोक के स्थान में नवीन श्लोकोंको प्रशस्ति ने अपने गोद में स्थान दिया है। यद्यपि ये श्लोक भिन्न है तथापि इनके भाव प्रचलित श्लोको के समानही है।

# आम्बपुर तीर्थ

## की

## शिला प्रशस्ति ।

नमस्तुङ्ग

स्वस्ति समस्त भुवनाश्रय श्री पृथिवी वल्लभं महाराजाधिराज राज परमेश्वर परम भट्टारकं सत्याश्रय कुल तिलकं चौलुक्या भरणं श्रीमत् त्रिभुवनमल्ल देवर विजय राज्यं उत्तरोत्तरा भि वृद्धि प्रवर्धमानं यावचचन्द्रार्कतारा वरं सालुतं इरे कल्याण नेलेवी दिनोलु सुख सत्कथा विनोद दाडि राज्य गेयुतं इरे तदनुजं स्वस्ति समस्त भुवन संस्तूयमानं लोक विख्यातं पल्लवान्वय श्री महि वल्लभं युवराज राजा परमेश्वरं वीर महेश्वरं विक्रमाभरणं जयलक्ष्मी रमणं चौलुक्य चूडामणि कडन त्रिनेत्रं क्षत्रिय पवित्रं मत्तगजाङ्गारामं सहज मनोज रिपुराय कडन सुरेकारं अननाङ्कारं श्रीमत् त्रय लोक्य मल्ल वीर नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देवर वनवासे पनीरसधारिरामुम् सन्तालिग सासीरामुम् एरदी एनुरुम् कदुर शान्तिरामुम् नलड सुख स्तकथा विनोददिं राज्यं गेयुत्तं इरे तत् पाद पद्मोपजीवी समधिगत पंच महाशब्द महा सामन्ताधिपति महा प्रचण्ड दण्ड नायकं विबुध वर सुख दायकं गोत्र पवित्रं जगदेक मित्रं निज वंशाम्बुज दिवाकरं सत्य रत्नाकरं विवेक बृहस्पति शौच महाव्रति परनारि सहोदरा विदग्ध विद्याधर्म सकल गुण निवासं उभय राज संतोषं श्रीमत् त्रैलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देव पादाराध्यकं पर बलसाधकं नामादि समस्त प्रशस्ति सहितं श्रीमत् महा प्रधान दिरि सन्धि विग्रही दण्ड नायकं ताम्बरसार सन्तालिग ससीरा मुम् नग्राहारङ्गलमस दुष्ट निग्रह शिष्ट प्रतिपाल नादिदं आलुमम् आनदिराज्या ध्यक्षाद वेसानं माची राजांगे दाये गेयदु दुदे ।

ताले ददु सिन्धवादि सकलोर्वियोल उननतिय तदुर्वारा ।
तोल कादोल अग्रहार तिलकं सागोयि युद्ध कचाग्रा ।
बेल गली परिशोभे वर्त्तन अदरोल द्विजभूषण अत्रिगोत्रान ।
उज्वल कीर्ति वाजी तिलकं प्रभु माची सुध्धामरीचयोल ॥

आ महा पु प सोमनाथायाग अब्वाक वेगम युक्ता समस्त गुण सम्पन्न गोत्र पवित्र बुधजन मित्र श्री माची राज राजाध्यक्षाद वेभारोल नादे युत्ताम इलद श्री राजधानी अदासुरद इपान तीर्थाद इपान्याद देसेयालु श्री मचेश्वर देवारुमम आदित्यदेवारुमम विष्णुदेवरुमम प्रतिष्ठिते गेयदु श्रीमच्चालुक्य विक्रम वर्षाद ३ रेनेये सिध्धार्थी सवत्सराद उत्तरायण सक्रान्ति निमित्तादि म

यम नियम स्वाध्याय ध्यान धारणा मौनानुष्ठान जप समाधि सम्पन्नाा अद्य श्रीमत अनन्तशिव पण्डितार काल करच्छी धारा पू ।

कालु कुलिग चेमोजन: मग एवोज कन्दरी कवा देगुलमम मदीद कामोज श्री ।

# आचपुर प्रशस्ति

का

# छायानुवाद ।

कल्याण हो । सकल संसार के आधार श्री पृथिवी पति महाराजाधिराज परमेश्वर परं भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वंश भूषण श्रीमान त्रिभुवनमल्लदेव के राज्य काल में उसका छोटाभाई सकल ससार में संस्तुत - लोक विख्यात - पल्लवान्वय - पृथ्वीपति युवराज राजा परमेश्वर वीर महेश्वर विक्रमाभरण जयलक्ष्मी वल्लभ चौलुक्य चूडामणि - युद्धमे त्रिनेत्र - पवित्र क्षत्रिय - मदमस्त हस्ती समान बलशाली - धर्म्म धूरीन - शत्रु सेनाका यम श्रीमान त्रयलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि श्री जयसिंह देव सुख और शान्ति के साथ वनवासी द्वादश सहस्र प्रदेशका शासन करता था ।

और जयसिंहदेवका चरण सेवक पंच महाशब्द अधिकार प्राप्त - सामन्तोका स्वामी महाविकरा । दण्ड नायक - विद्वानो का मित्र - स्ववंशउजागर - ससारका एकाधार - सत्य सन्ध - बृहस्पति समान विचक्षण - अन्य स्त्रियों को पुत्र समान - सद्गुणागार दोनों राजाओंको आनन्द दायक - परन्तु त्रयलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब जयसिंहका चरण किंकर - शत्रु मान मर्दकप्रभृति विरुदोपेत - महा प्रधान - प्रधान दण्ड नायक - सन्धि विग्रही ताम्बरस सन्तालिग सहस्र प्रदेश और अग्रहारो का शासन और दुष्टोंका निग्रह तथा शिष्टोंका पालन करता था । उक्त नाडके राज प्रतिनिधि ने अपनी आज्ञा को माच्ची राजा पर प्रकट किया -

संसारकी वली रूप सिन्दवाडी है । और उसके अग्रहारों में परम रमणीय तथा आकर्षक वेलगली है । इसका रत्न परम प्रख्यात अत्री गोत्र में माची उत्पन्न हुआ । उक्त महापुरुष सोमथाप और अरवीकाली का पुत्र सकल सद्गुणो का आगार स्ववंश उजागर विद्वानोका आश्रय माची राजाके राज प्रतिनिधि की आज्ञा अनुसार राजधानी अदासुर के उत्तर दिशावर्ती तीर्थके पूर्वोत्तरमें भगवान महेश्वर, आदित्य और विष्णु मन्दिर चौलुक्य विक्रम वर्ष ३ सिध्धार्थी संवत्सरमें निर्माण कराया और उत्तरायण संक्रान्ति के समय यम नियम आदि साधन चतुष्टय संपन्न तथा स्वध्याय रत्त अनन्त शिव पण्डितको पाद प्रक्षालण पूर्वक कथित मन्दिरों के नित्य नैमित्तिक पूजा अर्चा आदि निर्वाहार्थ संकल्प करके दान दिया ।

पूर्वमें हम जयसिह की शक ६९५ वालीहुलेगुन्डी सिध्धेश्वर प्रशस्ति उधृत कर चुके हैं। उक्त प्रशस्ति में जयसिहने अपने सवसे वडेभाई सोमेश्वर भुवनमल्ल को अधिराजा स्वीकार किया है। अतः यह प्रशस्ति शक ६६५ के वादकी है। सोमेश्वर भुवनमल्ल का अन्तिम लेख शक ९६८ भाद्रपद का है। उधर विक्रमादित्य के लेखमें उसके राज्य वर्ष प्रथमका चौलुक्य विक्रम संवत्सर के नामसे उल्लेख किया गया है। साथहीं उसके प्रथम वर्ष के लेख में वार्हस्पत्य नामक संवत्सरका वर्णन है। सोमेश्वर के अन्तिम लेख में संवत्सरका उल्लेख यद्यपि नही है तथापि वार्हस्पत्य संवतसरका अनयासही हम परिचय प्राप्त कर सकते है। जयसिंहकी शक ६६३ वाली प्रशस्ति में विरोधिकृत और शक ६६५ वाली प्रशस्ति में प्रमादि संवतरका उल्लेख है। संवतसरके ६० नामवाले चक्र पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है कि विरोधी संवतसरसे पांचवा और प्रमादि संवतरसे तीसरा स्थान निम्नभाग में वार्हस्पत्य संवतसरका है। एवं ६६३ से पचंवी और ६६५ से तीसरी संख्या ६६८ है। अत' सिद्ध हुआ कि विक्रमादित्य शक ६६८ के भाद्रपद के पश्चात किसी समय सोमेश्वरको हठाकर गद्दी पर वैठा था। इस लिये प्रस्तुत लेखकी तिथि शक ६६८+३=१००१ है।

जयसिह के शक ६६३ वाली प्रशस्ति से हमें ज्ञात है कि 'विक्रमादित्य के सोमेश्वर के शत्रु कांचीपति वीर राजेन्द्र चोल से मिलजाने परभी उसने युद्धक्षेत्र में अपने स्थानको नही छोड़ा था और सोमेश्वरकी रक्षा की थी। एवं शक ६६५ वाली प्रशस्ति से भी जयसिहका सोमेश्वर पर अनन्य प्रेम प्रकट होता है। अतः विचारनीय है कि शक ६६५ और ६६८ के मध्य विक्रमादित्यने जयसिह को किस प्रकार सोमेश्वर से विमुख कर अपना साथी वना लिया।

विल्हण के विक्रमाङ्क देव चरित्रकी पर्यालोचनसे हमें ज्ञात है कि विक्रमादित्य ने सर्व प्रथम सोमेश्वर के विश्वास पात्र सामन्त गोपपठन गोकर्णपति कदमवंशी जयकेशी प्रथमको अपना मित्र वनाया और वहांसे आगे वढ़ कर कुछदिनो वनवासी में रहा। वादको वह चोल देशके प्रति युध्ध करनेको चला तो चोल राज ने सुलह कर विक्रम के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

परन्तु हमारी समझमें विल्हणने यहांपर केवल डीग मारी है। राजेन्द्र चोलके लेखका अवतरण देकर जयसिहकी शक ६६३ वाली प्रशस्ति में हम विक्रमादित्य का युद्धक्षेत्र में सोमेश्वर का साथ छोड राजेन्द्र चोल से मिल जाना दिखा चुके हैं। यहां पर हम विल्हण कथित कोंकन पति जयकेशी के लेख का अवतरण देकर चोल नरेशकी मैत्री संवंधी विल्हण के पोलका भण्डा फोड करते हैं। वोम्वे रायल एसिआटिक सोसाएटि के जर्नल जिल्द ६ पृष्ठ २४२ में प्रकाशित जयकेशी के लेखके वाक्य "तत. प्रादुर्भूत श्रीमान जयकेशी महीपति चौलुक्य चौल भुपालौ कांच्यां मित्रे विधायय."से प्रकट होता है कि जयकेशी ने वीर राजेन्द्र चोल और विक्रम के मध्य मैत्री कराया था। यद्यपि विल्हणका भण्डा

फोड उधृत अवतरणसे पर्याप्त रूपेण हो जाता है, तथापि कोकण पति जयकेशी और विक्रमकी मैत्री पर प्रकाश नही पडता । अत जयकेशी के बोम्बे व रा ए जो जि ६ पृष्ठ २४२ मे प्रकाशित लेखका अवतरण देते है।

" नियगाप्राप्त कीर्ति श्री जयकेशी नृपोऽभवत ।
भूभृत नाण परायण पृथुयशा गभीर्य रत्नाकर
श्री प्रेमार्डि नृप पयोनिधिनिभ सोमानुजा कन्यका।
यस्मै विस्मयकारी भूरी विभवै देवेन कोपान्भि
ख्यात श्री पत्तये म मेमल महादेवीं कृतार्थोऽभवत ॥ "

उधृत अवतरणका अभिप्राय यह है कि विक्रमादित्यने अपनी मैंमल महादेवी नामक कन्याका जयकेशी प्रथम के साथ विवाह कर दहेज में प्रचूर धनराशी तथा हाथी घोडे आदि दिये ।

इस लेखका समर्थन जयकेशीके उत्तराधिकारी तथा पुत्र शिवचितिके उक्त जर्नल के पृष्ठ २६७ मे प्रकाशित लेख से होता है।

" स कोकणक्ष्मातल रत्नदीप स्तम्भा न्थासी ज्जयकेशि भूप ।
साहित्य लीला ललिता भिलाप सभावितानेक सुधी कलाप ॥
चौलुक्य वशेऽथ जगत्प्रकाश प्रादु र्बभूवो र्जित कोणदेश ।
दिशापतीनामपि चित्तवर्ती पराक्रमी विक्रम चक्रवर्ती ॥
उपयेमे सुता तस्य जयकेशी महीपति ।
स ममल महादेवी जानकी मिव राघव ॥ "

इससे स्पष्ट है कि विक्रम ने जयकेशीको अपनी कन्या और दहेज के बहाने प्रचूर धनराशी देकर अपना मित्र बनाया था। इनकी मैत्री ने विवाह सबधसे परिमार्जित होकर दोनोंको एक उद्देश्य बना दिया था। दोना एक मत होकर सोमेश्वर के विनाश साधन में सलग्न थे। अत इन दोनोको अपना कार्य साधन करनेके लिये सोमेश्वर के शत्रु—नही चौलुक्योंके वे वशगत शत्रु, को मित्र बनाना लाभदायक प्रतीत हुआ। और जयकेशी ने मध्यस्थ बन मैत्री स्थापित कराया था।

अत यह निर्विवाद है कि जयकेशी ने काची पति वीर राजेन्द्र और विक्रम के मध्य मैत्री करायी थी। और जब सोमेश्वर और वीर राजेन्द्र के मध्य युद्ध उपस्थित हुआ तो विक्रम पूर्व निश्चयके अनुसार वनवासीसे युद्धके लिये आया परन्तु युद्ध प्रारभ होते ही युद्धक्षेत्र छोडकर वीर राजेन्द्र के पास चला गया। जिसने विक्रमका बहुतही आदर सत्कार किया और अपने युवराज के समान उसके गले में कन्ठी बाधी। एव उसे अपना चिर सहचर बनाने तथा सोमेश्वर का नाश सपादन करने के विचार से अपनी कन्याका विवाह करके सोमेश्वरसे छीने हुए रट्टपाटी प्रदेश दहेजमें दिया।

विक्रम कोकण के सामन्त जयकेशी को मिला और वीर राजेन्द्र चोड से मैत्री तथा संबंध स्थापित कर चुप नहीं रहा। वरण उसने सेउन देशके यादव वंशी राजा से भी मैत्री स्थापित कर के सोमेश्वर को गद्दी से उतराने में उससे सहाय प्राप्त किया। इस मैत्री का उल्लेख हेमाद्री पण्डित ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ चतुर्वर्ग चिंतामणि के व्रत खण्ड में लगी हुई राज प्रशस्ति में किया है।

समुद्धृतो येन महाभुजेन दिशां विमर्दात्परमर्दि देव।
संस्थापि चौलुक्य कुल प्रदीपः कल्याणराज्येपि स एव येन

जिसका भाव यह है कि सेउन देश के राजा ने अपने बाहुबलसे चौलुक्य कुल प्रदीप परमर्दि देव अर्थात विक्रमादित्यको शत्रुरूपी समुद्रसे बचाकर कल्याणके राज्य सिंहसन पर बैठाया था

इससे स्पष्ट है कि विक्रमादित्य क्रमशः मैत्री आदि द्वारा अपना बल बढ़ा रहा था। और सोमेश्वर के सामन्तो को अपना मित्र बनाता था एव वह उसके शत्रुओं सेभी मैत्री स्थापित कर रहा था। परन्तु उसके मार्ग में जयसिंह, जो सोमेश्वर का परम भक्त एव अद्वितीय वीर था दुर्गम तथा अल्लंघ्य हिमालयवत बाधा स्वरूप खड़ा हो रहा था। अतः विक्रमने किसी प्रकार जयसिंह रूपी बाधाको सोमेश्वर से लडने के पूर्व हटाना उचित माना। जयसिंह को हटाने का केवल दोही मार्ग युद्ध या मैत्री था। युध्दमें जयसिंहको पराभूत करना सहज नही वरण टेढ़ी खीर थी। इस लिये विक्रमने उससे नचलकर द्वितीय मार्गका अवलंबन किया क्योंकि जयसिंह से लडने जाते समय उसे सोमेश्वर और जयसिंह के संमिलित सैनका सामना करना पडता। जिसमे पराजय अथवा शक्ति के ह्रास का भय था। इन्ही सब बातोको लक्षकर विक्रमने बल के स्थान में कौशल से काम लेना उत्तम माना और अपने कपट रूप महा शस्त्रको काम में लाया। यह मानी हुई बात है कि साधारण अर्थ लोभ भी मनुष्यके मनको चलायमान करने में समर्थ होता है। फिर राज्य लोभकी क्या बात है। राज्य लोभ में पडकर पिता पुत्रभी एक दुसरे का घातक देखने में आये हैं। और बन्धु विरोध तो साधारणसी बात है। इस हेतु विक्रम ने जयसिंह पर चौलुक्य साम्राज्य के भावी साम्राट पद रूप अमोघ अस्त्रका प्रयोग किया। अपने बाद चौलुक्य साम्राज्यका जयसिंह को उत्तराधिकारी स्वीकार कर उसे अपना साथी बनाया।

हमारी इस धारणा का समर्थन प्रस्तुत प्रशस्ति के वाक्य युवराज राजा महाराधिराजा परमेश्वर से होता है। युवराज का अर्थ वर्तमान राजा का उत्तराधिकारी है। यदि जयसिंहका विक्रम के बाद चौलुक्य सिंहासनको सुशोभित करना निश्चित न हुआ होता तो वह कदापि अपने लिये युवराज पद का प्रयोग न करता और न विक्रम ही उसे युवराज पद को धारण करने देता। अतः निश्चित है कि विक्रम ने जयसिंहको भावी राज्य पदका लोभ दिखा अपना साथी बनाया था।

---
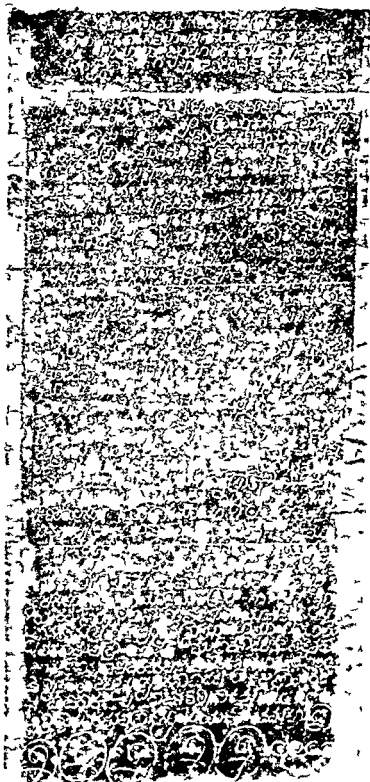
तुम्बर हामक रामेश्वर मन्दिर का शिलालेख।

# तुम्बर होसरू रामेश्वर मन्दिर

## शिला प्रशस्ति ।

ॐ नम शिवाय । पान्तु वो जलद श्याम' सारङ्ग जयाघात् कर्कशः । त्रैलोक्य मण्डप स्तम्भ। चत्वारो हरि बाहवः ॥ गणपतये नमः । स्वस्ति भुवनाश्रय श्री पृथिवी वल्लभ महाराजा परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्या भरण श्रीमत् त्रिभुवनमल्ल देवर विजय राज्य उत्तरोत्तराभि वृद्धि प्रवर्धमान आचन्द्राक तारक सलुत्त इरे। युवराज चौलुक्य पल्लव परमनादि वीर नोलम्ब जयसिंह देवार वनवासे पनि सहस्रमुम् (वनीर्छासिरामु) सन्नालिगे कम्मिरमुमन एरद असनुरूमम सुख सत्कथा विनोदादि आलुत्ताम इरे स्वस्ति चौलुक्य विक्रम कालाद ४ नेय सिद्धार्थी सवत्सरात् माघ शुद्ध १ आदित्य वार उत्तरायण सक्रान्ति व्यतिपात सूर्यग्रहण दन्दु स्वस्ति यम नियम स्वाध्यायध्यान धारणा मौनानुष्ठान जप समाधि शील सम्पन्नार अय श्रीमद् अग्रहारं महा पोम्बुरा उद उदेय पर सुग महाजन ससिर्वरा कायोलु स्वस्ति यम नियम स्वाध्यायध्यान धारणा मौनानुष्ठान जप समाधि शील सम्पन्नार चतुर्वेद वेदान्त सिद्धान्त कृत तर्क सकल शास्त्र पारावार परायणार अय श्रीमद् अग्रहार ईशा वुरदा परवारुच भारद्वाज गोत्री मादर नार्नमाय न पुत्र दिवाकर सर्वा तिथ्थारु होसावुरा भूमियं क्रय दान गोण्ड धारा पूर्वक मादि सत्रके वित्ता गलेय मत्तल एरादु मनर वयाल नदवे वीरगाड वायकोलिम वद्गदल अन्तरीमिं ते न कलु। मत्त क्रय दान गोण्डु पिरिपे केरेगे गारा मुन्वे चित्तकोपि पिरीवंकेरपिं सिन्दगराके परीवरच्छल मोदललु गलेय मतल एरयु इन्त इ-धर्म मालय कालदलु इशावुरद शशिगगम भूतिलाद भुवात्ति रच्चाशिरमं अरियि मदिद धर्मम। मुदरावनाद परगये गोविन्द राज तम्मम कोमराज वरेवर मदगय भारत करणपुर। शिल्पीक ललाट पदम सरस्वति गण्ड पाद पकज भमर जिन पादाराधक पद्योगम शिल्पीकिंकर। इन्त इ शासन धर्मम चन्द्राल्य स्थापियिके मगलमहा श्री।

# तुम्बर होसरु रामेश्वर प्रशस्ति

## का

## छायानुवाद ।

भगवान शिवको नमस्कार ।

भगवान घनश्याम जिनके हाथों में सारंग नाम धनुप की गेदाका आघात होता है और जिनके चारो हाथ संसार रुपी मण्डपको आश्रय देनेवाले विशाल स्तम्भ हैं, कल्याण करे। भगवान गणपतिको नमस्कार। कल्याण हो। जब के सकल संसारके आश्रय भूत पृथिवो पति महाराजाधि राज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वंश भूषण श्रीमान त्रिभुवनमल्ल देव; का उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करने वाला साम्राज्य पौर्णीमाके समुद्र समान लहरा रहा था।

और चौलुक्य युवराज पल्लव परमनादि वीर नोलम्ब श्री जयसिह देव वनवासी द्वादश सहस्त्र, सन्तालिग सहस्त्र और घट सहस्त्र नामक दो प्रदेशों का शासन सुख और शान्तिके साथ करते थे।

उस समय सिध्धार्थी नामक संवत्सर तदनुसार चौलुक्य विक्रम वर्ष के ४ वर्ष माघ शुक्ल प्रदिपदा रविवारको उत्तरायण संक्रान्ति व्यतिपात सूर्यग्रहण महा पर्वके समय यम नियम स्वध्याय ध्यान धारणा समाधि युक्त १००० ब्राह्मणों के अग्रहार के अधिपति यम नियम स्वध्याय ध्यान धारणा समाधि शील सम्पन्न चतुर्वेद ज्ञाता सकल शास्त्र विशारद भारद्वाज गोत्री भटार पोशावारको ननी-माया का पुत्र दिवाकरने होंशावुर ग्राम में भूमि क्रय करके सत्र निमित्त दान दिया।

इस धर्म्मादाका कोई अपहरण न करे। अपहरण करनेवालो को पंच महापातक होगा। इस शासन को मुन्द्रावन पूगदे गोविन्द राजा का छोटाभाई लेखकोंका अनुचर और सरस्वति का कर्णभूषण कामराज ने लिखा।

शिल्पिओंका अग्रणी सरस्वति गणके पदपंकजका भ्रमर जनैन्द्रका अनन्य भक्त शिल्प-कार पद्मजाने इस शासन को शिला खड पर उत्कीर्ण किया।

यह धर्म शासन संसार में सूर्य चंद्र की स्थिति पर्यन्त कायम रहे।

---

# तुम्बर होसरू रामेश्वर प्रशस्ति

## का

## *विवेचन :-*

प्रस्तुत प्रशस्ति मयसूर राज्य के सिमोगा जिल्ला के शिकारपुर तालुका के होसरु होबली के प्रधान ग्राम होसरु के समीप तुम्बर नामक स्थान के रामेश्वर मन्दिर में लगी है। प्रशस्ति का शिला खड ३ १/२X२ १/४ आकार का है। इसकी लिपि हाले कनाडा और भाषा सस्कृत तथा प्राचीन कनाडी मिश्रित है। इसकी लेख पक्तिओं की सख्या ४६ है। इसका उद्देश्य ननीमाया के पुत्र दिवाकर कृत भूमिदानका वर्णन है। प्रति ग्रहिता चतुर्वेदज्ञ, सकल शास्त्र वेत्ता, यम नियम साधन चतुष्ट सपन्न स्वध्यायरत्त भारद्वाज गोत्री पोशावर है। कथित दान उसे सत्र सचालनार्थ दिया गया है। इसका लेखक कामराज और उत्कीर्ण करने वाला शिल्पकार पद्मजा है। इसकी तिथि विक्रम चौलुक्य वर्ष का चतुर्थ वर्ष है।

हम पूर्वोद्धृत प्रशस्ति के विवेचनमें विक्रम चौलुक्य वर्षका प्रारभ शक ६६८ में बता चुके है। अत इस प्रशस्तिका समय १००२ है। प्रदत्त भूमि वीरलोलम्ब जयसिंहदेवके राज्यान्तर्गतथी जयसिंहका विरद युवराज महाराजा था। और उसका अधिराज उसका मझला बडा भाई विक्रमादित्य था। इस प्रशस्ति से जयसिंह के अधिकारमें वनवासी आदि प्रदेशों के अतिरिक्त पट महस्त्र द्वय नामक प्रदेशका भी होना पाया जाता है। पुनश्च जयसिंह के चौलुक्य साम्राज्यका युवराज होनेका स्पष्ट रुपेण समर्थन होता है। इसके अतिरिक्त प्रशस्ति में जयसिंह सबधी कोई अन्य नवीन बात नहीं प्रकट होती।

# तुम्बर होसरु ग्राम में इमली के नीचे वाली

## शिला प्रशस्ति

नमस्तुग स्वास्ति समस्त भुवनाश्रय श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलकं चौलुक्याभरणं श्रीमत् त्रिभुवनमल्ल देवर विजय राज्यं उत्तरोत्तराभि वृद्धि प्रवर्द्धमान आचन्द्रार्क तारावरं सातुत्तमिरे । तस्यानुज वृत्त ॥

विनायक आसपदं आदविक्रमं नोलम्ब विक्रमादित्य दे ।
वन चित्राकंक अवलम्बं आद कालेयं चौलुक्य राम क्षिति ।
शान कोंड एरिद क्रूरम्मे वेल अनुग दम्मं राय कन्दर्प दे ।
वन सम्मोहन पूर्ववानं एनल इन्न एवनियं वन्नीयं ।
यो युन इलायुद इनं दहके हिम नगरादस्यमं लाहन इन्नम् ।
पुगती एन्द इल्दार्थं इन्नं नेलसादे नीवुलं लंकेयीं तेन्कल ओदल ।
वाजेयुग इल्दार्यं इलनं मुलीदायन एनुतुं कोन्कनं सन्केर्पी गुन ।
कु गोलुत्त इल्दायुद एवल्लीदनो चकित विद्वित कदम्बं नोलम्बं ॥

वचन ॥ एनिसिदा समस्त भुवन संस्तुयमान लोक विख्यात पल्लवान्वय श्री मही वल्लभं युवराज राज परमेश्वरं वीर महेश्वरं विक्रमाभरणं जयलक्ष्मी रमण शरणागत रत्नामणि चौलुक्यचूडामणि कडन त्रिनेत्रं क्षत्रिय पवित्रं मत्तगजाङ्कुशं सहज मनोजं रिपुराय कटक सूरेकारण अन्नन अङ्कार श्रीमत् त्रयलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देवर ॥

वृत्त ॥ पुलिगेरी दे—रेय्युमले कासवलं वनवासे नाडुवेल ।
वलं ओलगागी दक्षिण पयोधि वरं नेलन आदुद पल्लवस ।
खलरण इदिरोय सन्तोषदिन अलद अधिकं युवराज लक्ष्मीय ।
दले नेल तालदि सन्तं इरे विरनोलम्ब महामही भुजम् ॥

का ॥ तत्पदज योप सेवा ।

तत्परान् अकलङ्क चरितान् उद्धतरीपु भु ।
भृतपति दण्डाधिप रुम् ।
पद्मावति पतिकार्यं साधकं वालदेवं ॥

वृत्त ॥ जिननाथं स्वामी देवं पति सकल मही वल्लभं सिङ्गिदेवं ।

तुम्बर होमर ( इगली वृक्षशाला ) शिलालेख ।
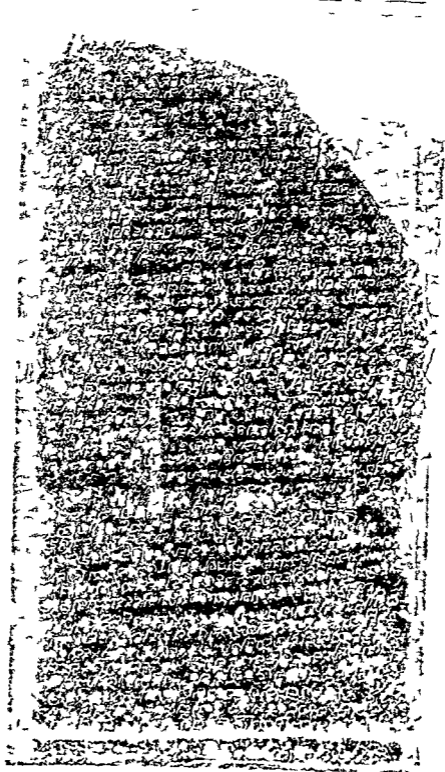
विनुत श्री माकनन्दी व्रतिपति गुरुलाय शान्ति याक सुतनी।
ति निधनं लद्मण आत्माङ्गणे मले नेल्द आमालिका कानेय एन्दाद।
अन्वाय्य दण्डनाथाग्रणी गुणी वालदेव म्वोल आवंकृतार्थम्॥
अरिदाग एम्बलीता वल्लिग असदल इत्कार्थ्यं एम्वली गंस।
ग्राम अम्मुल एन्दद एम्वलिग एरदेगदरु वीदिग एम्बलिग वेल।
पर तन्डक्क ईवेन गम्वल्लिग अतिशूचिय एम्नलिग वालिग वाय।
उरे पार्थेन्द्रेज्य भीमान्तक वली मनुतान् इन्दोद इम घान्य अव॥

का॥ उदावुशिरदुदे कर आर।

पय उदावेलादुदु जैन धर्म ओदन आदिदुद ओलय।
ओदने सल चोक्कुद उन्त एन।
गदेवोल कलतने गुणाऽगर वालदेव॥
आरैयचादे काली काल दोल।
आरम् वालदेवान् ओरेगे उन्दयरे गुणे।
दारतयोल अरिविनोलचाक्।
सरितेयोल दान धर्मावोल परहित दोल॥

वा। एनीय महामीन्नर्ताया नेगलए समधिगत पच महा १६द महा सामन्ताधिपति महा प्रचण्ड दण्ड नायक शिष्टेरा फलदायकं प्रतिपन्न मण्ट—विभव पुरन्दर जिन चरण कमल भृङ्ग माहसो तुग सम्यक्त्वा रत्नाकर बुध कुमुद सुद्राकर पद्मवतीं लब्धवर प्रसाद धर्म विनोद सुजन जन नमससरो जनी—हन्स सरस्वतिकर्णां वतस श्रीमत् अयलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब परलव परमनादि जयसिंहदेव पादाराधक पति कार्या साधक नामादि समस्त प्रशस्ति सहित श्रीदोदण्ड नायक वालदेवेय वनवासे पन्नीरे चठरसिरामुम पडीनेत मग्राहारमुम —मदद सुन्कावु दुष्ट निग्रह शिष्ट प्रतिपालनादि आराद अनुभुगी सुत्त राजधानी वान इरे चौलुक्य विक्रमकाला. ४ नेय सिद्धार्थ सवत्सरात् पुष्यादु अमावास्ये आदि—सक्रान्ति सूर्य ग्रहण दान्दु पन्ना लेय कोटेय नेलेविदि नोल—नोनापदी समस्त प्रधानारा पेलिकेर्यां चौधारे पादेपार वासुदेव—पन्नीरछासीरदा कम्पन एदेवात्ते एल पात्तरा वलीय अग्रहार तेम—कदिर धारम्मके वाहश वुलमुम परे गुन्कामुम हरदं-नलकु लकने अदकेगे पुरदिदु एलम। आचन्द्रार्क-धर्ममन।

# तुम्बर होसरु इमली प्रशस्ति

## का

## छायानुवाद ।

भगवान शंकर कल्याण करें। कल्याण हो। जब सकल संसार के अधारभूत पृथ्वी पति महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वंश विभूषण श्रीमान त्रीभुवनमल्ल देवका उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करनेवाला साम्राज्य पूर्णिमा के समुद्र समान लहरा रहा था और त्रिभुवनमल्लका सद्गुणागार छोटा भाई, उसके हृदयको प्रफुल्ल करनेवाला, एवं परम प्रिय अनग—हृदयको जीतने वाला-अपने सद्गुणों से विक्रमका स्नेह भाजन-काम समान और प्रेम पात्र था इससे अधिक और क्या गुण हो सकता है। जिसके [जयसिंहके] भुजवल प्रताप और शौर्य अग्नि से दग्ध दहल राज्य आज भी निर्भय नहीं हुआ है—लाटपति आज भी उसके शौर्यका स्मरण कर हिमालयके कन्दराओंका आश्रय लेनेके लिये गमनोन्मुख होता है। तेवलआश्रय प्राप्त करनेके लिये लंकासे भी दक्षिण पलायन करता है। कोंकणपति उसके क्रोधित होनेकी आशंका से चिंतित हो रहा है। वीरनोलम्बकीशक्ति कितनी वड़ी है, अहा! जिसके नाम श्रवण मात्रसे शत्रुओंका हृदय दहल जाता है। इस प्रकार आरति समुदायको चिन्तित करने वाला—समस्त संसारमेंस्तुति प्राप्त. और प्रख्यात-पल्लवान्वय-पृथिवी पति-युवराजा परमेश्वर वीर महेश्वर-विजयेन्द्र लक्ष्मी प्रिय-शरणागत वत्सल-चौलुक्य चूड़ामणि-युद्धमें त्रिनेत्र-क्षत्रियोंमें पवित्र-क्षात्र वंश उजागर -सद् मस्त कुन्जर-स्वभावतः कामदेव-शत्रु समूह कदली वन वीदारक-अपने बड़े भाईका परम प्रख्यात तथा प्रचण्ड दौर्दान्त अद्वितीय योद्धा-श्रीमान त्रयलोकमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देव दुष्ट निग्रह और शिष्ट पालन पूर्वक-सुख और शान्ति के साथ दक्षिण समुद्र से लेकर पुलगिरि-रेवु-भाले-केरुवालं-वनवासी-नाड और वेल वालप्रदेशोंकी "युवराज वीरनोलम्ब जयसिंह देव" लक्ष्मीको दृढतासे अंकशायिनी वना शासन करता था। जयसिंहके पादपद्मका भ्रमर सद्-गुणागार शत्रु-नाशक दण्डाधिप अपने स्वामीके कार्यसाधक वलदेव था। जिसका पारलौकिक स्वामी जिनेन्द्रनाथ था। और लौकिक स्वामी पृथ्वीपति सीगीदेव अर्थात जयसिंह एवं गुरुव्रत पति मार्कन्डेय मुनी-माता शान्तियाक-पत्नी मल्लिका और पुत्र लक्ष्म था। दण्ड नायक वलदेव के समान संसारमें कौन भाग्यशाली है। इस प्रकार महिमा प्राप्त-पञ्च महा शब्दका अधिकारी-महा सामन्ताधिपति-महा प्रचन्ड—दण्ड नायक—सरस्वति कर्ण भूषण—त्रिलोकमल्ल वीर नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देव का चरण किंकर—स्वामी कार्य साधक महा सामन्त वलदेव वनवासी द्वादश सहस्र और अठारह अग्रहारोंका शासन करता था और उसके अधिकार में राज्यधानी वलिपुरका मार्ग शुल्क था। महासामन्त दण्ड नायक वलदेव-जव पानली काननमें निवास कर रहा था-उससमय चौलुक्य विक्रम वर्ष ४ के पुन्य अमावास्या तिथि उत्तरायण संक्रान्ति सूर्य ग्रहण के समय समस्त मंत्रियों के आग्रह से तेवल्वे सहस्र के कम्पन्न एरवादि सप्तती अन्तर्पाती कठ अग्रहार का कर माफ किया।

# तुम्बर होसरू इमली शिला प्रशस्ति

## विवेचन :-

प्रस्तुत प्रशस्ति तुम्बर होसर ग्राम की उत्तर दिशा में एक इमली के वृक्ष के नीचे उत्कीर्ण है। तुम्बर होसरु ग्राम के सबध में हम पूर्वोद्धृत प्रशस्ति क विवेचन में विचार कर चुके है। प्रशस्ति का शिला खड ७X२ १/२ है। और लेख पक्तिओ की सख्या ५१ है। इसकी लिपि हाले कानाडा और भापा सस्कृत और कनाडी मिश्रित है। प्रशस्ति मे पूर्ववत् विक्रमको अधिराज और वीरनोलम्ब जयसिंह को युवराज वर्णन किया गया है। इन दोनो के अतिरिक्त जयसिंह के सामन्त तथा दण्डाधिप बलदेव का उसके प्रतिनिधि रूपसे बनवासी प्रदेशका शासन राज्यधानी बलीपुर में रह कर करना लिखा गया है। प्रशस्ति का उद्देश्य अन्यान्य मन्त्रिओ और सामन्तों के आग्रहसे कर माफ करने का वर्णन है।

प्रशस्ति के पर्यालोचनसे विक्रम और जयसिंह मे परम सौहार्द्य प्रकट होने के साथ ही जयसिंह के प्रचण्ड शौर्य का दिग्दर्शन होता है। प्रशस्ति से प्रकट होता है कि उसने दाहल, लाट और अन्यान्य नरेशोंको विजय किया था और उससे कोकण पति सशकित था। प्रशस्ति म जयसिंह से पराभूत किसीभी राजा का नाम नहीं दिया गया है। अत यह निश्चिय के साथ नही कहा जा सकता कि कथित देशो के किस राजा को उसने पराभूत किया था।

जयसिंह के समय कोकण में अनेक छोटे मोटे राजवश राज्य करते थे। गोवा के कदमवशी, कोल्हापुर और करहाट के शिल्हरा एव उत्तर कोकण (स्थानक) के शिल्हरा। इनके अतिरिक्त अन्यान्य वश सभूत अनेक छोट मोट माण्डलीक सामन्तो का आधिपत्य था। तथापि हम कोकण पति से गोवा के कदमवशी जयकेशी का उल्लेख मानते है। हमारे इस प्रकार माननेका कारण यह है कि विक्रमादित्य के साम्राज्य में उसका प्राबल्य था और वह अपना एकाधिपत्य स्थापित करने में प्रवृत्त था। अपने इस मनोरथको सफल करने के लिये आकाश पाताल के कुलावे मिला रहा था। उसके इस विचार का बाधक यदि कोई था तो वह जयसिंह था। पुनश्च इन दोनों म मनोमालिन्य पूर्व से चला आ रहा था। अत जयसिंह की शक्ति वृद्धि और शौर्य का समुद्रवत प्रबल प्रचण्ड प्रवाह देख उसका सशक होना स्वभाविक है।

आगे चल कर प्रशस्ति जयसिंह के कोपाग्नि में दाहल राज्य का भस्म होना प्रकट करती है। दाहल चेदी राज्य का नामान्तर है। चेदीकी राज्यधानी उस समय त्रिपुरी नामक नगरी थी। सम्प्रति त्रिपुरी को तेवर कहते है और यह मध्य प्रदेश के जबलपुर नामक जिला के अन्तर्गत है। दाहल नरेशों के साथ चौलुक्यों के सधि विग्रह का परिचय हमें अनेक बार मिल चुका है। मर्व

प्रथम दाहल और वातापि अर्थात कलचुरियों और चौलुक्यों के दो दो हाथ होनेका परिचय हमे मंगलीश के राज्य समय में मिला था । पश्चात तैलप द्वितीय को भी कलचूरीओं के साथ भीडते देखते हैं। अनन्तर जयसिंह के पिता आहवमल्ल और दहल-चेदी पति करणको रणाङ्गणमें हाथ मिलाते पाते है । जिसमें करण पराजित और आहवमल्ल विजयी हुआ था। करण और आहवमल्ल के इस युद्ध का वर्णन कवि बिल्हण ने बडे विस्तार के साथ किया है। बिल्हण के कथनमें यद्यपि अतिशयोक्ति आपादित. पाई जाती है तथापि प्रवुर की शिला प्रशस्ति से उसका अंशतः समर्थन होता है। पुनश्च सोमेश्वर द्वितीय के राज्यकालीन वेलगांव से प्राप्त लेख से भी आहवमल्ल के मध्य प्रदेश पर आक्रमण करनेका समर्थन होता है। इतनाही नहीं चेदि पति करण को आहवमल्ल के साथ मालवा के परमार राज पर आक्रमण करते पाते हैं।

अतः हम कह सकते है कि आहवमल्ल की मृत्यु पश्चात और सोमेश्वर द्वितीय तथा विक्रमादित्य के विग्रह समय चेदि पति करण के पुत्र और उत्तराधिकारी यशस्करण ने कुछ उत्पात मचाया हो जिसे जयसिंहने अपने शौर्य का परिचय दे पूर्ण रूपेण दाहल राज्यको अपने कोपाग्नि का ग्रास बनाया हो। जयसिंह और यशस्करण के युद्धका प्रस्तुत प्रशस्तिमें उल्लेख होने और आच-पुर वाली में न होनेसे प्रकट होता है कि उक्त युद्ध शक १००१ और १००३ के मध्य हुआ था।

पुनश्च प्रशस्ति हमें लाट पति को जयसिंह के शौर्यसे भयभीत होने वाला और छिपनेके लिये पलायन करने को सदा कटिबद्ध रहना बताती है। अब विचारना है कि प्रशस्ति कथित लाटपति कौन है। लाटपति की उपाधि बारपके वंशजों की थी। बारप को लाट देशका सामन्तराज चौलुक्य राज्योद्धारक तैलप देव द्वितीय ने बनाया था। बारप के पौत्र कीर्तिराज वातापि की आधीनता यूपको फेंक स्वतंत्र बन गया था। कीर्तिराज का शासन पत्र शक ९४२ का हमे प्राप्त है। कीर्तिराज के बाद उसका पुत्र वत्सराज लाटकी गद्दी पर बैठा और उसके बाद त्रिलोचनपाल लाट देशका स्वामी बना। त्रिलोचनपाल का शासन पत्र शक ९७२ का हमें प्राप्त है। त्रिलोचनपाल के पश्चात हमें त्रिविक्रमपालका शासन पत्र शक ९९९ का उपलब्ध है। कथित तीनों लेख चौलुक्य चंद्रिका लाट नन्दिपुर खण्ड में हम अविकल रूपसे उधृत कर चुके है। शक ९९९ के लेख से प्रकट होता है कि उक्त शक में त्रिविक्रमपाल लाटकी गद्दी पर पाटनवालोंको पराभूत कर बैठा था। उक्त शासन पत्र और प्रस्तुत प्रशस्ति के मध्य केवल तीन वर्षका अन्तर है। अतः प्रस्तुत प्रशस्ति कथित लाटपति बारपका वंशज त्रिविक्रमपाल है।

संभव है, चेदिपति यशस्करणको शिक्षा देने के लिये जाते समय जयसिंह ने लाट-पति त्रिविक्रमपालको भी कुछ अपने शौर्यका परिचय दिया हो और लाठ, उत्तर कोकण और मालवा की सीमा पर कुछ अपने सैनिकरख छोडा हो जिनकी उपस्थिति त्रिविक्रमपालको सदा सशंकित किये हो। बहुत संभव है कि प्रस्तुत प्रशस्ति कथित कोकण पति उत्तर कोकण का शिल्हरा राजा हो। यद्यपि हमने पूर्व में कोकण पति से गोवापति कदम्बवंशी जयकेशि का ग्रहण करनेका विचार प्रकट किया है परन्तु उत्तर कोकण के शिल्हरों का माण्डलिक होते हुए

भी अभिमान भरे विरुदों का अपने नाम के साथ लगाना और स्वातन्त्र्य प्रदर्शक उपाधियों का धारण करना देख उनकाही कल्याण के चौलुक्य वंश के गृह कलह से लाभ उठाने में प्रवृत होना अधिकतर संभव है। यदि जयसिंह ने लाट और डाहल वालों के समान उत्तर कोकण के शिल्हराओंको भी कुछ शिक्षा दी हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यदि ऐसी बात हो तो विचारना होगा कि उत्तर कोकण का शिल्हरा राजा कौन हो सकता है।

उत्तर कोकण अथात स्थानक के शिल्हरोंकी वंशावली पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि मुममुनिका राज्यकाल शक ९८० से १००० पर्यन्त है। मुममुनिके उत्तराधिकारी का राज्य शक १०००-१००३ से प्रारंभ होता है। मुममुनिका उत्तराधिकारी अनन्तदेव है। अत प्रस्तुत प्रशस्ति कथित युद्धकी समकालीनता मुममुनी और अनन्तदेव के साथ निभ्रान्तरूपेण ठहरती है। इनमें से एक के राज्य के अन्त और दूसरे के प्रारंभ काल में ही जयसिंह ने लाट और डाहल विजय किया था। अत हम कह सकते हैं कि इनमें से किसी एक को जयसिंहके प्रचण्ड शौर्यका परिचय मिला होगा।

अब यदि हम इन दोनों के राज्यकालीन उत्तर कोकण के शिल्हरा राजवंशकी अवस्था का कुछ परिचय पा जाय और उसमें कुछ अवकाश हमारे अनुमानको स्थान पाने का मिले तो हम निश्चित सिद्धान्त पर पहुच सकते हैं। मुममुनि के अन्त और अनन्तदेव के राज्यरोहण का हमें कुछभी स्पष्ट परिचय नहीं मिलता। परन्तु १००३ के लेखसे उसका उत्तर कोकणकी गद्दी पर उपस्थित होना पाया जाता है। पुनश्च अनन्तदेवके अपने शक १०१६ लेख से प्रकट होता है कि उसके हाथ से राज्य सत्ता छीन गई थी और उसके किसी सबंधी के हाथमे चली गई थी। जिसका उद्धार उसने उक्त शक १०१६ के लगभग किया था। इसके अतिरिक्त विक्रमादित्य के जामात्र जयकेशि के लेखो से प्रकट होता है कि उसने युद्ध में कोकण पति कापर्दि द्वीपनाथ को मार गोप पटन तथा उसके चतुर्दिक्वर्ति भूभाग जो कोकण नवशत के नामसे विख्यात था, मिला लिया था।

अब यदि जयकेशि के इस विजयको और नवशत कोकणको अधिकृत करनेकी घटनाको जयसिंह विजय के साथ मान लेव तो मानना पडेगा कि स्वत विजय यात्रा में जयकेशि जयसिंह के साथ था। परन्तु इस प्रकार मानने में दो बाधाएं सामने आती हैं। प्रथम बाधा यह है कि विक्रमादित्य के कल्याण राज प्राप्त करने के पूर्व ही जयकेशि के अधिकार में गोप पटन था। और उस समय जयकेशि सोमेश्वर का परम स्नेहास्पद सामन्त था। जयसिंह और विक्रमका उस समय मेल नहीं था। पुनश्च १००० वाली प्रशस्ति में जयसिंह के डाहल लाट और कोकणपतिको भय भीत करनेका उल्लेख नहीं है। अत जयसिंह के आक्रमण समय मुममुनि नहीं वरण अनन्तदेव था। जिसे राज्य च्युत कर जयसिंहने उसके किसी सबधीको संभवत स्थानक के शिल्हरा राज्य सिंहासन पर अपनी आधीनता स्वीकार करा बैठाया हो। जिसका समर्थन अनन्तदेवके उक्त शक १०१६ वाली प्रशस्ति से होता है। संभवत अनन्तदेवको स्थानक का राज्यसिंहासन अपने

संबंधी के हाथसे पुनः प्राप्त करने में विक्रमादित्य और जयसिंह कि परस्पर विग्रह और जयसिंह के पराभव से सहायता मिली हो। चाहेजो हो परन्तु हमारी समझ में जयसिंह ने लाट और दाहल विजय समय स्थानक के शिलहार अनन्तदेवको गद्दीसे उतारकर उसके किसी संबंधी को गद्दीपर बैठाया था। और इन दोनों राज्य तथा दाहल के मध्य कही न कही अपनी सेनाको रखा था जिसका आतंक इनको भयभीत किये हुए था।

प्रस्तुत प्रशस्ति से प्रकट होता है कि जयसिंह के अधिकार में - पुलगिरि - रेवु - माले केशुवलाल - वनवासी और वेल वाले आदि प्रदेश थे और उसकी राज्यधानी वलिपुर नामक स्थान में थी। वलिपुर का वर्तमान नाम वलेगम्वे है। और वनवासी से लगभग ३०-३५ मील दक्षिण पूर्व मयसूर राज्य के सीमोगा जिला में है। वलिपुर नगर बहुत प्राचीन स्थान है। स्थानीय कथानक के अनुसार तो वह सत्युग में होने वाले दैत्यराज वलि की राज्यधानी थी। और भगवान रामचंद्र और युधिष्ठिर आदि पाण्डवगण उक्त स्थान में आये थे। यदि कथानक को सर्वांशतः हम न भी स्वीकार करें तोभी हमे यह मानना पडेगा कि वलिपुर वनवासी प्रदेश और वनवासी नगर का समकालीन है। और वनवासी प्रदेश के मौर्यवंशोदभव अधिपतियों के समय राजनगरी होनेका सौभाग्य प्राप्त कर चुका है।

हमारी समझ में तिथि के संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्रशस्ति शक संवत १००२ की है। क्योंकि इसकी तिथि चौलुक्य विक्रम संवत ४ है। एवं प्रस्तुत प्रशस्ति का विवेचन समाप्त करने पूर्व यदि हम वीर नोलम्ब जयसिंह के अधिकार गत प्रदेशों का विचार करें तो असंगत न होगा क्योंकि प्रस्तुत प्रशस्ति हमारी चौलुक्य चंद्रिका में जयसिंहसे संबंध रखने वाली प्रशस्तियों में अन्तिम प्रशस्ति है।

वीर नोलम्ब जयसिंह से संबंध रखने वाली प्रथम प्रशस्ति शक ६६६ और अन्तिम शक १००२ वाली है। और इन प्रशस्तियों की सख्या ७ है। हम यहां पर निम्न भागमे क्रमशः प्रशस्तियों का नाम दे उनके समानन्तर में कथित प्रदेशों का नाम देते हैं।

| संख्या. | प्रशस्ति. | | प्रदेश. |
|---|---|---|---|
| १ | शक ६६९ अराकिरी प्रशस्ति | – | कोगली |
| २ | शक ६७६ नेरल गुन्डी प्रशस्ति | – | ददिरवलिग सहस्र - बलकुन्डे त्रयशत और कुन्डेरम |
| ३ | शक ६६३ जत्तिग रामेश्वर प्रशस्ति | – | गोन्देवाडी |
| ४ | शक ६६५ हुलेगाल प्रशस्ति | – | सुलगाल |
| ५ | शक १००१ आचपुर प्रशस्ति | – | वनवासी द्वादश सहस्त्र और सन्तालिग सहस्त्र |

६ – शक १००२ तुम्बर होमम प्रशस्ति — वनवासी द्वादश सहस्र, सन्तालिग और पटसहस्र द्वय

७ – शक १००२ तुम्बर होमम द्वितीय प्रशस्ति — पुलगिरि - रेबु माले वेंगुवाल वनवासी द्वादश सहस्र और वेलवाट प्रदेश

इन प्रदेशोंके अतिरिक्त भुवनमल्ल सोमेश्वर के लेखोंसे प्रकट होता है कि उसने गद्दीपर बैठने पश्चात जयसिंह को पोरविन्दु और नोलम्ब वाडी नामक दो प्रदेश दिये थे। इनमे पोरविन्दु का नामान्तर गोन्दवाडी है। पर गोन्दविन्द का उल्लेख शक ६६० की प्रशस्ति में आगया है। अत जयसिंह के अधिकार युक्त प्रदेशों म केवल एक की वृद्धि होती है। अपरञ्च कर्नाटक देश इन्स्क्रिप्शन नामक ग्रंथ के वोल्युम १ पृष्ठ २८४ और २८६ में प्रकाशित हलगुंड और वालवीड के शक ६६६ - १००२ - १००३ और १००४ के लेखों से जयसिंह के युक्त प्रदेशोंका नाम बेलवला, सन्तालिग वासवली और पुलगिरि पाया जाता है। इनमे पुलगिरि और सन्तालिग का उल्लेख प्रशस्ति सख्या ६ और ७ म है। अत केवल बेलवला और वासवली नामक दो प्रान्त ही नये रह जाते है।

उक्त सूचि पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है कि वनवासी द्वादश सहस्रका अन्तिम तीन प्रशस्तिओम और सन्तालिग का दो प्रशस्तिम नाम आया है। अत यदि हम इन पुनरुक्तिओ का परित्याग कर तामी विशुद्ध रूपसे जयसिंह के अधिकार में निम्नलिखित १८ प्रदेश पाये जाते है। १ - कोगली, २ - नन्दियलिग, ३ - बलकुन्दा प्रयशत, ४ - कुन्दूर, ५ - गोन्दवाडी, ६- मुलगाल, ७ - वनवासी द्वादश सहस्र, ८ - सन्तालिग सहस्र, ९ - पुलगिरि, १० रेबु, ११ माले १२ - पट सहस्र द्वय, १३ - वेंगुवलाल, १४ - वेलवाडी, १५ - नोलम्ब वाडी, १६ - वासवली १७ - ताडम्बाटी और १८ - बलवला।

जयसिंह के अधिकृत प्रदेशोंका वर्तमान परिचय प्राप्त करना असभव है तथापि यथा-साध्य कुछ कर परिचय देते है।

१ – कोगली

२ – नन्दियलिग

३ – बलकुन्दा प्रय शत

४ – कुन्दुर - का नामान्तर कुन्डी और कुन्दी है। यह कुन्डी त्रि सहस्र नामसे प्रख्यात था। इसके अन्तर्गत वेलगाव जिला का अधिकाश प्रदेश और कलादगी बीजापुर का दक्षिण पश्चिम भूभाग शामिल था। यह प्राचीन कुन्तल का एक विभाग है।

५ – गोन्दावाडा (पोरविन्द)

६ – शूलगाल

७ – वनवासी द्वादश सहस्र – इस प्रदेशमें मुम्बई प्रान्त के उत्तर कनाडा और मयसूर राज्य के सिमोगा जिल्ला का अधिकांश भूभाग सामिल था। इसका एक भाग नागर खण्ड के नाम से प्रख्यात था। वनवासी की राजधानी वलिगाम्वे, जिसका नामान्तर वलिगाव और वलिग्राम आदि है, थी।

८ – सन्तालिग सहस्र – मयसुर राज्य का सिमोगा और कुदूर जिला का भूभाग। यह प्रदेश वनवासी प्रदेश से दक्षिण में अवस्थित था।

६ – पुलगिरि – धारवार जिला के अन्तर्गत है। इसका नामान्तर लक्ष्मेश्वर है। और यह पुलगिरि त्रयशत के नामसे प्रसिद्ध था।

१० – रेवु

११ – माले

१२ – प. सहस्र द्वय

१३ – वलवीड

१४ – नोलम्ब वाडी – यह मयसूर राज्य के सिमोगा जिलासे पूर्व में अवस्थित था। और इसमें दूर्ग जिला का प्रायः समस्त भूभाग था। यह त्रयशत सहस्र नामसे प्रसिद्ध था।

१५ – केशुवाल

१६ – वासववली (सहस्र)

१७ – ताडवाडी – विजापुर जिला के अन्तर्गत और इसमे वादामी का अधिकांश भाग संमिलित था।

१८ – वेलवोला – इसमे धारवार और वेलगांव जिलाओ का अधिकांश भूभाग संमिलित था। यह वेलवोला त्रयशत नामसे प्रसिद्ध था।

इससे प्रकट होता है कि जयसिंह के अधिकार में एक वहुत वडा प्रदेश था। जिसमें वम्बई प्रदेशके धारवार-विजापुर, वेलगांव और उत्तर कनाडा एवं मद्रास प्रान्तके वेलारी और मयसूर राज्य का उत्तर पूर्वीय समस्त प्रदेश था। हमारी समझमें प्रशस्ति का सांगो पांग विवेचन हो चुका और यदि कोई वात शेष है तो वह यह है कि जयसिंह के अधिकृत कुछ प्रदेशों के वर्तमान नामादि और अवस्थान का परिचय नही प्राप्त कर सके। अन्यथा कोई विचारनीय वात शेष नही रही है।

# मंगलपुर वसन्तपुर पति चौलुक्य राज

## केसरी विक्रम श्री जयसिंह

का

## शासन पत्र

१। ॐ स्वस्ति। ॐ नमो भगवते आदि वाराह देवाय श्रीमता सकल भुवनेषु संस्तूयमानाना मानव्यस गोत्राणा हारीति पुत्राणा भगवन्नादि वाराह वर प्रसादा दवाप्त राज्याना तत्प्रासाद तदमासादित वर वा (ह) ला छण क्षणेन वशीकृताराति विल मण्डलाना अश्वमेधाव भृत्थ स्नानेन पवित्री कृत गात्राणा चौलुक्य नाम न्वये दक्षिण पथे वातापिपुर मण्डल धानाधिनाथो महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री ज (य) सिंह स्ततपादानुध्यात्त स्तुत्रो महाराधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री (श्र) मिश्वरदेवश्चा हवमल्लः तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो महाराजा श्री जयसिंहदे (वो) ऽ परनामा सिंहणेति त्रिलोकमल्ल वीरत्नोलम्ब पल्लावादि तालदवा (डी) गोनम्बावेन्द लोलम्बवाडी वेलम्बला पुलगिर वामवली वानवाली युवराज

२। सोऽपि चेलुक्यचन्द्रः देव दुरहया पाण्डवास्समो च्छिन्नपद स्वतस कुल परिहारार्थं काननं जगाम। कलि काले गते सति तत्पुत्र स्केसरी विक्रमश्चापर नामा विजयसिंहो बालार्क द्युतिसम न्याप्त तेऽपि चौलुक्य वशाब्धि विवर्धेन्दु पितृव्य राज्यमन्तरित्वा सह्याद्रि गिरि गह्वरे स्वभुजेणा पार्जित साम्राज्ये मगलपुर्या स्वराज्यधानीं कृत्वा वाराह ध्वजचारोपितः

३। एकदा साम्राज्यस्य निजयप्रान्तर्गत विजयपुरे प्राति वसतस्त्र तपत्पा स्नात्वा लक्ष्म्यावातपा पीडित दिपशालाव च्चाचल्यं विदय संसारस्यासारततामनु भूय जीवनस्य च क्षणभगुरत्त्व द्रष्ट्वा धर्मस्ये चातुर्गामित्व मुपलक्ष्य स्व माता पित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोऽभि वृधि कान्क्षया

४। वनवासी प्रत्यागत स्व पुरोहित पुत्राय भारद्वाजस गोत्राय त्रिप्रव·ाय अध्वर्यु नैतरीय शाखाध्यायी सोमशर्मणे विजयपुर प्रान्त मण्डले प्रावर्त्य विषयान्तपाति वामनवलग्राम तृण गोचर सवार्य पूर्व ब्राह्मण दाय वर्ज्य जल पूर्वक स्मामि प्रदत्त सुविदित मस्तुवः समस्त राजपुरुषा न्पदकलादि कर्षकैश्च सर्वाय मभिरवि चेदेन दातव्यं।

५। अस्य ग्रामस्य सीमानः पूर्वतः सूर्यतन्या नदि। दक्षिणतोऽपि सागव पाश्चिमतः खाण्डव वनं। उत्तरतः श्यामावली मद्वंशजैरन्यैरपि केनाचिदपि बाधान कर्तव्यं। बाधाकृते सति पंच महा पाताकानि भवन्ति पालने महात्पुण्यमपि भवाति उक्तं च

६। सामान्योऽयं धर्म सेतु नृपाणां काले पालनियो भवद्भिः स्ववंशजो वा पर वंशजो वा रामोवत् प्रर्थयते महीशाः
यानीह दत्तानि पुरा नरन्द्रै धर्मार्थ कामानि यशस्कराणि।
निर्माल्यवान्त प्रतिमानि तानि कोनाम साधु पुनरा ददति

बहुभि र्वसुधा भुक्ता राजभि सगरादिभि:
यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलं
कायस्थ वालमान्वाय कृष्णदत्तस्य सुनुना।
हरदवेन कृतं काव्यं लिखितमपि शासनम्।
नव चत्वारिंश च्चाद्रे रुद्र संख्या शते गते।
माघे कृष्णे च द्वादशां विक्रमार्क संवत्सरे।
अंकतोऽपि ११४०, विक्रमार्क संवत्सरे माघ कृष्ण १२ कृतकोऽत्र महा सन्धि विग्रहिक नरदेव सुनु हरदेव इति।

———

# मंगलपुर वसन्तपुर प्रशस्ति

का

# छायानुवाद.

१ — कल्याण हो। भगवान आदि वाराह देव के लिये नमस्कार। सकल संसार के स्तुति पात्र मानव्य गोत्री हारीति पुत्र, भगवान वाराह की कृपासे राज्य और वाराह लक्षण प्राप्त, एवं वाराह लक्षणकी छायामें शत्रु मण्डलको वशीभूत करने वाले, अश्वमेध अश्वमूल्य स्नान द्वारा पवित्र शरीर, चौलुक्य वंश में दक्षिण पथ में वातापि नाथ महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री जयसिंह हुए। श्री जयसिंह देवका पादानुध्यान उनका पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक आहवमल्ल सोमेश्वर हुआ। श्री सोमेश्वर देवका पुत्र उसके पाद पद्मका भ्रमर वनवासी युवराज त्रयलोक्यमल्ल पल्लव परमानादि वीरलांछ श्री जयसिंह देव उपनाम सिंण देव हुआ।

२ — श्री चौलुक्य चंद्र जयसिंह देवको दैवकोप समान पाण्डवो के समान अपने अधिकार से वंचित होकर विपत्काल क्षेपनार्थ जंगल में जाना पड़ा। जयसिंह के वनवास काल में ही कुछ दिनो पश्चात उसका पुत्र केसरी विक्रम उपनाम विजयसिंह मध्यकालीन सूर्य प्रभा समान व्याप्त शौर्य एवं चौलुक्य वंश समुद्र को प्रफुल्लित करनेवाला पूर्ण चन्द्र अपने चचा के राज्य की सीमा पर अपने भुजबल से सह्याद्रि उपत्यका के भूभागको अधिकृत कर मंगलपुरी में वाराहध्वज को स्थापित कर उसे अपनी राजधानी बनायी।

३ — इसप्रकार अपने राज्य के विजयपुर प्रान्त के विजयपुर नामक ग्रामे में निवास करते समय तापी नदी में स्नान करने पश्चात लक्ष्मीको वायु पिडीत दीप शिखा समान अस्थिर देख ममाकी असारता तथा मानव जीवनकी नश्वरता का अनुभव कर पुनश्च मनुष्य का परलोक में धर्म केवल एक साथ मात्र देने वाला विचार अपनी माता और पिता तथा अपने पुण्य और यश वृद्धि की इच्छा से

४ — वनवासी से आये हुए अपने पुरोहित के पुत्र भारद्वाज गोत्री त्रिप्रवर तैतरीय शाखाध्यायी अध्वर्यु सोमशर्मा को विजयपुर प्रांत नामक मण्डलके पार्नय विषयान्तर्पाती वामनवटी नामक ग्राम तृण गोचर आदी के साथ पूर्व दत्त ब्राह्मण दाय आदी का छोड़कर जल द्वारा संकल्प पूर्वक दिया। समस्त राज पुरुषो, पटेलो और चर्चकको इस ग्रामकी आय ब्राह्मणको बिना किसी बाधा के देना चाहीए।

५ — इस ग्रामकी सीमा। पूर्व सूर्यकन्या नदी।

दक्षिण "

पश्चिम खाएडव वन ।
उत्तर श्यामावली

हमारे वंश के अथवा अन्य वंशके किसीको भी इसमें बाधा उपस्थित नही करना चाहिए बाधा करनेवाले को पांच प्रकारकी महा पातक होता है । उसी प्रकार पालन करने वाले को महा पुण्य होता है . कहा गया है

६--राजाओं का यह धर्म है कि चाहे अपने अथवा अन्य वंशजोंका यशवृद्धि करनेवाला धर्म कामना से दिया हुआ ही दान क्यों न हो । उसे नीर्माल्य मान उसकी रक्षा करे क्योंकि पूर्वदत्त दानका अपहरण साधु पुरुष नही करते - ऐसी याचना भावी नरेशों से हम करते हैं ।

इस संसार में वसुधाका भोग सगर आदी अनेक राजाओं ने किया है । परन्तु जिस समय वसुधा जिसके अधिकारमे रहती हैं उस समय पूर्वदत्त दानका फल - रक्षा करनेके कारण उसको ही होता है ।

वालमानव्य कायस्थ कृष्णदत्त के पुत्र हरि दत्त ने इस शासन पत्रकी कविता को किया और लिखा विक्रम संवत ११४६ माघ कृष्ण द्वादशी । इस शासनका दूतक नरदेवका पुत्र हरदेव महा सन्धि विग्रही हैं ।

---

# मगलपुर वसन्तपुर प्रशस्ति
## का
## छायानुवाद ।

प्रस्तुत शासन पत्र सह्याद्रि उपत्यकामें मगलपुरी नामक नवीन चौलुक्यराज माथापर श्री वीजयसिंहदेव केसरी विक्रमका शासन पत्र है। यह छह भागामे बटा है। प्रथम अशसे लेकर पाचवे अश पर्यन्त शासन पत्र गद्यम है। छठेका अतिम भाग गद्य और शेष पद्य है।

प्रथम अशका प्रारभ स्वस्ति से किया गया है। अनन्तर वाराहकी स्तुति आर चौलुक्या की परंपरा गत रूढी दी गई है। पश्चात वशावलीका प्रारभ होता है। वशावलीम शासन कर्ता पर्यंत कुल चार नाम है और उनका क्रम निम्न प्रकारसे है।

जयसिंह<br>|<br>सोमेश्वर<br>|<br>जयसिंह<br>|<br>विजयसिंह

जयसिंह प्रथमका विरुद वातापि नाथ और महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक है। उसी प्रकार सोमेश्वरका विरुद परम भट्टारक महाराजधिराज परमेश्वर और नामान्तर आहवमल्ल है। परतु शासन कर्ता के पिताके नामके साथ बहुत लम्बा चौडा विरुद दृष्टिगोचर होता है। पर उसका नामान्तर सिंहण प्रकट होता है। उक्त विरुद त्रलोक्यमल्ल विरनोलम्ब पल्लवमर्दी तालम्बाडी पोलविन्दु शान्तलवाडी बलवला पुलगिरि वासवली नाथ और बनवासी युवराज है। इस विरुद पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि विरुदावली तीन भागोंम बटी है। प्रथम भागम त्रयलोकमल्ल वीरनोलम्ब पल्लवमर्दी, द्वितीय भागमें तालम्बाडी पोलविन्दु मान्तलवाडी बलवला पुलगिरि बासवली नाथ और तृतीय भागम केवल बनवासी युवराज है।

इस लम्बे चौडे विरुदका न तो अर्थ और न कारणही हमारी समझमे आता है। प्रथम भागवर्ती विरुदोंके सबधमें हम कह सकते है कि वे गुणवाचक है। परतु द्वितीय भागके विरुद देशवाचक प्रतीत होते है। और उन देशोंके साथ जयसिंहका सबध प्रकट करत है। यदि वास्तवमें वे देशवाचक है तबतो कहना पडेगा कि जयसिंहक अधिकारम एक बहुत बडा भूभाग था। परतु

उक्त प्रदेश जयसिहको क्योंकर और कब मिले यह प्रशस्तिसे कुछभी ज्ञात नही होता है। तृतीय भागके विरुदमें जयसिहको वनवासी युवराज कहा गया है। यह और भी उलझी हुई गुथ्थीको पूर्णरूपेण उलझाकर मतिभ्रम करता है। जयसिहके वनवासी युवराज पद प्राप्त करनेका कारण प्रशस्तिने कुछभी नही बतलाया है। परन्तु यह साधारण बात है कि युवराजपद उसीको प्राप्त होता है जो किसी राजाका भावी उत्तराधिकारी होता है। परंतु शासन-पत्रके उत्तरकालीन अंशसे प्रकट होता है कि जयसिहको एक भाई था जो कहीका राजा था। अतः जयसिह न तो अपने पिताका युवराज हो सकता है और न अपने भाईका। इस कारण उक्त युवराज पद हमारी पूर्व धारणाके अनुसार हमे चक्रमें डालने वाला है।

शासन पत्रके द्वितीय अंशसे प्रकट होता है कि जयसिह पर देवकोप हुआ था। और उसको अपने अधिकारसे वंचित होना पडा था। अधिकार वंचित होने पश्चात वह कालक्षेपणार्थ पाण्डवोंके समान जंगलमें चला गया था। कुछ दिनों पश्चात उसके पुत्र विजयसिह केसरी विक्रम पितृव्ययके सिमान्तर प्रदेशके कुछ भूभागपर अधिकार जमा बैठा। और अपने बाहुबलसे मंगलपुरी नामक नवीन चौलुक्य राज्यका संस्थापक हुआ। प्रशस्ति स्पष्ट रूपसे वर्णन करती है कि उसने मंगलपुरीमें चौलुक्योंके वाराहध्वजको स्थापित किया था।

शासन पत्रके तृतीय अंशसे प्रकट होता है कि विजयसिह अपने साम्राज्यके विजयपुर नामक नगरमें एक बार निवास करते समये संसारकी असारताको देख लक्ष्मीकी अस्थीरताका अनुभव कर धर्मकोही केवल परलोकमें अनन्य सहायक मान अपने मातपिता तथा अपने पुण्यकी वृद्धिकी कांक्षा से ..... ......

चौथे भागसे प्रकट होता है कि वनवासीसे आनेवाले अपने पुरोहितके पुत्र सोमशर्माको विजयपुर प्रान्तके पार्वत्य विषयका वामनवली ग्राम दान दिया। एवं प्रजाको आदेश दिया कि वह उक्त सोमशर्माको ग्रामका दायभाग दिया करे।

पांचवे भागमें प्रदत्त ग्राम वामनवली की चतुस्सीमा देनेके पश्चात स्ववंशज और पर वंशज भावीराजाओंसे आग्रह किया गया है कि वे उक्त धर्म दायका पालन करे।

छठें भागमें धर्मदाय पालनका पुण्य और अपहरणका पाप आदि वर्णन करते हैं, पश्चात शासन पत्र बनाने वालेका नाम और शासन पत्रकी तिथि दी गई है। शासन पत्रकी तिथि अक्षरों और अंको दोनोंमें दी गई है और सबसे अंतमें शासन पत्रके दूतकका नाम लिखा गया है।

हमारी समझमें शासन पत्रमें किसी बातकी त्रुटि नही है। सब बातें इसमें जो शासन पत्रमें होनी चाहिये दी गई हैं। इसमे प्रथम शासन कर्ताकी वंशावली उसका विशेष वर्णन द्वितीय दानका कारण दान प्रतिगृहिताका परिचय प्रदत्त ग्रामकी सीमा लेखक और दूतक आदिका परिचय सभी बातें दृष्टिगोचर होती है। अतः यह शासन पत्र त्रुटि रहित हैं।

हम उपर प्रकट कर चुके है कि शासन पत्रकी वंशावली में केवल चार नाम है। उनमें शासन कर्ताके प्रपितामह जयसिंहको वातापि नाथ कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वह वातपिका राजा था। परन्तु उसका पुत्र सोमेश्वर कहाका राजा था यह नहीं प्रकट होता। किन्तु उसकी बिरुदावली अपने पिताके समानहीं होनेसे उसकाभी स्वतत्र राजा होना प्रकट होता है। जयसिंह द्वितीय अथात् शासन कर्ताके पिताकी बिरुदावलीके सबधमे हम कुछ विचार उपर प्रकट कर चुके है। अत यहा पर इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि उसके अधिकारमें वनवासी और सान्तलवाडी आदि प्रदेश थे। वह सातलवाडी आदि प्रदेशोंका स्वामी अर्थात राजा और वनवासीका युवराज था। जब जयसिंह अधिकार च्युत हुआ तो काल क्षेपणार्थ जगलमें चला गया। उसके वनवासके समयमें ही उसके पुत्र केसरी विक्रमने नवीन अधिकार प्राप्तकर मगलपुरीको अपनी राज्यधानी बनायी।

अत अब विचारणा है कि वातापि के चौलुक्य राज्यसिंहासनका भोक्ता जयसिंह नामक कोई राजा हुआ है या नही। यदि हुआ है तो उसका समय क्या था। उसके पुत्र और पौत्रका नाम अहवमल्ल और जयसिंह था या नहीं। यदि था ना। अहवमल्लका समय क्या था और जयसिंहकी बिरुदावली क्या थी। वह वनवासीका युवराज कहलाता था या नहीं। नोन्लमवाडी आदि प्रदेशोंके साथ उसका क्या सबध था और अन्ततोगत्वा वनवासीका अधिकार उसके हाथसे कब और क्योकर छिन गया।

इन प्रश्नोंका समाधान करनेके लिये हमे वातापि राज्यवशके इतिहासका अवलोकन करना होगा। वातापि के चौलुक्य वशकी राज्यधानी वातापि आने के पूर्व ऐजन्त नामक स्थान - जिसे सप्रति एजन्टा कहेते है में थी। ऐजन्तपुरी में चौलुक्य वशकी सस्थापना करनेवाला जयसिंह है। उसके पूर्व चौलुक्योंकी राजधानी चुलुकगिरि नामक स्थानमें था और चुलुकगिरि के सयोगसे राजवशका पूर्व नाम सोम वश बदल कर चौलुक्य प्रचलित हुआ। चौलुकगिरि राज्य प्राप्त करनेवाला विष्णुवर्धन विजयादित्य है। विजयादित्य के पश्चात सोलह राजाओंने चौलुक्यगिरि राज्य सिंहासन का भोग किया। अनन्तर उनके हाथसे राज छिन गया। परन्तु अन्तिम राजा के पुत्र जयसिंहने पुन अपने बाहुबलसे खोये हुए राज्यका उद्धार कर ऐजन्तपुरी को अपनी राज्यधानी बनायी। जयसिंहके बाद उसका पुत्र रणराग हुआ। उसने भी ऐजन्तपुरीमें रहकर पैतृक राज्यका भोग किया। उसके पश्चात उसका पुत्र पुलकेशी हुआ। पुलकेशी वास्तवमें अपने वशका पर प्रख्यात राजा हुआ। इसने सर्व प्रथम वातापि के कदम्बोंका उत्पाटन कर वातापि पुरीको अपनी राज्यधानी बनायी। पुलकेशीने प्राय समस्त भारत वर्षको विजय कर एक छत्र बन अश्वमेध यज्ञ किया।

पुलकेशीके पश्चात उसके कीर्तिवर्मा और मगलीश्वर नामक दाना पुत्रोंने क्रमश उसके राज्यका उपभोग किया। मगलीशने वातापिपुरीके प्रसिद्ध गुफाका निमाणकर उसमे अपने कुल देव वाराहकी प्रतिमा स्थापित कर अपना नाम अचल बनाया। मगलीशके पश्चात उसका भतीजा

पुलकेशी द्वितीय हुआ। पुलकेशी द्वितीय भी अपने पितामहके समान प्रचण्ड योद्धा और भारत वर्षका एकछत्र अधिपति हुआ। पुलकेशी द्वितीयकी राजसभामें ईरानके प्रसिद्ध राजा खुशरुका राजदूत रहता था। उक्त पारशियन राजदूत के आगमनका द्योतक करनेवाला एक चित्र ऐजन्त-पुरीकी गुफामें चित्रित किया गया है।

पुलकेशीने अपने छोटे भाईओं, विष्णुवर्धन और जयसिंह एवं बुधवर्म्मको एक एक प्रान्त प्रदान किया था। विष्णुवर्धनको वेंगी मण्डल प्रान्त - कृष्णा और गोदावरी नामक नदिओंके मध्यवर्ती देश - दिया। जहां उसके वंशजोंने लगभग छव सौ वर्ष राज्यभोग किया, और पश्चात् समय पूर्वीय चौलुक्य नामसे प्रसिद्ध हुये। जयसिंहको पुलकेशीने वर्तमान नाशिकके चतुर्दिक-वर्ती भूभाग दिया था। जहां उसके पुत्रादिने राज्य किया परन्तु उसका वंश अधिक दिनों नही चला। चौथे भाई बुधवर्म्म को वर्ततान कोलावा जिल्ला के चतुर्दिकवर्ती प्रदेश दिया था। बुधवर्म्मका वंशभी लोप हो गया क्योंकि उसकाभी कुछ परिचय नही मिलता। हां. बुधवर्म्मका एक शासन पत्र कोलावा जिल्लाके पिनुक नामक स्थानसे मिला है जिससे प्रकट होता है कि वह अपने भतीजा वातापि पति विक्रमादित्यके समय तक जीवित था।

पुलकेशीको आदित्यवर्मा—चन्द्रादित्य–विक्रमादित्य और जयसिंहवर्मा नामके चार पुत्रों का होना पाया जाता है। आदित्यवर्म्मका परिचय उसके अपने ताम्रपत्रसे और चंद्रादित्यका परिचय उसकी महिषी महादेवी विजय भट्टारीका के शासन पत्रों से मिलता है। संभवतः आदित्यवर्माकी मृत्यु पिताके समयमेंही हो गई थी। और चंद्रादित्य भी कदाचित एक पुत्रको छोडकर कालगत हुआ था। चंद्रादित्यके शिशु पुत्रकी माता (चंद्रादित्यकी रानी) विजय भट्टारिकादेवी शासन करती थी। परन्तु शासन करते समयभी विजय भट्टारिकाने विक्रमादित्य के राज्यका उल्लेख किया है। अतः संभवना होती है कि सिंहासनपर वास्तवमें विक्रमादित्यही बैठा। विक्रमके समयसे वातापिके चौलुक्य पश्चिम चौलुक्यके नामसे प्रख्यात हुए। विक्रमने अपने छोटेभाई जयसिंहको लाट देशका राज्य दिया जहां उसने और उसके वंशजोने नवसारिका (नवसारी) को राज्यधानी बना लगभग १०० वर्ष पर्यन्त राज्य किया।

विक्रमादित्यके पश्चात् क्रमशः वातापिके सिंहासन पर उसका पुत्र विनयादित्य, पौत्र विजयादित्य द्वितीय तथा प्रपौत्र किर्तीवर्मा द्वितीय बैठा। कीर्तिवर्मा के समय चौलुक्य राज्यलक्ष्मीका अपहरण हुआ और वातापि साम्राज्य राष्ट्रकूटोंके अधिकार में चला गया। लगभग दोसो वर्ष पर्यन्त वातापि राष्ट्रकूटोंके अधिकार में रहा। अन्तमें तैलप द्वितीयने अपने वंशकी राज्यलक्ष्मीका उद्धार कर वातापी को पुन. अपनी राज्यधानी बनायी। तैलपने शक ८९५ से ९१९ पर्यन्त राज्य किया।

चौलुक्यराज्य उद्धारक तैलपके बाद उसका पुत्र सत्याश्रय ने शक ९१९ से ९३० पर्यन्त राज्य किया। अनन्तर उसका भतीजा विक्रमादित्य पांचवा गद्दी पर बैठा। विक्रमादित्यकी कौथुम

प्रशस्तिमें वंशावली दी गई है। वंशावलीके साथही अयोध्यावर्त अर्थात् चोलुक्योंका अयोध्यामें राज्य करना, पश्चात दक्षिणमें आकर नवीनराज्य स्थापित करना-राज्यका छिन जाना-जयसिंहका पुन उद्धार करना प्रभृति देनेके पश्चात् जयसिंहसे लेकर क्रमश विक्रमादित्य पर्यन्त नाम दिये गये। इस प्रशस्तिको हमने चैालुक्य चन्द्रिका वातापि कल्याण खण्ड में अविकल रूपसे उधृत कर पूर्ण विवेचन किया है।

विक्रमके बाद उसका छोटा भाई जयसिंह शक ६४० में गद्दीपर बैठा और शक ९६२ पर्यन्त राज्य किया। जयसिंहकी उपाधि जगदैकमल्ल थी इसनेभी अपने राज्यके छठें वर्षकी एक प्रशस्ति में चैालुक्य वंशकी वंशावलीका अभिगुन्ठन, जयसिंह प्रथमसे लेकर अपने समय पर्यन्त किया है। जयसिंहकी राणी सगलदेवी थी। जिसके गर्भसे आहवमल्ल पुत्र और अब्जलदेवी नामकी कन्या हुई। अब्जलदेवीका दूसरा नाम हाम्मादेवी था। उसका विवाह सेवुण देशके राजा भिल्लम तीसरेके साथ हुआ था जयसिंहकी मृत्यु पश्चात आहवमल्ल गद्दी पर बैठा।

आहवमल के राज्यकालीन विविध प्रशस्तियों और शासन पत्रों के पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि इसको होयसलदेवी - वाचलदेवी चन्द्रकदेवी और केतलदेवी नामक चार राणिया थी और इन के गर्भसे इसको सोमेश्वर - विक्रमादित्य और जयसिंह नामक तीन पुत्रोंका होना पाया जाता है। आहवमल्लने वयस्क होने पर अपने प्रत्येक पुत्रको कुछ प्रदेशकी जागीर दे कुछ अन्य प्रदेशोंका शासक नियुक्त किया था। आहवमल्लने अपने ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर भुवनमल्लको वयस्क होने पर युवराज पट्टबधकी जागीर केशुवलाल ( पटदकाल ) प्रदेश दिया था। इसके अतिरिक्त शक ६७१ मे वह वेलवोला त्रयशत और पुलगिरि त्रयशतका शासक नियुक्त हुआ था। एव द्वितीय पुत्र वीक्रमादित्यको वनवासी द्वादश सहस्र नामक प्रदेश दिया था। एव वह गंगवाडी शासक था

पुनश्च आहवमल्लके राज्यके छठे वर्ष शक ६६६ की प्रशस्तिसे प्रकट होता है कि उसने अपने कनिष्ठ पुत्र जयसिंहको कोगली आदि प्रदेशकी जागीर दी थी। एव इसके राज्यके २३ वें वर्ष अर्थात् शक ६७६ के लेखसे प्रकट होता है कि जयसिंहके अधिकारमें उस वर्ष कतिपय अन्य प्रदेश थे इन दोनों प्रशस्तियोंके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि जयसिंह अपने प्रदेशों का पूर्ण शासनाधिकार का भोग करता था। और अपने पिता को अधिराजा मान स्वय स्वतंत्र सामन्त राजाके शासन आदि प्रचलित करता था। पुनश्च इन शासन पत्रों से जयसिंहका विरुद् वीरनोलम्ब पल्लव परम्नादि त्रयलोक्यमल्ल प्रकट होता है। आहवमल्लका स्वर्गवास शक ९६० के चैत्र मास में कृष्ण ८ रविवारको हुआ और उसका ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर कल्याण की गद्दी पर बैठा।

उधृत अवतरणसे स्पष्ट रूपेण प्रस्तुत प्रशस्तिकी बातों का सामजस्य मिलता है। अत हम यदि निशंक हो प्रशस्ति कथित विजयसिंह के पिता वीरनोलंब पल्लव परम्नादि जयसिंह को

वातापि पति जयसिंह जगदेकमल्लका पौत्र और आहवमल्ल त्रयलोक्यमल्लका कनिष्ठ पुत्र एवं सोमेश्वर भुवनमल्ल और विक्रमादित्य त्रिभुवनमल्लका कनिष्ठ भ्राता घोषित करें तो असंगत न होगा क्योंकि विजयसिंहके पिताका पूर्ण परिचय प्राप्त करने के पश्चात अधिकांशतः पूर्व अवतरित प्रश्नोंका एक प्रकार से समाधान हो चुका तथापि हम अभी ऐसा करनेमें असमर्थ हैं। हमारी इस असमर्थता का कारण यह है कि अनेक महत्व पूर्ण विषयोंका समाधान नहीं हुआ है। वनवासी युवराज विरुदका परिचय नही मिला। परिचय नहीं मीलने के साथ ही इस अवतरण से ऐसी गुत्थी उलझी गई है क्योंकि वनवासी प्रदेशको जयसिंह के पिता आहवमल्लने प्रथम अपनी गंगवंशकी राणीको दिया था। जो अपने कदमवंशी सामन्त द्वारा शासन करती थी। वादको उसके पुत्र विक्रमादित्यको दिया था।

इस प्रश्न के समाधान के लिये हमें सोमेश्वर विक्रमादित्य और जयसिंह के इतिहास का पर्यालोचन करना होगा। और अपने इस प्रयत्नमें हम सर्व प्रथम वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि त्रयलोक्यमल्ल जयसिंह के पूर्व उधृत लेखों के प्रति अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे। जयसिंहके शक ९६६ से १००३ भावी ७ लेखोंका हम पूर्व में अवतरण कर चुके हैं। उक्त लेखों में दो लेख जयसिंह के पिता आहवमल्लके राज्यकालीन है जिनका उल्लेख उपर कर चुके हैं। अन्य दो लेख (शक ९९३ और ९९४) में जयसिंहने अधिराज रूपसे अपने बडे भाई सोमेश्वर भुवनमल्लको स्वीकार किया है पुनश्च उन लेखों से जयसिंह सोमेश्वरका अनन्य प्रकट होता है।

परन्तु शक ००१ और १००३ वाले लेखो में जयसिंहको वनवासी प्रदेश का शासक और वनवासी युवराज के रुपमें पाते है। इतनाही नही जयसिंह अपने लेखों में विक्रमादित्य को अधिराज स्वीकार करता है। एवं उनमे जयसिंह को विक्रमादित्यका रक्षक रुपमे पाते है। इन लेखो के विवेचन से सोमेश्वर को कल्याण राज्यसिंहासन से हटाये जाने और विक्रमादित्य के गद्दी पर वैठने तथा जयसिंहके वनवासी प्रदेश तथा वनवासी युवराज विरुद प्राप्त करने पूर्ण रुपेण विवेचन कर चुके है। अतः यहां पर पुनः पीष्ट पेषण न कर पाठको से उक्त स्थान देखने की आग्रह कर आगे वढ़ते है। और जयसिंह के हाथ से वनवासी आदि प्रदेशों के छिन जाने प्रभृतिका विचार करते है।

हमारे पाठकों को भलिभांति ज्ञात है कि शक १००३ वाले तुम्बर होसरु के लेखसे प्रगट होता है कि जयसिंहने वनवासी और सन्तालिग आदि प्रदेशोकी राज्यलक्ष्मीको अङ्कशायनी वनाया हुआ और उसका सौर्य सूर्य मध्य गगनमें प्रखर रुपेण विकसित हो रहा था। और उसने चेदी स्थानक और लाटके राजाओं को पराभूत किया था। एवं प्रस्तुत प्रशस्ति से स्पष्ट है कि विक्रम संवत ११४६ तदनुसार शक १०१४ के पूर्व उसके हाथसे वनवासी राज्यका अपहरण हो चुका था। अतः अव विचारना है कि इस शक १००३-१००४ और १०१४ के मध्य कव तक वह वनवासी का भोग करता था। अव यदि वनवासी प्रदेशपर जयसिंहके वाद राज्य करने वालेका परिचय

सुप्राप्त कर शके तो समस्त उलझी हुई गुत्थी अपने आप उल्झ जायेगी। और हम अपने इस भयकर सन्देह समुद्रसे त्राण पा सकेंगे

जयसिंहके बडे मझले भाई विक्रमादित्य के राज्य कवि काश्मीरी पंण्डित विल्हण के नामसे हमारे पाठक परिचित है। कवि बिल्हण अपनी पुस्तक विक्रमाङ्कदेव चरित्र म लिखता है।

"करहाटक के शिल्हरराजा की पुत्री चन्द्रलेखा से विवाह कर विक्रमादित्य अपनी राज्य-धानी में आकर सुखभोग में व्यक्त हुआ। इस प्रकार सुखभोगे करते उसको बहुत दिन बीत गये। एक दिवस उसके विश्वास पात्र गुप्तचरन आकर सुचना दी कि महाराज आपके छोटे भाई आपका राज्य छीनने के विचारसे प्रजा पीडन द्वारा बहुतसा धन एकत्रित कर द्रविड के राजा से मैत्री स्थापन करने के उद्योग म लगा है। एव अपनी सेनाको विद्रोही बनाने का प्रयत्न कर रहा है। पुनश्च उसने बहुत बडी सेना एकत्रित कर लिये है तथा जगली जातियों को अपना सहायक बना आप पर आक्रमण करने के उद्योग मे लगा है। तथा इस सुचनाको पकर विक्रमादित्यने उसका तथ्या तथ्य जानने के विचारसे अपने राजदूत को जयसिंहके पास भेजा। जिसने लौटकर कथित वार्तो को पूर्णांशत सत्य प्रकट किया।

इतने परभी अपने छोटेभाई पर शस्त्र उठाना उचित न मान पुनश्च अपने दूतको जयसिंहको समझाने बुझाने के लिये भेजा। परन्तु जयसिंह ने किसीकी एक न सुनी और अपने सामन्तों और सेनापतिया के साथ बहुत बडी सेना लेकर विक्रमादित्यके राज्य पर आक्रमण किया आसपास के गामा को लुटने और जलाने लगा। विराध करने वाला का बन्दी बनाया, कृष्णा नदि के पास तक चला आया। परन्तु विक्रमादित्य इस आक्रमणका समाचार पाकर भी कुछ दिनो तक शात बैठा रहा अन्तमे विक्रमादित्य अपनी सेनाके साथ आगे बडा। दोनो सेनाओ म युद्ध हुआ जिसमे जहसिंहने अपनी हस्ति सेनाको आगे कर आक्रमण किया। और विक्रमादित्य के गज अश्व और पदाति सेनाको पीछे हठाया।

किन्तु विक्रमादित्य अपनी सेना को उत्साहित करता हुआ आगे बढा और जयसिंहकी सेना को छिन्न भिन्न किया। जयसिंह पराभूत हो कर अपनी सेनाको छोड भाग गया। अन्तमें विक्रमादित्यको जयसिंह की सेना के असख्य हाथी-घोडे और धन रत्न के साथ स्त्रिया हाथ लगी।

बिल्हण पण्डितके कथनपर "विक्रमादित्य अपने छोट भाई पर अस्त्र उठाना नहीं चाहता था" हमे खेद पर भी बरबस हसी आ जाती है। क्योकि बिल्हण अपने इस कथनसे विक्रमा-दित्य के चरित्र म भ्रातृ वात्सल्यका चित्र चित्रण करना चाहता है। परतु हमारे पाठकों को विक्रमादित्य के भ्रातृवात्सल्य का ज्ञान भलि भाति प्राप्त हो चुका है। अत हमे आशा है कि विक्रमादित्य के भातृवात्सल्य को वे अवश्य समझते होगे। तथापि हम यहा पर उसकी नमूना पेश करते है। हमारे पाठको को ज्ञात है कि बिल्हण ने सोमेश्वर और विक्रमके विग्रह में भी सोमे श्वरका चरित्र भी ठीक जयसिंह के चरित्र समान चित्रित किया है और वहा भी विक्रमको

निर्मल चरित्र प्रकट करनेके उद्देश्य से लिखा है कि सोमेश्वरको गद्दी परसे उतारने बाद भी विक्रम उसे गद्दी पर बैठाना चाहता था। परन्तु भगवान शंकरने प्रकट होकर क्रोध के साथ प्रकट किया कि वह स्वयं राजा बने। इसके अतिरिक्त सोमेश्वरको प्रजा पीडक आदि बताया है।

परन्तु जयसिंह के शक १००१ वाली प्रशस्ति के विवेचनमें तथा सोमेश्वर और विक्रम के संबंध को लेकर चौलुक्य चंद्रिका वातापि कल्याण खण्ड में विल्हणका भण्डा फोड़ करते हुए दिखा चुके हैं कि विक्रम अपने पिताकी मृत्यु समय से ही सोमेश्वर को गद्दी परसे उतारनेकी धुन में लगा था। और सर्व प्रथम उसने सोमेश्वर के प्रधान सेनापति कदमवंशी जयकेशी के साथ अपनी कन्याका विवाह कर उसे अपना मित्र बनाया। एवं उसके द्वारा राजेन्द्र चोड जो चौलुक्यों का वंश गत शत्रु था, के साथ षडयंत्र रच उसे चौलुक्य राज्य पर आक्रमण करने को उत्साहित किया। एवं जब सोमेश्वर राजेन्द्र चौल के साथ युद्ध करनेको आगे बढ़ा और जयकेशी विक्रमादित्य और जयसिंह तथा अन्यान्य सामन्त सेनापतियों को अपनी सेनाके साथ रणक्षेत्रमें आनेको आवाहन किया तो जयकेशी अपनी राज्यधानी गोआसे, विक्रमादित्य अपनी राज्यधानी वनवासी से और जयसिंह अपनी राज्यधानी से तथा अन्यान्य सामन्त और सेनापति अपनी सेनाके साथ चोलदेश के प्रति अग्रसर हुए। परन्तु दोनों सेनाओं के रणक्षेत्रमें आतेही जयकेशी और विक्रमादित्य सोमेश्वरका साथ छोडकर राजेन्द्र चौलसे मिल गये जिसका परिणाम यह हुआ कि सोमेश्वरको भागना पडा और रटवाड़ी प्रदेश राजेन्द्र चौलने अपने राजमे मिला लिया किन्तु विक्रमके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दहेजमें रटवाडी प्रदेश उसे दिया। यदि जयसिंह उस समय सोमेश्वरकी रक्षा न करता तो कदाचित उसे उसी समय चौलुक्य राज और अपने प्राणसे हाथ धोना पडता। पुनश्च हम यहभी दिखा चुके हैं कि विक्रमादित्य ने सेवुण देशके यादव राजा से भी मैत्री स्थापित कर लिया था। एवं जयसिंहको वनवासी का युवराज और चौलुक्य राज का लोभ दिखा अपना साथी बनाया।

भला जो मनुष्य अपने वंशशत्रु से मिल सकता है, अपने भाईको घोर युद्ध संकटमें छोड सकता है। उसके सेनापतिको बेटी दे कर मिला सकता है। सामन्तों को बडे बडे प्रान्त देकर बडे भाई के विरुद्ध खडा कर सकता है, बड़े भाईका राजच्युत कर उसका नामों निशान मिटा सकता है और लोभमें पड धर्माधर्म का विचार छोड सकता है, वह विल्हण पंण्डित जैसे कविओं कि दृष्टिमें अवश्य भातृ वात्सल्य हो सकता है। परन्तु हमारे ऐसे तुच्छ बुद्धिओंकी दृष्टिमें उसका भातृ वात्सल्य संसारमें अद्वितीय है। उसकी भ्रातृ वत्सलता पौराणिक युग भगवान राम के अनुज भरत और लक्ष्मण तथा ऐतिहासिक युगवाले शिशोदिया वंशी मोकल और भीमकी भातृ वत्सलताको पटतर करती है। यदि उसका देदीप्यमान उज्वल उपमान संसारके इतिहास में कही उपलब्ध है, तो वह मुगल साम्राट शाहजहांके पुत्र औरंगजेब का भ्रातृ प्रेम है।

पुनश्च यदि हम यह कहें कि विक्रमादित्य अपने से वर्ष ५८२ वर्ष पश्चात होनेवाले मुगल साम्राट शाहजहां के बन्धुघाती पुत्र औरंगजेबकी आत्मा था तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि दोनों

के चरित्र और नीति में अधिकाशत ममानता पाई जाती है। जिस प्रकार औरगजेब अपने बडे और छोटे भाईओं का नाश कर अपने रक्त रंजित हाथों से दीन इस्लामकी रक्षा के लिये दिल्लीके सिंहासन पर बैठा था और पचास वर्ष राज्य किया था। और उसने अन्तिम समय अपने साम्राज्य को छिन्न भिन्न होता हुआ देख रक्त की आश्रु बहाता अपने इहलीलाका मस्मरण किया था। उसी प्रकार विक्रमादित्य अपने बडे भाई सोमेश्वरको राज्यसे वंचित कर उसके रक्तसे अपने हाथोंको रंजित कर चौलुक्य साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा और ५० वर्ष राज्य कर अन्त में साम्राज्य भवनको शत्रुओंके आघात से गीरता हुआ देख अपनी आखों से रक्त की आश्रु बहाता मरा था।

एव जिस प्रकार औरंगजेबने बन्धु नाशजन्य पापाग्नि से मुगल साम्राज्यको भस्मात कर उसके मूल को नष्ट कर दिया था, और उसकी मृत्यु पश्चात मुगल साम्राज्य का एक प्रकार से अन्त हो कर नाम मात्र के साम्राट उसके वशज रह गये थे। पर कुछ दिनो अर्थात ५० - ६० वर्ष के बाद नाम मात्रका मुगल साम्राज्य भी नष्ट हुआ। अन्तमें अन्तिम बादशाह शाहआलमको अपने मकानमें बन्दी होना पडा था। उसी प्रकार विक्रमादित्यकी मृत्यु पश्चात ५० - ६० के भीतर ही बन्धु नाश जन्य पापाग्नि से दग्ध चौलुक्य साम्राज्य नष्टप्राय हुआ और उसके वृद्ध प्रपौत्र सोमेश्वरको अपने सामन्त का बन्दी हो कर अन्त में इधर उधर भटकते हुए चौलुक्य साम्राज्य सूर्य के साथ सदा के लिये अस्त होना पडा।

अन्ततोगत्वा जिस प्रकार दारा को राजच्युत करने के लिये औरंगजेबने सापरा (उजैन) युद्ध के पूर्व मुरादको शाहशाह दिल्ली बनानेका का प्रलोभन दे अपना साथी बनाया और दारा के परास्त होने पश्चात मुरादको बन्दी बना ग्वालियरके दूर्गमें स्थान दिया था, उसी प्रकार विक्रमादित्य जयसिंहको चौलुक्य साम्राज्य भावी युवराज मान अपना साथी बनाया। और जब सोमेश्वरको राज्यच्युत कर स्वय गद्दीपर बैठा तो कुछ दिनोंके पश्चात जयसिंहको चौलुक्यराज देने के स्थान में बनवासी प्रदेशके साथ ही उसके पिता और भ्राता सोमेश्वर के समय प्राप्त अन्यान्य प्रान्तों से भी वंचित किया।

मुराद और जयसिंह के चरित्र में इतनाही अन्तर है कि मुरादको मद्यप होने के कारण अनयासही बन्दी बनना पडा परन्तु जयसिंह वीर प्रकृति होने के कारण विक्रमके उद्देश्यको जानतेहीं आगे बढ उसके छक्के छुडा अन्तमें राज्यच्युत हुआ। जयसिंहका विक्रमसे छक्के छुडानेका परिचय बिल्हणके लेखमेही मिलता है। जयसिंहके महत्व गुण शौर्य आदिको बिल्हणने अति सुन्दर बनाकर लिखा होगा। किन्तु सत्य छिपानेसे नही छिपता। बिल्हणके लेखका पर्यालोचन जयसिंहके शौर्यका दिग्दर्शन कराही देता है।

बिल्हणके उधृत अवतरणसे प्रकट होता है कि विरनोलय जयसिंहका अपने भ्राता विक्रम द्वारा पराभूत होकर बनवासी राज्यसे हाथ धोना पडा था। परन्तु यह ज्ञात नहीं हुआ कि विक्रमादित्य और विजयसिंहके पिता वीरनोलब त्रयलोक्यमल्ल जयसिंहके मध्य कब युद्ध हुआ। परतु इतना तो

अवश्य प्रकट होता कि विक्रमादित्यके करहाट पति शिल्हार राजाकी कन्या चंद्रलेखाके साथ विवाहके बहुत दिनो पश्चात उक्त युद्ध हुआ था। पुनश्च हमे ज्ञात है कि शक १००३ - ४ में विक्रम और जयसिहके मध्य सौहार्द्य था। अतः १००३ - ४ शके पश्चात कुछ वर्ष बाद युद्ध यह हुआ होगा। और वहभी शक १०१३ - १४ के पूर्वही हुआ होगा क्योंकि प्रस्तुत प्रशस्ति से उक्त युद्ध का इस समयसे पूर्व होना स्पष्ट रूपेण पाया जाता है।

वनवासी के इतिहासके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि शक १०१० में वनवासी प्रदेश पर कदम्ब वंशी महा सामन्त शान्तिवर्मा विक्रमादित्य के माण्डलिक रूपमें शासन करता था। शक १००३ - ४ और १००९ के मध्यकालीन समयमे वनवासी पर इसका अधिकार था। इसका कुछ भी परिचय नही मिलता। अब यदि हम विल्हणके कथनकि विक्रम करहाट पतिकी कन्या.से विवाह करने बाद बहुत दिनो सुखमें लिप्त था। अनन्तर जयसिह के विप्लवका संवाद उसे मिला और दोनों भाईओंमें युद्ध हुआ प्रभृतिमेंसे उसके विवाहकी तिथि का नाम भी नही मिलता है। अत. हमे यहा परभी अनुमान और अप्रत्यक्ष प्रमाण से काम लेना पडेगा।

करहाटके शिल्हरा वंशके इतिहास पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि भारसिह नामक राजाको गुलवालादि पांच पुत्र और चन्दला नामक कन्या थी। उक्त भारसिहका राज्यारोहण शक ९८० में हुआ था। और उसने २७ वर्ष राज कर शक १००७ मे इह लीला समाप्त किया था। भारसिहकी उक्त चंदला नामक कन्याका विवाह कल्याणके चौलुक्य प्रेमार्डिसे होनेका परिचय मिलता है। हमारी समझमें भारसिंहकी चन्दला देवी ही विल्हणकी चन्द्रलेखा है। क्योंके चंदला नाम लौकिक और चंद्रलेखा संस्कृत है। हमारी धारणाका कारण यह है कि उक्त चंदला का विवाह कल्याणके चौलुक्य प्रेमार्डि अर्थात विक्रमादियके साथ हुआ था। हमारे पाठकोंको भलि भांति ज्ञात है कि विक्रमादित्यके विविध विरुदोंमेंसे प्रेमार्डि एक है। चदलाको चन्द्रलेखा मानर्नेमें कणिका मात्रभी संदेहका अवकाश नही है।

अब केवल मात्र विचारना यह है कि चन्द्रकला विवाह भारसिहने विक्रमादित्यके साथ कब किया था। विल्हणके कथनसे पाया जाता है कि उसका विवाह करहाट पतिकी कन्याके साथ तब हुआ जब वह पूर्ण रूपेण वातापि कल्याणके चौलुक्य सिंहासन पर अधिष्टित हो चुका था। एवं विक्रमके चन्दलाके साथ विवाहके बहुत दिनों पश्चात उसका विरोध जयसिहके साथ हुआ। अतः हम सकते हैं कि विक्रमका विवाह चन्दलके साथ शक १००३ - ४ के पश्चात भारसिहके अन्तिम समय लगभग शक १००७ के पूर्व हुआ था और उसके दो तीन वर्ष पश्चात अर्थात १००८ - ९ में किसी समय विक्रम और जयसिहकी विरोध का सूत्रपात हुआ। हमारी इस धारणाका प्रबल कारण यह है कि जयसिंहके हाथसे वनवासी आदि प्रदेश निश्चित रूपसे शक १०१० में निकल गया था।

विक्रम और जयसिहके युद्धका समग्र अवान्तर प्रमाण तथा आनुमानिक रित्या प्राप्त करने बाद इन दोनों के विग्रह का कारणका विचारना पडेगा। जयसिह और विक्रमके अधिकृत प्रदेशो

पर दृष्टिपात करते ही प्रकट होता है कि जयसिंहके अधिकारमें चौलुक्य राज्यका अंश था। इसी दशा में यदि जयसिंहको सतोप न हुआ और विक्रमके राज्य को हस्तगत करनेके प्रयत्नमें प्रवृत हुआ था तो कहना पड़ेगा कि जयसिंह वस्तवमें कृतघ्नी और पापभागी था। परन्तु विल्हणने उसका जो चरित्र चित्रण किया है वह उससे भी अधिक कृतघ्नी और दोषभागी तथा निन्दनीय था। परन्तु विक्रमकी सोमेश्वरके राज्य अपहरण करनेवाली नीतिपर दृष्टिपात करतेही वह अस मनोवृत्तिक प्रवाह श्रोत विपरीत दिशा के प्रति गमनोन्मुख होती है और सहसा मुखसे निकल पड़ता है कि विक्रम जयसिंहके विग्रहका कारण जयसिंहके मत्थे नहीं वरण विक्रमके मत्थे पड़ता है। हमारी यह धारणा केवल अनुमानकी भीत्ति पर ही अवलम्बित नहीं वरण इसको प्रबल और प्रत्यक्ष आधार है।

हमारे पाठकों को ज्ञात है कि चौलुक्य साम्राज्यका किशुवलाल प्रदेश जयसिंहके अधिकारमें था। और उसकी उपाधि युवराज थी। यद्यपि बाह्य दृष्टया जयसिंह और विक्रमके विग्रह पर इन दोनोंसे कुछभी प्रकाश नहीं पड़ता परन्तु अन्तरदृष्टिपात करते ही इनके विग्रहके गुप्त रहस्यका उद्घाटन हो जाता है। जयसिंहके युवराज उपाधिसे उसका चौलुक्य साम्राज्यका भावी उत्तराधिकारी होना प्रकट होता है। और उपाधि उसे विक्रमके राज्यारोहन समय प्राप्त हुई थी अतः अनयासही कह सकते है कि शक ६६८ में विक्रमने जब जयसिंहको भावी उत्तराधिकारी स्वीकार कर उसे चौलुक्य साम्राज्यके अन्य बहुत से प्रदेश दिया जो प्रायः समस्त राज्यका अर्धांश था। यहां तक कि विक्रमने वनवासी प्रदेशभी जयसिंहको दे दिया जो उसके अधिकार में शक ६६२ अर्थात ३४ वर्षसे था। इतनाही नहीं केशुवलाल प्रान्त जिसके अन्तर्गत चौलुक्य साम्राज्यका प्राणभूत स्थान पट्टडकाल था उसने जयसिंहको दिया। हमने पट्टडकाल स्थानको चौलुक्य साम्राज्य रूप शरीरका प्राण कहा है। अतः आशंका होती है कि हमारे पाठक आश्चर्य चकित हुए होंगे। इस लिये उनके आश्चर्यको शान्त करने के लिये निम्न भाग में पट्टडकालका महत्व प्रदर्शक विवरण देते है। आशा है उसके अवलोकन पश्चात वे हमसे अवश्य सहमत होंगे।

पट्टडकाल नामक स्थान चौलुक्य राजधानी वातापिपुर (वादामी) से लगभग ८ - १० मील की दूरी पर पूर्वोत्तरमें मलप्रभा नामक नदीके उत्तर तट पर अवस्थित है। पट्टडकालका नामान्तर किशुवलाल है। वास्तवमें प्राचीन नाम किशुवलालही था और पट्टडकाल उसमें एक स्थान विशेष था। परन्तु पट्टडकालके महत्वने किशुवलालका नामान्तर रूप धारण किया और क्रमशः अन्तम प्रधानता प्राप्त किया। किशुवलालके नामानुसार प्रदेशका नाम किशुवलाल पड़ा है। किशुवलालका शाब्दिक अर्थ "रत्नोंका नगर" और पट्टडकालका "राजाभिषेक"का स्थान है।

प्रारंभसे लेकर विवेचनीय समय पर्यन्त चौलुक्य इतिहासका पर्यालोचन प्रकट करता है कि किशुवलाल नामक स्थानके पट्टडकालमें प्रत्येक राजा और युवराजका "पट्टबंध" राज्याभिषेक हुआ करता है। किशुवलाल प्रदेशको सदा युवराजके रहनेका गौरव प्राप्त था। इतना ही नहीं किशुवलाल

विषय के अन्तर्गत स्वयं राज्यधानी वातापिपुरी थी। हां पट्टडकाल किशुवलाल प्रदेशमें १२ से २२ पर्यन्त ग्रामोंका होना पाया जाता है। और प्रायः सभी ग्राम पट्टडकालके मन्दिर आदि में लगे हुए होते थे अतः आर्थिक दृष्टिसे किशुवलाल विषय कुछभी महत्व नही रखता था। परन्तु राजनैतिक दृष्टि से इसके अधिकारीके लिये समस्त चौलुक्य साम्राज्यके समान महत्व था।

किशुवलाल पट्टडकाल विषय और युवराज यह दोनोंको एकत्रित करतेही जयसिंह के युवराज पदका अर्थ दर्पणमा स्पष्ट हो जाता है। एवं इन दोनोंका विक्रमका राज्यरोहन समय जयसिंह को देना स्पष्ट रूपेण प्रकट करता है कि उसने जयसिंह को अपने बाद चौलुक्य समाजका स्वामी स्वीकार किया था। अब यदि किशुवलाल विषयको जयसिंहके अधिकारसे हठानेका प्रयत्न किया जाय तो वह प्रयत्न उसे भावी अधिकारसे वंचित करने समान है। जयसिंहका किशुवलाल प्रदेशसे वंचित होने की आशंकासे विक्षुब्ध होना अथवा हठाये जाने पर मरने मारनेको खड़ा हो जाना स्वभाविक है। जयसिंह प्रचण्ड योद्धा था। उसने अपने शरीरका रक्त बहा विक्रमको गद्दी पर बैठा केशुवलाल प्रदेशके साथ युवराज पदको प्राप्त किया था एवं चौलुक्य राष्ट्र के वाराह लांछण को अपने पूर्वजों के समान रामेश्वरसे लेकर मध्य प्रदेशके जबलपुर पर्यन्त और दक्षिण गुजराथ के लाट प्रदेश पर्यन्त फहराया था। यदि कहा जाय कि जयसिंहने नर्मदाके दक्षिण तटसे रामेश्वर पर्यन्त भूभागको पुनः चौलुक्य साम्राज्यके अधिकारमें लाकर पुलकेशी प्रथम और द्वितीय के समान उसे गौरवपर पहुचाया था तो अत्युक्ति न होगी।

पुनश्च जयसिंहके हाथ सेना रहित नही हुए थे। उसकी नसोंके रक्त ठंडे नही पड़े थे जो वह कायरोंके समान अधिकार पर हस्ताक्षेप होते देख हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता। अतः हम कह सकते हैं कि विक्रमादित्यने जयसिंहके साथ प्रथम छेड़छाड प्रारंभ किया था। और छेड़छाडका श्री गणेश उसके संकेतसे उसके पुत्र जयकर्णने किया। एवं उक्त छेड़छाड केशुवलाल प्रदेश पर हस्ताक्षेप था। अथवा संभव है कि जयकर्णने अपने अधिकारकी परिधिका स्पष्ट परिचय नही होनेसे केशुवलाल प्रदेशको अपने अधिकार भुक्त मान हस्ताक्षेप किया हो। अथवा यहभी संभव है कि उसने जयसिंहका भावी युवराज स्वीकृत होना अपने न्यायोचित (विक्रमका जेष्ठ पुत्र होनेके कारण). अधिकार (भावी युवराज पद) का अपहरण मान लिया हो और अपने पिताके राजा होने तथा अपने नये उमंगके बल छेड़छाड किया हो। अब यदि हम जयसिंह के अधिकारों (केशुवलाल अथवा किसी अन्य विषय और युवराज पद) पर विक्रम के द्वारा हस्ताक्षेपका परिचय पा जायतो विक्रम और जयसिंह के विग्रहका यथार्थ कारण ही ज्ञात होने के साथ बिल्हणका भंडा फोर होते हुए युद्धका दायित्व विक्रमके गले चला जायेगा।

विक्रमादित्यको जयकर्ण और सोमेश्वर नामक दो पुत्र थे। इनमें जयकर्णका उल्लेख शक १००६ के लेखमें है। कथित शक १००६ प्रभव संवत्सरका लेख कोनुर नामक स्थानसे प्राप्त हुआ है। कोनुर ग्रामका प्राचीन नाम कोन्डनुरु है। इसका उल्लेख ताम्र शासनों और शिला प्रशास्तिओं में कोन्डवार और कुन्डी नामसे किया गया है। कोनुर मालप्रभा नामक

नदीके तटपर बसा है। यह गोकाक नामक नगरसे ५ मील पश्चिमोत्तर तथा बेलगाव से गमग ३० मील उत्तरमें है। यह लेख बोम्बे रायल एसियाटिक सोसाइटी के जर्नल वोल्यूम १० पृष्ठ २८७ में पाली संस्कृत और पुरातन कनाडी लेख संख्या ६२ के नामसे छपा है। इस लेखसे प्रकट होता है कि रट्टवंशी महा मण्डलेश्वर कन्ह द्वितीय उक्त वर्षमे विक्रमादित्यके पुत्र जयकर्णके सामन्त रूपसे कुन्डी प्रदेशका शासन करता था।

हमारे पाठकों को ज्ञात है की कुन्डी प्रदेश वीरनोलम्ब जयसिंहको अपने पिता आहवमल्ल सोमेश्वर से शक ६७६ में मिला था। अत अब विचारना है कि जब उक्त प्रदेश जयसिंह को अपने पिता से मिला था तो वह विक्रमादित्य के पुत्र जयकर्णके अधिकारमें क्योंकर चला गया। क्या विक्रमने कुन्डी प्रदेश शक १००६ के पूर्व ही छीन लिया था। हमारी समझमें इन प्रश्नोंका उत्तर देने के पूर्व हमें कुन्डीके रट्ठो के जिनकी राजधानी सुगन्धावती (सादन्ती) थी इतिहासका पर्यालोचन करना होगा।

सुगन्धवतीके रट्ठो के इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि इन्होंने लगभग ३५० वर्ष यहापर शासन किया है। इनके शासनकी कथित अवधि तीन भागोमें बटी है। प्रथम शक ७६६ से ८६४ पर्यन्त लगभग एकसौ वर्ष। द्वितीय शक ८६५ से १०८२ पर्यन्त लगभग १६ वर्ष तृतीयशक १०८२ से ११४७ पर्यन्त लगभग ५० वर्ष है। प्रथम अवधिमें सुगन्धावती के रट्ठ मान्य खेटके राष्ट्रकूटो के सामन्त और द्वितीय अवधि में चौलुक्योका राज्य छिन जाने बाद स्वतत्र हो गये थे। इन्होने लगभग ५५ वर्ष स्वातन्त्र्य सुखका भोग किया अनन्तर देवगिरी के यादवों ने इनकी राज्यलक्ष्मी के अपहरणके साथही ससारसे इनका अस्तित्व मिटा दिया।

हमारा सबध सुगन्धावतीके द्वितीय अवधिसे है। अत अब विचारना है कि चौलुक्यों के साथ इनका किस प्रकारका सम्बन्ध रहा है। विवेचनीय काल शक १००६ पर्यन्त चौलुक्य वशके किस राजा के समय कौन रट्ठ सामन्त था। चौलुक्य और रट्ठ वशके इतिहासके पर्यालोचन से प्रकट होता है कि शक सवत ६०२ में चौलुक्य राज्यके उद्धारक तैलप द्वितीयका सामन्त रट्ठवशी शान्त और उसका वशज कन्न सामन्त था पर इस समयके ६८ वर्ष पश्चात शक ९७० सर्वाधिकारी नामक सवत्सरमें रट्ठवशी पूर्वकथित शान्त के वश आनकको चालुक्य राज आहवमल्ल सोमेश्वर प्रथमका सामन्त पाते हैं। इस समय से केवल ६ वर्ष बाद शक ९७६ जयनामक सवत्सरमें वीरनोलम्ब जयसिंहको कुन्डीकी जागीर अपने पितासे मिलती है और रट्टवशी आनकको आहवमल्ल और जयसिंह पिता पुत्र दोनों का सामन्त पाते है। सुगधावर्तीके प्राय विना तिथिके लेखसे जयसिंहके ज्येष्ठ भ्राता सोमेश्वर भुवनका सामन्त आनकको पाते हैं। सोमेश्वर भुवनका राज्यकाल शक ९९० से ९९८ पर्यन्त है। पुनश्च शक १००८ में आनकके वशज कान द्वितीय को विक्रमादित्यका सामन्त पाते है और अन्ततोगत्वा शक १००६ में रट्टवशी कान द्वितीयके भाई कठ द्वितीयको चालुक्य विक्रमके पुत्र जयकर्णका सामन्त पाते है।

अब विचारना है कि जब शक ९७३ में जयसिंहको अपने पितासे कुन्डी प्रदेशकी जागीर मिली थी तो उक्त प्रदेशको सोमेश्वर द्वितीयने शक ९९० में गद्दीपर बैठने पश्चात उससे (जयसिंहसे) कुन्डी प्रदेश छीन लिया था। यदि उसने कुन्डी प्रदेश छीना नहीं थातो कुन्डी के रट्ठ क्यों कर उसके सामन्त हुए। इस प्रश्नका उत्तर सोमेश्वर और जयसिंहके परस्पर संबंध दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि सोमेश्वरने गद्दीपर बैठतेही जयसिंहको कुछ प्रदेश शक ९९० में तथा जब उसने उसका साथ - विक्रमके विश्वासघात करने पर भी - नहीं छोडा और शत्रुओंके हाथसे उसकी रक्षाकी थी तो कुछ और प्रदेश दिया था। अन्ततोगत्वा शक ९९२ में पुनः उसने युद्धमें विजयी होनेपर अन्य प्रदेश दिया था। जयसिंहके लेखोंसे सोमेश्वरका व्यवहार अत्यन्त सौहार्द्र पूर्ण प्रकट होता है। जयसिंह सदा सोमेश्वरका दाहिना हाथ था। ऐसी दशामें सोमेश्वर जयसिंहकी जागीर छीन लेवे यह समझमें नहीं आता। यदि सोमेश्वर जयसिंहकी जागीर छीन लेता तो उन दोनोंमें सौहार्द्र नहीं रहता शत्रुता हो जाती। जयसिंहसे शत्रुता करना सोमेश्वरके बुतेकी वा नहीं थी। क्योंकि वह उसका रक्षा कवच था। अतः कथित लेखमें जो सुगंध्रावतीके रट्ठों को सोमेश्वरका सामन्त कहा है उनका केवल मात्र तात्पर्य यह है कि उसे चौलुक्य राज सिंहासनका भोक्ता होने के कारण अधिपति रूपसे स्वीकार किया है। क्योंकि जयसिंह यद्यपि महाराजाधिराज पदवी प्राप्त किये था तथापि स्वतंत्र नहीं वरण अपने ज्येष्ठ बन्धु सोमेश्वरके आधीन था। क्योंकि उसने अपने शक ९९३ और ९९४ के लेखों में सोमेश्वरको अधिराजा और चौलुक्य साम्राज्यका भोक्ता स्वीकार किया है।

उद्धृत विवरणसे स्पष्ट है कि सोमेश्वर द्वितीय के राज्य कालमें जयसिंहके अधिकार से कुन्डी प्रदेश नहीं निकला था। अब विचारना है कि शक १००५ में कुन्डीके रट्ठों को जो विक्रमका सामन्त कहा है तो क्या विक्रमने उस समय जयसिंहसे कुन्डी प्रदेश छीन लिया था। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि जब विक्रम अपने बडेभाई सोमेश्वरको गद्दीसे उतार शक ९९८ में स्वयं गद्दीपर बैठा तो उसने जयसिंहको अनेक प्रान्त दिया। यहां तक कि उसे साम्राज्यका भावी युवराज स्वीकार कर युवराज पदकी जागीर पट्टकाल भी दिया और साथही चौलुक्य साम्राज्यका हृदय स्थान बनवासी प्रदेश जो स्वयं उसे अपने पितासे जागीरमें मिला थो और जिसे सोमेश्वर गद्दीपर बैठाते समय स्वीकार किया था। उस प्रदेशको भी जयसिंहको दिया इतनाही नहीं हम देखते है कि जयसिंहके शक १००३-१००४ के लेखों में उसे "विक्रमाभरण" विक्रमका रक्षक और 'अन्नन अङ्कार' अपने भाईका सिंह तथा 'चौलुक्य भरण' और 'चुडामणी' विरुद धारण कर विक्रमके शत्रुओं का नाश करने वाला लिखा है। ऐसी दशामें विक्रम क्यों कर उससे उसकी जागीर छीन असंतुष्ट कर सकता है अतः कुन्डीके रट्ठो को अपने लिये विक्रम का सामन्त कहनेका केवल मात्र अभिप्राय यह है कि उसे अधिराजा रूपमें स्वीकार किया है। जयसिंहने भी विक्रमको अपना अधिराज अपने कथित लेखों में स्वीकार किया है।

अन्ततोगत्वा हम शक १००९ में रट्ठों को विक्रम के पुत्र जयकर्ण का सामन्त रूपमें पाते है। इससे स्पष्ट है कि इस समय जयसिंहका अधिकार कुन्डी प्रदेशसे जाता रहा है क्यों

कि एकही समय कुन्डी प्रदेश जयसिंह और जयकर्ण दोनोंकी जागीरमें नहीं हो सकता। अब विचार ।है कि विक्रमने क्यों कुन्डी प्रदेश जयसिंहसे लेकर अपने पुत्र जयकर्णको दिया। इस समय के बादही शक १०१० में विक्रमके सामन्त कदमवंशी शान्तिवर्मा को जयसिंहके वनवासी प्रदेश पर सामन्त रूपसे शासन करते पाते हैं। निश्चित है कि शक १०१४ के पूर्वहीं विक्रम और जयसिंहका मन मोटाव हो गया था। एव वे दोनो लड गये थे। जयसिंह पराभूत होकर जगलो में भागा था। विना पराभव उसके अधिकारका मुख्य प्रदेश वनवासी जिसमें उसकी राज्यधानी वलीपुरथी क्योंकर विक्रमके सामन्त कदमवंशी शान्तके अधिकारमें आता। अत हमे विक्रम और जयसिंहके मन मोटाव - विग्रह आदिको शक १००४ और १००६ के मध्य अनुसधान करना पडेगा।

हमारी समझमें शक १००४ में विक्रमका साम्राज्य जब जयसिंहके भुजवल प्रताप शौर्य से प्रदिप्त होकर कन्या कुमारी से लेकर चेदी देश और पश्चिममें लाट पर्यन्त शत्रुहीन हो चुका तो उसने अपने सबधी गोआ के कदमवंशी सामन्त जयकेशी के मतसे जयसिंहको नष्ट करनेमें प्रवृत्त हुआ और सर्व प्रथम उसने अपने पुत्र जयकर्णको कुन्डी विषयका जागीर दिया। कुन्डी विषय पट्टडकाल विषयके समीप था। अब हमे केशुवलल - पट्टडकल और कुन्डी आदि प्रदेशों का भौगोलिक अवस्थानका परिचय प्राप्त करना होगा। वनवासीके उत्तरमें पट्टडकाल है। पट्टडकाल और वनवासी के मध्यमें कुन्डी प्रदेश है। कुन्डी प्रदेश जयकर्णको देकर विक्रमने छेड छाड किया। जयसिंहका कुन्डी जाने नहीं नहीं वरण उससे और उत्तरवर्ती पट्टडकाल तथा अपने भावी युवराज पदकी रक्षाकी चिन्ता पडी होगी। अत वह, लडने मरनेको तैयार हो गया होगा। जयसिंह और विक्रमकी विग्रहके वास्तविक तिथि प्राप्त करने के लिये हमे विशेष रूपसे प्रयत्न करना होगा। अत निम्नभागमें विचार करते हैं।

शक १००६ के बाद ही शक १०१० में जयसिंहके अधिकृत वनवासी प्रदेश पर विक्रम के सामन्त कदमवंशो शान्तिवर्माको पाते है। अत हम यह सकते है कि विक्रमादित्यने जयसिंह के साथ प्रथम छेडछाड प्रारम्भ किया था। और छेडछाड का श्री गणेश उसके सकेतसे जयकर्ण ने किया। एव उक्त छेडछाड केशुवलल देश पर हस्तक्षेप किया था अथवा सभव है कि परिधिका स्पष्ट परिचय नहीं होनेसे केशुवलल प्रदेशको अपने अधिकार मुक्त मान उसने हस्तक्षेप किया हो। अथवा यह भी सभव है कि उसने जयसिंहका भावी युवराज स्वीकृत होना अपने न्यायोचित (विक्रमका ज्येष्ठ पुत्र होनेका कारण) अधिकार (भावी युवराज पद) का अपहरण मान लिया और अपने पिता के राजा होने तथा अपने नये उमगके बल पर जयसिंहके साथ छेडछाड किया हो। चाहे जो को विक्रम और जयसिंहके विग्रह का कारण जयकर्ण को कुन्डी आदि जागीर दिया जाना है। अत इस विग्रह का दोष जयसिंह पर नहीं वरण विक्रम पर है।

विल्हण ने लिखा है कि जयसिंह वनवासी से चलकर कृष्णा नदी पर्यन्त आकर विक्रम के राज्य के गावों को लुटने लगा। परन्तु यह नहीं वताया है कि जयसिंह वनवासी से

चलकर सर्व प्रथम कृष्णातटवर्ती स्थानो पर क्यों रुक गया। और वहां हीं विक्रमके राज्यके गामको लुटने लगा। हमारे पाठकोंको मालूम होगा कि हम उपर प्रकट कर चूके हैं कि चौलुक्य साम्राज्यका प्राय अर्धांश जयसिंहके अधिकारमें था। कुन्डी और उसके समीपवाला किशुवलाल पट्टडकाल प्रदेशभी उसके अधिकार में था। एवं किशुवलालका प्रधान स्थान पट्टडकाल था। पुनश्च पट्टडकाल मालिप्रभा नदीके उत्तर तट पर अवस्थित था। अब यदि पट्टडकाल किशुवलाल प्रदेश और कृष्णा नदीके भौगोलिक अवस्थान का परिचय प्राप्त कर सके तो हमे विक्रम और जयसिंह के राज्यकी सीमाका परिचय प्राप्त होने और कृष्णा तट पर उसके आनेका कारण प्रकट हो जावेगा।

हम बता चुके है के पट्टडकाल बादामि से ८-१० मील पूर्वोत्तरमें है और बादामी वर्तमान बीजापुर नामक जिलामें है। कृष्णा नदी विजापुर जिला में पूर्वसे पश्चिम प्रवाहित है और विजापुर जिलाके प्रसिद्ध स्थान गलगलीसे लगभग पांच मील उत्तर गेहतुर नामक स्थान के पास जिलामें प्रवेश करती है। एवं मालप्रभा संगम स्थानके संगमेश्वर से दक्षिण धानुर नामक स्थानसे लगभग आठ मील पूर्व पर्यन्त ५४ मील बह कर पश्चात निजाम राज्यमें प्रवेश करती है। अतः पट्टडकाल से कृष्णा अधिक से अधिक १७-१८ मीलकी दूरी पर है। अब हमारे पाठक समझ चुके होंगकि जयसिंह बनवासी से चल कृष्णा तट पर क्यों उपस्थित हुआ। इसका अर्थ स्पष्ट है: जयसिंह बनवासी से चलकर बादामि अथवा पटडकाल में डट गया होगा। और पट्टडकाल पर अपने अधिकारको सुरक्षित रखने के लिए मरने मारने के लिए कटिबध्य हो गया होगा। एवं वहां पर अपनी सेनाको एकत्रित किए होगा। उधर जयकर्ण पट्टडकाल को अपने अधिकार में करने के लिए तुला बेठा होगा।

बिल्हण ने जो लिखा है कि जयसिंह के सेना संग्रह का सम्वाद पा कर विक्रमनें दो बार अपने राज्यदूतको उसके पास भेजा। इसका अर्थ है कि वह जयसिंहको पटडकाल प्रदेश जयकर्ण को देने के लिए समझाना चाहता था परन्तु जयसिंह अपने भावी अधिकार के विचारसे पट्टडकाल किसीभी अवस्था में देनेको तैयार न हुआ होगा। उधर जयकर्ण बलपूर्वक पट्टडकाल पर अधिकार करना चाहता होगा। अत दोनोंकी सेनामें पट्टडकालकी सीमापर वहने वाली कृष्णा के तट पर छेड़छाड हुआ होगा। जिसमें कदाचित जयकर्णको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पडा होगा क्योंकि शक १००६ के पश्चात जयकर्णका कहीं भी उल्लेख नही पाया जाता। और जयसिंह सेनासहित कृष्णा पारकर उसके तटवर्ती प्रदेशोंपर अधिकार जमा बैठा होगा पुनश्च सम्राटके लिये इस विग्रहको शान्त करने के विचार से विक्रमादित्यको भी गद्दी पर से उतारने के लिये कल्याण के प्रति अग्रसर हुआ होगा। विक्रमको अन्तमें जयसिंहके साथ अपने राज्य और प्राण दोनोकी रक्षाके लिये स्वयं आगे बढकर लड़ना पडा होगा। उक्त युद्धमें भी प्रथम जयसिंह विजयी हुआ था। परन्तु दुर्भाग्यसे अन्त में उसे हारना पड़ा।

उधृत विवरणसे विक्रम और जयसिंहके विग्रहका कारण युद्धका स्थान और तिथि एवं परिणाम ज्ञात हो गया। अब केवल मात्र विचारना रह गया है कि युद्धके पश्चात जयसिंह जब

जगलो में चला गया ( जिसके सम्बन्ध में प्रस्तुत लेख और कवि विल्हण दोनों सहमत है ) तो उसने किस दिशा के जगलमें आश्रय लिया। प्रस्तुत लेख संकेत करता है कि जयसिंह अपने परिवारके साथ सम्भवत उत्तर कोंकण और लाट देश के प्रति गमनोन्मुख हुआ था। एव उसका इन प्रदेशों के प्रति गमनोन्मुख होनेकी सभावना विशेष है। इस सभावना का समर्थन जयसिंह के शक १००३ ४ वाले द्वितीय लेखके पर्यालोचन से स्पष्टतया हो जाता है। तथापि इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये हमे दक्षिण भारत के तत्कालीन परिवर्तन और विशेष करके इतिहास और एतिहासिक स्थानों तथा भौगोलिक अवस्थानका आश्रय लेना होगा। अत हम सर्व प्रथम भौगोलिक अवस्थानका विचार करते है। क्योकि इसके ज्ञान प्राप्त करने पश्चात प्रथम तथा उत्तर भावी प्रश्न के विवेचनको समझने मे सहायता मिलेगी।

जयसिंहकी राज्यधानी, वनवासी प्रदेश सहस्रके अन्तर्गत बलापर नामक नगरमें थी और वनवासीमे भी उसके रहने का परिचय मिलता है। वनवासीका भौगोलिक अवस्थान ईम्पीरियल गेजेटीअर के मान चित्रम १४-१५ और ७८-७६ के मध्य मे है, गोकर्णका अवस्थान १५ १६ और ७४-७५ के मध्य वनवासी से पश्चिमोत्तर मे लगभग १५ मील है। बादामी और केसुन-लाल पट्टदाल का अवस्थान १६-१७ और ७६-७८ के मध्य वनवासी मे कुछ पूर्वोत्तर में हटा हुआ लगभग २०० मील और ठीक पूर्वोत्तर कोने मे २३५-४० मील है। कोल्हापुर १६-१७ और ७३-७४ के मध्य और गोआ लगभग २०० मील वनवासी पश्चिमसे कुछ हटा हुआ उत्तरमें लगभग ३७५-८० मील तथा वातापि से पूर्व उत्तर कोने मे लगभग २५० मील है। करहाट १७-१८ और ७३-७४ के मध्य बादामी मे लगभग ३५० मील उत्तर कुछ पूर्वको हटा हुआ है।

उक्त भौगोलिक अवस्थान से वनवासी आदि प्रदेशो का अव स्थान हमें निश्चित हो गया। अब यदि हम विक्रम और जयसिंह के शत्रुओ का ज्ञान प्राप्त कर सके तो जयसिंह के पराभव का और वनवासी से आकर जगलो में भागने का कारण जान सकते है। हमारे पाठको को ज्ञात है कि गोकर्ण का कदम्बवंशी जयकर्ण विक्रमादित्य का जामात्र और परम मित्र था। एव कराड का शिलाहार राजवंश की कन्या का विवाह विक्रमके साथ हुआ था। पुनश्च कोल्हापूर और कराड दोनों राजवंश अभिन्न थे। दूसरे तरफ जयसिंहका पर शत्रु और प्रतिद्वंदी जयकेशी था। और जयसिंह ने अपने लाट डाहल और कोकण विजय के समय कापर्दि द्वीप ( थाना ) के शिल्हार राजा को गद्दी से उतार शिल्हारा को अपना शत्रु बना चुका था।

विल्हण के कथनानुसार विक्रम जयसिंह के कृष्णा तटपर आकर आक्रमण करने परभी चुप चाप बैठा। जब वह कृष्णा के आगे बढा तो वह अपनी सेना के साथ आकर युद्धमें डट गया। हमारे पाठकों में से यदि किसीको यौद्धिक दाव पेचका कुछभी ज्ञान होगा तो वे तुरतही विक्रम के चालो को समझ जावेगें। उसके चुप रहेने का कारण यह है कि वह जयसिंहको अपने आप आगे बढ आने देना चाहता था। और गुप्त रूपमे अपने सम्बन्धिओको पीछेसे आकर उसका सम्बन्ध अपनी राज्यधानी वनवासी विच्छेद करा उसे दो सेनाओंके मध्य नहीं नहीं चार सेनाओंके

मध्य घेरना चाहता था। क्योंकि वातापि से आगे बढ़तेही जयसिंहके पृष्ठ प्रदेश पर गोकर्णपति जयकेशी वामभागपर कोल्हापुर और कराड के शिल्हार और सामने विक्रमकी सेना एवं दक्षिण भागपर संभवतः विक्रम के किसी अन्य सामन्तकी सेना अपडी होगी।

पुनश्च हमारे पाठकों को ज्ञात है कि शक १०१० में वनवासी कदम्बवंशी शान्तिवर्मा के अधिकारमें था। यदि कदम्ब वंश के विरोधका परिचय पा जाय तो अनयासही उसके वनवासी पर अधिकार करनेका रहस्य प्रकट हो जावेगा। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि कदम्बवंशका वनवासी के साथ बहुत पुराना सम्बन्ध है। यहां तक की इनका विरुद वे जहां कही भी भाग्य विडंबना वस गये वहां पर "वनवासी पुराधीश्वर" रहा। गोकर्णपति जयकेशी और धारवार जिला के पुनुगाल (होगले) के कदम्बों का विरुद भी "वनवासी पुराधीश्वर" था।

पुनुगालके कदमवंश के इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि पुनुगालके कदम्बो के अधिकार में वनवासी का शासन जयसिंह द्वितीय के समय से चला आता था। जयसिंहका सामान्त मयूरवर्मा द्वितीय और चामुण्डराय थे। सोमेश्वर प्रथम के समय उसकी रानी मयलाल देवी के सामन्त रूपने हरिकेशरी वर्मा वनवासीका शासन करता था। सोमेश्वर द्वितीय के समय कीर्तिवर्मा द्वितीय सामन्त रूपसे वनवासीका शासक था। परन्तु विक्रमके समय जयसिंहको वनवासीका राज्य मिला तो उसने कदम्बों के हाथसे सामान्त अधिकार छीनकर वलदेव को दिया। अतः पुनुगाल के कदम्बों का जयसिंहका विरोधी होना सस्वभावतः है।

जयसिंह के वाद शान्तिवर्मा को पुनः हम शक १०१० में वनवासी का सामान्त पाते हैं। शान्तिवर्माके अपने लेखों से प्रकट है कि वह पुनुगाल के कदम्ब वंशका था। और कीर्तिवर्माका सगा चाचा था। एवं उसके सन्तान हीन मरने पर पुनुगाल के कदम्ब सिंहासन पर बैठा। शान्तिवर्मा विक्रमका सामन्त था। एव उसका राज्य वनवासी के समीप था। और एक प्रकारसे वनवास और वातापि के मध्य पड़ता था। अव पाठक समझ सकते है कि जयसिंह के वनवासी छोड़कर वातापि आने और युद्धमें पराजय होने अथवा पूर्वही शान्तिवर्मा कितनी आसानी के साथ वनवासीको अधिकृत करसकता है। क्योंकि वनवासी छीन जाने का पुनुगाल के कदम्बों को हृदयमें दुःख होगा इसका अनुमान करना कोई कठिन बात नही है। वे सदा वनवासी पर अधिकार करने के लिये सुअवसरकी अपेक्षा में बैठे होंगे। विक्रम और जयसिंह के विग्रह समान सुअवसर उन्हें फिर कहां प्राप्त हो सकता था। अतः इस अवसर से लाभ उठाकर उन्होने वनवासी पर अधिकार कर लिया होगा।

उधृत विवरण से स्पष्ट है कि युद्धमें पराभूत होने पश्चात जयसिंह को अपने राज्य वनवासी में आनेका मार्ग का प्रतिरोध हो चुका था। इतनाही नही उधर जाना क्या जाने के लिये प्रयत्न करनाभी शत्रुरुपी कालके गालमें पडना था। अतः जयसिंहके लिए पराजयके पश्चात जंगलमें या विक्रम के शत्रुओं अथवा अपने किसी मित्रके आश्रम मे जाने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग न था। अव विचारना है कि संभवतः उसे किस दिशासे सहाय प्राप्त करनेकी सम्भावना थी

हमारे पाठकों को ज्ञात है कि विक्रमादित्यका वगी मण्डलके (पूर्वीय) चौलुक्यों के साथ वैमनस्य था। सोमेश्वर द्वितीयने भी वंगी के चौलुक्य राज राजेन्द्र (बिल्हण के राजी) के साथ मैत्री सम्बंध स्थापित किया था। एव जब विक्रम राजेन्द्र पर आक्रमण करने गया तो सोमेश्वरने विक्रम की सेना पर पृष्ठ प्रदेशसे आक्रमण किया था। विक्रम और राजेन्द्रके इस विग्रहका कारण राजेन्द्रका काञ्जीवर के चौल राजकुमार अपने ममेरे भाइ और विक्रम के साले को राजगदी से उतार चौल देशके राज्यको अपने राज्य म मिलाना था। विक्रम प्रथम राजेन्द्रको काची से हटाने म समर्थ हुआ था। किन्तु राजेन्द्रने अन्त म चौल राज्यको अपने अधिकार में लाने में समर्थ हुआ। अत विक्रम और राजेन्द्र म वैमनस्य अग्नि के अस्तित्वका होना स्वभाविक है। अब यदि हम यह ज्ञान प्राप्त कर सके कि विक्रम और जयसिंहके युद्ध समय वेंगी चौल साम्राज्यपर कौन अवस्थित था। और यदि हम जान सके कि उस समय वगी चौलका राजा राजेन्द्र था। तो जयसिंहका उसके पास आश्रय प्राप्त करने के लिये जाना सभव हो सकता है। वेंगी चौल की राजगदी पर राजेन्द्रका राज्याभिषेक शक सवत ९८५ म हुआ था। और उसका राज्य काल शक १० ४ पर्यन्त ४० वर्ष है। अत विक्रम और जयसिंहके युद्धकाल शक १००८ में राजेन्द्र वेंगी चौल सयुक्त राज्यका भोक्ता और विक्रमका महा कट्टर श था।

हमारी धारणा केवल अनुमानकी पोच भीत्ति पर ही अवलम्बित नहीं है। वरण इसके आधारका आभास बिल्हणके कथन "द्रविडके राजासे मात्र मैत्री स्थापित करनेका विचार होरहाहै" में मिलता है। यद्यपि बिल्हणने द्रविडके राजाका नाम नही बतलाया है तथापि बिल्हणकथित द्रविड राजा राजेन्द्र के होनेमें कणिका मात्रभी सदेह नहीं क्योंकि राजेन्द्रका अधिकार द्रविड देशके पाचों भागों पर शक सवत ९९४-९५ में हो गया था। अत हम कह सकते हैं कि जयसिंह युद्धमें पराजित होने पश्चात सभवत राजेन्द्र की राज्यधानी काचीपुरी के तरफ जगली मार्ग से अग्रसर हुआ।

विक्रम और जयसिंहके युद्धस्थलके समीपमें ही राजेन्द्र के वेंगी चौल राजकी सीमा लगी थी। जहा पर कृष्णा उल्लघन होकर जाना अत्यत सुगम था। पुनश्च राजेन्द्र के राज्य में जाने के अतिरिक्त जयसिंह के लिये दूसरा मार्ग भी नही था। जहा पहुचते ही विक्रम के आक्रमण की कुछ भी सभावना न थी। हा इस सभावना के प्रतिकूल जयसिंह के पुत्र विजय का प्रस्तुत लेख किसी अशमें पडता है। क्योंकि इस लेखसे जयसिंह के वेंगी चौल साम्राज्य में आश्रय प्राप्त करने का कुछ भी आभास नही मिलता। इस लेखमें स्पष्ट रूपेण लिखा है कि "जयसिंह जब जगलों म पाण्डवों के समान कालक्षेप कर रहा था तो, उसके पुत्र विजयसिंह ने अपने पैतृक के राज का अतिक्रमण कर अपने बाहुबलसे नवीन भूभाग अधिकृत कर मगलपुरी म वाराह लाछण को स्थापित किया"।

हा ठीक है? परन्तु इस उक्ति से यह भी सिद्ध नही होता कि जयसिंह ने पराजित होने पश्चात वेंगी साम्राज्य में आश्रय नही लिया था। हमारी समझमें युद्धमें पराजित मनुष्य को

सबसे प्रथम सुरक्षित आश्रय प्राप्त करने की इच्छा होती है। और वह अपने उस निश्चित सुरक्षित अवस्थान में जानेका प्रयत्न करता है। प्रस्तुत लेखसे यह सिद्ध है कि मंगलपुरी ताप्ती नदीके समीपमें थी। युद्ध स्थल से मंगलपुरी सीधे उत्तर पश्चिम दिशा में अवस्थित है। और लगभग २५० मील है। यदि युद्धस्थलसे सीधे मंगलपुरी के तरफ देखा जाय तो लगभग आधा मार्ग विक्रम के अपने राज्य होकर और चतुर्थाश भाग उसके श्वसुर करहाटके शिल्हारोंके राज्य होकर पडता था और शेष मार्ग जयसिह के मित्र थाणा के शिल्हाराके राज्यान्तर्गत था। अतः लगभग १६० मील मार्ग जयसिहके शत्रुओ से भरा हुआ था। हमारी समझमें नहीं आता कि भागनेवाला व्यक्ति अथवा उसका कोई संबंधी इस प्रकार शत्रु परिपूर्ण मार्ग से आश्रय पाने के लिये जा सकता है। भागनेवालो को चाहे कुछ चक्कर लगाकर जाना पडे परन्तु वह सीधे मार्गसे कभी न जायगा।

हम ऊपर वता चुके है कि वेंगीका साम्राज्य युद्धस्थल से समीप था। वहां जाते ही जयसिह शत्रके आंतगसे विमुक्त हो सकता था। और वह अथवा उसका पुत्र वेंगी राज्य होकर विक्रमके राज्यके उत्तरीय सीमाका अतिक्रयण करते हुए उक्त मंगलपुरी पहुंच सकते थे। अतः हमारी समझ में जयसिहका पुत्र विजयसिह वेगी साम्राज्य होकर मंगलपुरी के प्रति अग्रसर हुआ होगा। सभवत. युद्ध से भागते हुए पिता पुत्रका साथ छुट गया होगा। और जयसिह वेंगी साम्राज्यमें आश्रय पाशान्तिलाभ करता होगा उस समय उसका नवयुवक पुत्र विक्रमके राज्यकी सीमाका अतिक्रमण करते हुए मंगलपुरी प्रदेशमें पहुंच गया होगा। क्योकि उक्त जयसिहके लाट उत्तर कोकण और दाङ्ल विजयके पश्चात एक प्रकारसे उसके अधिकार मुक्त और चौलुक्य साम्राज्यके अन्तर्गत था। यही कारण है कि विजयसिह अनायासही उक्त प्रदेश पर अधिकार कर सका था।

हमारी समझमें प्रस्तुत प्रशस्तिका सांगोपांग विवेचन हो चुका। अव यदि कुछ शेष रह गया है तो वह प्रशस्ति कथित प्रदत्तग्राम आदिका अवस्थान विचार करना मात्र है। अतः कथित ग्राम आदिका विचार करते है। विजयसिहने विजयपुर में रहते समय शासन पत्र जारी किया था। दान देते समय उसने ताप्ती स्नान किया था। प्रदत्तग्राम वामनवलीकी पूर्व और दक्षिण सीमा पर ताप्ती नदी है।

अतः विजयसिहके सह्याद्रि मण्डलवर्ती अधिकृत प्रदेशके अवस्थानका निर्णयका विजयपुर मण्डल और वामनवली ग्राम है। जिसके समीपमें ताप्ती वहती है। सह्याद्रि पर्वतमालाके उत्तरमें ताप्ती वहती है। और खंभात की खाडी में जाकर गिरती है। एवं सह्याद्रि से पूर्णा नामक नदी निकलती है और वह भी तापती से लगभग २५ मील दक्षिण खाडीसे मिलती है। पूर्णा और तापी के मध्य वरोदा राज्य के नवसारी प्रान्त के व्यारा नामक तालुका में पूर्णा तटपर मगलीआ नामक एक ग्राम है। एव इसी प्रान्त के सोनगढ़ तालुका में मगलदेव नामक पुराना दूर्ग है।

हमारी समझमें शासन पत्र कथित मगलपुरी सोनगढ तालुका वाला मगलदेव है पुनश्च मगलदेव से ठीक नाक के नीचे उत्तरम तापी तटपर वाजर नामक ग्राम सोनगढ तालुका में है। यह प्रदेश घोर जगल में है। यहापर भी एक पुराणा दुर्ग है। अनेक मन्दिर आदि के अवशेष यहापर पाये जाते है। दुर्ग के पास नदी तटपर एक राजा की मूर्ति घोडे पर बनाई गई है। राजा के पीछे रानी बैठी है। एव अन्य कई पुरानी मूर्तिओं के अवशेष पाये जाते है। हमारी समझम शासन पत्र कथित विजयपुरी यही है। क्योकि प्रथम तटस्थान तापी तटपर है। द्वितीय इस से कुछ दूरीपर परघट नामक दुर्ग है। जो पार्वत्यका अपभ्रश है। पुनश्च यहा से लगभग दक्षिण में १० मील की दूरीपर वावली नामक ग्राम है जो हमारी समझम शासन पत्र कथित वामणवली का रूपान्तर है क्योकि इस वावली के दक्षिण और पूर्व म ताप्ती बहती है। एव इसके पश्चिम खाटवल नामक ग्राम है। जो शासन पत्र कथित खाडवबलकी झलक दिखाता है। अत हम नि शक होकर कह सकते है कि विजयसिहने अपने पितृव्य क राज्यका अतिक्रमण कर महाद्रि पर्वत के इसी अचलको अधिकृत किया था।

इससे निभ्रान्त रूपेण सिद्ध हुआ कि वातापि कल्याण राज्यके वादी सह्याद्रि मण्डलका प्रदेश विजयसिंहने अधिकृत किया था। अत शासन पत्रका यह कथन पूर्ण रूपेण सत्य सिद्ध हुआ। परतु प्रश्न उपस्थित होता है कि लाटवालो ने क्याकर अधिकृत करने दिया। हम उपर बता चुके है कि लाट और पाटनका वशगत विग्रह था। और कर्णदेव ने विक्रम ११३१ के आसपास लाट प्रदेशका नवसागरी विभाग अपने अधिकारम कर लिया था। इसे प्रकट होता है कि लाटवालोंकी शक्ति इस समय बहुत क्षीण होगई थी और उससे लाभ उठाकर विजयने दुर्गम पार्वत्य प्रदेशको अनायास ही अधिकार कर बैठा।

हमारी समझ से शासनपत्र कथित बातो का पूर्ण विवेचन हो चुका और उनकी प्रमाणिकता निर्भ्रान्त रूपेण सिद्ध हो चुकी। एव विजयका सबध वातापि के चौलुक्य वश क साथ है। उसका पिता वातापि पति विक्रमादित्यका छोटाभाई था। इसको उससे वनवासीका राज्य मिला था। परतु विग्रह करने के कारण छिन गया था। इन्ही सब घटनाओ और विजय के राज्य प्राप्त करनेका वर्णन सक्षेप रूपसे शासन पत्र म किया गया है।

— —

# मंगलपुर वासन्तपुरपति चौलुक्यराज

## श्री वीरसिंहदेव का शासन पत्र ।

ॐ स्वस्ति । नमो भगवते आदि देवाय वाराह विग्रह रूपिण श्रीमतां सोम प्रसूतानां जगद्विश्रुतानां मानव्यसगोत्राणां हारिति पुत्राणां चौलुक्यानां सप्त मातृका परिवर्धितानां कार्तिकेय परिरक्षितान चौलुक्याना मान्वये स्व भूजबलोपार्जित सम्राट पदानां महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सह्याद्रिनाथ केसरी विक्रम श्री विजयसिंह देव स्तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री धवलदेव स्तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो महा सामन्त महाराजा श्री वासन्तदेव स्तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो सामन्तराज श्री रामदेव स्तत्पादां नुध्यात् तत्भातृ पुत्रो महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री वीरसिंहदेव पाटन पट सन्दाम बद्धा स्ववंशराज्य लक्ष्मी निर्मुच्य स्वाङ्के संस्थाप्य वासन्तेऽधिराजः ।

तज्जन्य हर्षातिरेकोपलब्धये भगवान भूत भावन भवानिपति कर्दमेश्वर सेवार तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो गौतमस गोत्रेभ्यो पंच प्रवरेभ्यो आश्वलायन शाखाध्यायिभ्यो हरदत्त सोमदत्त हरिदत्त रुद्रदत्त विष्णुदत्तेभ्यो वालखिल्य पुराख्याग्रामः वृक्षाराम तृण गोचर हिरण्य भोगभाग सर्वाय सहितः कुशजल सुवर्ण पूर्वकं कर्दमेश्वर ह्रदे स्नात्वा जड्गगुरुं भवानि पतिं समभ्यर्च्य मातापित्रोरात्मनश्च पुण्य यशोऽभि वृद्धिकांक्षयास्माभिः प्रदत्त स्तु विदित मस्तु वः

एषः ग्रामस्य सीमान. । पूर्वतोऽम्बिका ग्रामः । दक्षिणतः पूर्णा नदी पाश्चिमतः खट्वाङ्ग ग्रामः । उत्तरतः करंजवली ग्रामः । अस्य ग्रामस्य

प्रतिवासिभ्य सदा सर्वदा एभ्यो ब्राह्मणेभ्यो सर्वाय व्यवच्छेदरहित देय । न केनापि बाधा कर्तव्या । न चेत् अस्मद्वंशजै रन्यवंशजै रागामी भूपालै पालनीय मर्यादायोऽय । स्वदत्ता पर दत्ता वा वसुधरा योऽपवच्छेदति स महापातकी भवति । योऽनुपालयति पुण्यभाक् भवति । उक्त च ।

पष्ठि वर्ष सहस्राणी स्वर्गे तिष्ठति भूमिद
हर्ता चयानु मन्ता च तान्येव नरके व्रजेत
बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभि स्सगरादिभि ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ।
बाणे त्रये पक्षि चेव मार्गा सङ्या समान्विते ।
मार्गशीर्ष सिते पष्ठ्या शकारी नृप वत्सरे ।
आनन्दपुर वास्तव्य भूदेव द्विज सूनुना ।
कृतश्चैवात्म रामेण शासन नृप चोदित ।
त्रिवेदी सोमदत्तश्च पुरोहित द्विजाग्रणी ।
रुद्रसिंहोऽपि सामन्त शासनस्य दूत कौ द्वौ ।
भूधरेणैव चोत्कीर्ण शासन पटके द्वये ।

# वीरसिंह के शासन पत्र
## का
## छायानुवाद

कल्याण हो। भगवान आदि देव वाराह विग्रह रूप को नमस्कार हो। सोमवंशोद्भूत जगत्प्रसिद्ध मानव्य गोत्र हारिती पुत्र सप्त मात्रिका परिवर्धित कार्तिकेय रक्षित चौलुक्य वंशी अपने भुजबलसे साम्राटपद प्राप्त करने वाले महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सह्याद्रिनाथ केसरी विक्रम वियजसिंह। श्री विजयसिंह देव के पादपद्मका अनुरागी उसका पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री धवलदेव के पादपद्मका अनुरागी पुत्रमहासामन्त महाराज श्री वसन्तदेव श्री वसन्तदेवका पादपद्मानुरागी पुत्र सामन्तराज श्रीरामदेव। श्री रामदेवके पादपद्माकमल का अनुरागी उनका भ्रातृ पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री वीरसिंह देवने पाटन के पटसंदाममें बंधी हुए अपने वंशकी राजलक्ष्मीको मुक्त कर अपनी अंकशायनी बना वसन्तपुरमें विराजमान हुए।

अपनी इस विजय केरूपे उपलक्ष्य में भगवान भूत भावानि पति कर्देमेश्वर की सेवारत गौतम गोत्र पंच परवार आश्वलाइन शाख्याध्या यज्ञदत्त - सोमदत्त - हरिदत्त रुद्रदत्त और विष्णु दत्त प्रभृति पांच ब्राह्मणको वालखिल्यपूर नामक ग्राम वृक्षाराय तृणगोचर भोगभाग हिरण्यादि सर्व प्रकारके आय कर्देमेश्वर ह्रदमें स्नान और जगगुरु भवानी पतिकी आराधना करके अपनी माता और पिता तथा अपने पुण्य और यश वृद्धिके कांक्षासे हाथमें कुछ जल और सुवर्ण लेकर कथित ग्राम दान दिया

इस ग्राम सीमायें पूर्व दिशा—अम्बिका ग्राम<br>
दक्षिण दिशा—पूर्णा नदी पश्चिम दिशा—खटचांगीय<br>
उत्तर दिशा—करंजावली

इस ग्रामके प्रतिवासिओं को उचित है कि ग्राम के कर को इन ब्राह्मणों को विना किसी व्यवधान के दिया करें। इसमें किसीको बाधा उपस्थित न करना चाहिए। हमारे वंश अथवा अन्य भावी राज्यवंश के नरेशोंको उचित है कि हमारे इस धर्मदायकी रक्षा करें। अपनी दी हुई अथवा दूसरेकी दी हुई वसुधाका जो अपहरण करता है वह महापातकी होता है। जो पालन करता है वह पुण्यभागी होता है।

कहाभी गया है.- भूमिदान देने वाला व्यक्ति साठ सहस्त्र वर्ष स्वर्गमें वास करता है। और इतनी ही अवधि पर्यन्त भूमिदानका अपहरण के अनुमति देनेवाला नर्कमें निवास करता है। बहुत से सगरादि राजाओने पृथिवीकाभोग किया है परन्तु प्रदत्त भूमि जिसके राज्य में होती है उसको ही उसके दानका फल प्राप्त होता है। वाण नाम पांच - त्रय तीन - पक्षदो और भानु नाम एक अर्थात १२३५ संख्यावाले विक्रम संवत के माघ शुक्ला षष्टिको आनन्दपुरके रहनेवाले भूदेव ब्राह्मणके बेटा आत्मारामने राजाकी आज्ञा से इस शासन पत्रो लिखा। ब्राह्मणों के अग्रणी पुरोहित सोमदत्त त्रिवेदी और रुद्रसिंह इस शासन पत्रके दूतक है।

भूधरने इसको दो ताम्र पटकों पर उत्कीर्न किया।

# वीरसिंह के शासन पत्र

का

## विवेचन

प्रस्तुत शासन पत्र मंगलपुरी के चालुक्य राज वीरसिंह कृत दान का प्रमाण पत्र है। इस दान पत्र द्वारा वीरसिंह ने कर्णेश्वर महादेव के समक्ष गौतम गोत्र पंच प्रवर ऋग्वेद आश्वलायन शाखाध्यायी यज्ञदत्त-सोमदत्त हरिदत्त-रुद्रदत्त और विष्णुदत्त नामक पांच ब्राह्मणों को कर्णेश्वर कुण्ड में स्नान कर स्वचर्शी राज्यलक्ष्मी को पाटन के बंधन से मुक्त कर वसंतपुर नामक ग्राम को अपनी राजधानी बनाने के प्रभृति आनन्दोत्सव उपलक्ष में वालखिल्यपुर नामक ग्राम दान दिया है।

वीरसिंह की वंशावली का प्रारंभ मंगलपुरी में चौलुक्य राजवंश की संस्थापना करने वाले विजयसिंहसे किया गया है। और विजयसिंह से लेकर वीरसिंह पर्यन्त निम्न पांच नाम है।

विजयसिंह
।
धवलदेव
।
वामनदेव
।
रामदेव
।
वीरसिंह

इनमें विजयसिंह धवलदेव और वीरसिंहके विरुद महाराजाधिराज परमेश्वर परभट्टारक और वसंतदेवका महासामंत महाराज तथा रामदेव का विरुद केवल सामंतराज है। इससे प्रकट होता है कि विजयसिंह के पश्चात केवल धवलदेव ही स्वतंत्र था। उसके बाद वसंतदेव को किसी ने पराभूत कर स्वाधीन किया था। अतः उसका विरुद महासामंत महाराज हुआ। इतने ही से अन्त नहीं हुआ है। रामदेव के हाथमें और भी राज्य सत्ता का अपहरण होना प्रतीत होता है। क्योंकि हम उसका विरुद केवल सामन्तराज पाते है।

परन्तु रामदेवके उत्तराधिकारी वीरसिंह के विरुद "महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक दृष्टिगोचर होता है। इससे प्रकट होता है कि वीरसिंह ने पुनः स्वातंत्र्य लाभ किया था शासन पत्र में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है कि वह पाटण के रेशमी मदाम अर्थात अगाड़ी

पछाड़ी बांधने की रशी से बंधी हुई स्ववंशकी राज्यलक्ष्मी को मुक्त कर अंकशायनी बना बसन्त पुर में विराजमान हुआ। इस कथन के दो अर्थ हो सकते हैं। १—रामदेव के हाथ मे राज्य छीन गया जिसका उद्धार वीरसिंह ने किया। २—रामसिंहके बाद वीरसिंह ने राज्य पाने पर पाटण की आधिनता युप को फेक अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की थी। हमारी समज में प्रथम अर्थ ही उत्तम प्रतीत होता है। क्योंकि 'पाटण पट बंधन' का अर्थ केवल एही हो सकता है कि मंगल-पुर का राज्कलक्ष्मी का अपहरण पाटणवालो ने किया था जिसका उद्धार वीरसिंह ने किया।

अब विचारना यह है कि मंगलपुरी के चौलुक्य राज्यवंश के स्वातंत्र्य राज्यलक्ष्मी का अपहरण किसने किया। मंगलपुरी के चौलुक्य वंश की संस्थापना ११४६ विक्रम में हुई थी। उस समयसे लेकर प्रस्तुत शासन पत्र लिखे जाने अर्थात १२४५ पर्यन्त ८६ वर्ष होते हैं। इस अवधि में मंगलपुरी के सिंहासन पर प्रस्तुत शासन कर्ता वीरसिंह को छोडकर चार राजा बैठे थे। उक्त ८६ वर्ष को ४ में बाटने से २२ वर्षका औसत प्राप्त होता है। इन चार राजाओ में से दो राजाओं के विरुद्ध स्वतंत्र नरेशों के हैं। अतः मंगलपुरी के स्वातन्त्र्यका अपहरण ११४६+४४ =११६३के लगभग हुआ प्रतीत होता है। संभव है कि इस समयके कुछ और भी बाद मंगलपुरी के स्वातंत्र्य का अपहरण हुआ हो।

मंगलपुरी की संस्थापना समय दक्षिण में वातापि कल्याण का चौलुक्य राज्य, उत्तर में पाटन का चौलुक्य राज्य और पूर्वमें धार का परमार राज्य प्रबल था। एवं निकटतम उत्तरमें लाट नंदिपुर के चौलुक्य और दक्षिण में स्थानक के शिल्हरा थे। इनमें पाटन के चौलुक्य और धार के परमारों का वंश परंपरागत विरोध था। सिद्धराज ने धार के २/३ भाग को अपने स्वाधीन कर लिया था। एवं मालवा की पुरातन राज्यधानी अवन्ती पर अपने वृषध्वज को आरोपित कर अवंतिकानाथ की उपाधि धारण किया था। अत. मालवा के परमारो की शक्ति क्षीण हो रही थी इन्हें अपने जीवन के लाले पड़ रहे थे। वे दूसरे पर आक्रम । क्या करते। लाट नंदिपुर के चौलुक्यों का अन्तप्राय हो रहा था। सिद्धराज के कोकण अथवा सह्याद्रि के उपत्यका भू पर आक्रमण करनेका परिचय नही मिलता। अब रहे स्थानक के शिल्हरा। और वातापि कल्याणके चौलुक्य। इनमें स्थानक, कोल्हापुर और कर्हाटके शिल्हरा और अन्यान्य छोटे मोटे राजा वातापि कल्याण के चौलुक्यो के आधीन चिरकाल से चले आ रहे थे। परन्तु विक्रमादित्य के पश्चात वातापि कल्याण के चौलुक्यो की शक्ति क्षीण होने लगी थी। सामन्त प्रबल और उद्दण्ड बनने लगे थे। विक्रमादित्यका समय शक ९९८-१०४८ तदनुसार विक्रम ११९५ में प्रारंभ होता है। इसके गद्दी पर बैठने बाद सामन्त गण अति बलवान होगए। इसके बाद इसका छोटा भाई १०७२ तदनुसार विक्रम १२०७ में गद्दी पर बैठा। सामतों ने षडयन्त्र रचकर इसको एक प्रकारसे बंदी बनाया था परन्तु यह इनके चगुलसे निकल भागा और बनवासी प्रदेशसे चला गया। अत स्थान के शिल्हरोंने इसी समय यह वातापि कल्याण राज्य की दुर्बलता से लाभ उठाकर स्वतंत्र बन गये। उन्होंने न केवल स्वतंत्रता ही लाभ किया वरन अपने पड़ोसियो को भी सताना शुरु किया था।

सिद्धराज के पश्चात पाटणकी गद्दी पर कुमारपाल बैठा। इसका स्थानक के शिल्हरा मल्लिकार्जुन के साथ युद्ध हुआ था। युद्ध में प्रथम मल्लिकार्जुन ने पाटनकी सेना को पराभूत किया परन्तु अत में उसे हारना पडा। यह युद्ध विक्रम सवत १२१७ में हुआ था। सभवत मगलपुरी वाले मल्लिकार्जुन के साथ मिल कर पाटण वालों से लडे और उसके पराजय के साथही उन्हें अपने राज्य से हाथ धोना पडा था। वसन्तदेवका राज्यारोहन समय हम विक्रम सवत ११६३ में बता चुके है। अत औसत के अनुसार इसका अन्तकाल इस युद्ध के दो वर्ष पूर्व ठहरता है। सभवत उसके मरने पश्चात उसके सार्वभौम राजा पाटण वालो ने उसके पुत्र को महा सामन्त की उपाधि के स्थान में केवल सामन्तकी उपाधि धारण करनेके लिए बाध्य किया हो। हमारी समजमें कुमारपाल ने मगलपुरीकी राज्य लक्ष्मीका अपहरण किया था। उसकी मृत्यु पश्चात जब पाटण की शक्ति क्षीण हुई तो वीरसिंह ने विक्रम १२३५ में पुन अपने वशके राज्यका उद्धार कर बसन्तपुरको अपनी राज्यधानी बनाया। कुमारपालकी मृत्यु १२२६ में हुई। उसके बाद उसका भतीजा अजयपाल गद्दीपर बैठा। इसने केवल तीन वर्ष राज्य किया। पश्चात बाल मूलराज बाल्यवयकी अवस्थामे सवत १२३२ मे गदी पर बैठा। २ वर्ष राज करनेके पश्चा उसकी मृत्यु हुई और १२३५ म भीम द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसकी अल्पवयस्कतासे लाभ उठानेके लिये कोंकण वालों ने आक्रमण किया जिसको लवणप्रसाद ने अपनी बुद्धि बल से शान्त किया था। अत हमारी समझ मे उस अवसर से लाभ उठाकर वीरसिंग ने अपने राज्यका उद्धार किया होगा।

हमारी समझ म शासन पत्र कथित घटनाओ के ऐतिहासिक तथ्यका पूर्ण रूपेण विवेचन हो चुका। अब केवल मात्र प्रदत्त ग्राम वालखिल्यपुर और उसकी सीमा पर अवस्थित ग्रामोका वर्तमान समयम अस्तित्व है अथवा नही विचार करना है। शासन पत्र कथित वालखिल्यपुर के दक्षिण मे पूर्णा नदी है। गायकवाडी राज्य के व्यारा तालुका मे पूर्णा के उत्तरमे वालपुर नामक ग्राम है। यह ग्राम अति पुरातन है। इसके चारा तरफ मिला मकानो और मन्दिरों के ध्वंश पाये जाते है। इस गाम म एक पुराने शिव मन्दिरका ध्वस है जिसके समीप एक शीतल जल का कुण्ड है। इस मन्दिर और कुण्ड को सम्प्रति वालपुर का कुण्ड और वालकेश्वर महादेव कहते ह। परन्तु वर्तमान मन्दिर म तीन भिन्न लेखो के पत्थर एक साथ लगाए हुए हैं। इससे प्रगट होता है कि विक्रम १६३७ में व्यारा ग्रामक देशाई न मेश्वर मन्दिरका जिर्णोद्धार किया था अथवा बनवाया था। परन्तु वह मन्दिर सप्रति टूट गया है। और उसका पथर वर्तमान मन्दिर म लगाया गया ह। अत सिद्ध होता कि कुण्डके पास कर्मेश्वर का मन्दिर था। इस हेतु हम कह सकते है कि शासन पत्र कथित कर्मेश्वर महादेव और कुण्ड तथा वालखिल्यपुर यही स्थान है। वालपुर से पश्चिम खुटरिया नामक ग्राम है। जो सभवत शासन पत्र कथित खदवागका परिवर्तित रूप है। एव वलपुर के उत्तर करजा नामक ग्राम है जो शासन पत्र का करजावली प्रतीत होता है। अतोगत्वा पूर्व म विका नामक ग्राम है। जो अम्बिका का रूपान्तर ज्ञात होता है। शासन पत्र के लेखक और दूतक आदिका नाम दिया गया है और सभवत सभी जाते दीर्घ है किन्तु वालखिल्यपुर किस विषयका ग्राम था इसका उल्लेख न होना इसकी भारी त्रुटि है। वाप्फल और अपरकर्णादिका शेष साधारण नाम है इनके लिये कुछ कहना अनुपयुक्त है।

# मंगलपुर-वासंतपुर पति चौलुक्यराज श्री कर्णदेव का

## विक्रम संवत ११७७ का शासन पत्र ।

ॐ नमो भगवते आदि वाराह देवाय । श्रीमतां हिमांशु वंशोद्भूतानां मानव्यस गोत्राणां हारिति पुत्राणां सप्त मातृका परिवर्धितानां कार्तिकेय परिरक्षितानां विष्णु प्रसादास्समासादित् वाराह लांच्छनेक्षणेम वर्श कृत राति मण्डलानां चौलुक्यानामान्वये स्वभूजोपार्जित साम्राट पदवी रुद्रासद्रिनाथ केसरी विक्रम महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री विजयसिंहदेव तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो महाराजाधिराज परमेश्वर परम श्री धवलदेव तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रोमहा सामन्त महाराजा श्री वासन्तदेव तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो सामन्तराज श्री रामदेव स्तत्पानुध्यात् महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री वीरसिंहदेव स्तत्पादानुध्यात् तत्पौत्रो महाराजाधिराज श्री कर्णदेवः ।

स्वपितामही षाण्मासिक श्राद्ध काले स्वपिता पार्वण श्राद्धकाले स्वजननी श्राद्ध काले जगद्गुरु भवानी पतिं समभ्यर्च्य कुश जल हिरण्य पूर्वकं परलोके तेषा मक्षय शान्ति कामनायाः जामदग्नेय सगोत्रेभ्यो पंच परवरेभ्यो वेद वेदाङ्ग पारंगतेभ्यो हरिकृष्ण-रामकृष्ण-सोमदत्तेभ्यो बहुधान प्रतिवासिभ्यो ब्राह्मणेभ्य श्रवसिष्टस गोत्रेभ्यो यज्ञदत्त वेददत्त कृष्णदत्तेभ्यो सकल शास्त्र निष्णातेभ्यो देवसारिका प्रतिवासिभ्यो गौतम गोत्र त्रिपरवर शुक्लशाखाध्यायी कच्छावली प्रतिवासिभ्य एकादश ब्राह्मणेभ्यो विहारिका विषयान्तर्पाति कार्पूर ग्रामः सवृक्षार म तृण गोचर हिरण्य भोग भाग सर्वदाय सहितं समान भागे नेभि ब्राह्म

णेभ्यऽस्माभि प्रदत्त । सुविदित मस्तुव । सर्वदाय तन्नाम प्रतिवा.सोभि सर्वदा देय । न केनापि वाधा कर्त्तव्या । एप ग्रामस्य सीमानः । पूर्वतः सिमलदा ग्राम । दक्षिणतः शाकम्बरी नदी । पश्चिमतः वालाधीन ग्राम ।

अस्मद्वंशजैर न्यैरपि भावि भूपालैरमद्धर्मदायोऽय पालनीय. । पालने महत्पुण्य व्यवच्छेदे पच पातकानि भवन्ति ।

वहुभि र्वसुधा भुक्ता राजभि स्सगरादिभि
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥
षष्ठि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिद ।
अच्छेत्ता चानु मन्ता च तान्यव नका वसेत् ॥

जावुकेश्वर वास्तव्य सोमदेव सूनुना हर्षेण नागरेण लिखित मिद शासने नृप कृष्णदेव चादनात् दूत कोऽत्र महा सन्धि विग्रहिक वीरदेवः । आश्वि कृष्ण - तु शि सवत् ि क्रम ७७ ।

# कर्णदेव के शासन पत्र

का

# छायानुवाद

भगवान आदि वराह देवको नमस्कार। हिमांशु वंशोद्‌भूत मानव्य गोत्र हारिती पुत्र सप्त मातृका परिवर्धित कार्तिकेय संरक्षित-भगवान विष्णुकी कृपा से प्राप्त वाराह लक्षण द्वारा शत्रु विजेता चौलुक्य वंश विभूषण सह्याद्रि नाथ केसरी विक्रम महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री विजयसिंह देव। श्री विजयसिंहका पादानुध्यात पुत्र महामहाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री धवलदेव। श्रीधवलदेवका पादानुध्यात पुत्र महासामन्त महाराजा श्रीवासन्तदेव। श्रीवासन्तदेवका पादानुध्यात पुत्र सामन्तराज श्री रामदेव। श्रीरामदेवका पादानुध्यात महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री वीरसिंह देव और श्री वीरसिंहका पादानुध्यात पौत्र महाराजाधिराज श्री कर्णदेव।

अपनी पितामहीके षाण्मासिक श्राद्ध, अपने पिताके पार्वण श्राद्ध और अपनी माताके श्राद्ध समय जगद्‌गुरु भवानी पतिकी पूजा अर्चना के अनन्तर हाथमें कुश जल और हिरण्यलेकर उनकी अर्थात दादी पिता और माताके अक्षय शान्ति कामनासे जामदग्नेय गोत्र पंच प्रवर वेद वेदाङ्ग पारगत-वहुधान निवासी हरिकृष्ण रामकृष्ण और सोमदत्त, देवसारिका निवासी वसिष्ट गोत्री सकल शास्त्र निष्णात यज्ञदत्त और कृष्णदत्त वाघेवली निवासी भारद्वाज गोत्री विज्ञानदत्त हरिदत्त और रेवादत्त और कच्छावली निवासी गौतम गोत्री त्रिप्रवर शुक्ल शालाध्यायी एकादश ब्राह्मणों को वैहारिका विषयातपाति कार्पुर ग्राम सवृक्षाराम तृण गोचर हिरण्य भोग।भादि समस्त आय के साथ समान भागसे दान दिया। यह बात सबको विदित हो उक्त ग्राम के निवासीओं को उचित है कि समस्त आय ब्राह्मणों को दिया करें। इसमें किसी को बाधा न करना चाहिए। इस ग्रामकी चारों सीमाए निम्न प्रकार से है।

सीमाएँ—

| | | | |
|---|---|---|---|
| पूर्व दिशा | सिमलता | पश्चिम | वालाधन |
| दक्षिण | शाकंभरी | उत्तर | विशालपुर |

हमारे अथवा अन्य वशोद्भव भावी भूपालोको उचित है कि हमारे इस धर्मदाय का पालन करें। धर्मदाय के पालने से पुण्य और अपहरण से महापातक होता है। सगरादि बहुतो ने वसुधा का भोग किया है। किन्तु जिसके अधिकार में पृथिवी जिस समय होती है उसके दानका उसको ही फल होता है। भूमिदान देनेवाला साठ हजार वर्ष स्वर्गमें वास करता है। और भूमिदानका अपहरण करने तथा अपहरणकी अनुमति देनेवाला इतनी ही अवधि पर्यन्त नरकमे निवास करता है। जम्बुकेश्वर निवासी नागर सोमदत्त के पुत्र हर्ष ने इस शासन पत्रको कर्णदेव की आज्ञा से लिखा। इस शासन पत्र का दूतक महासन्धि विग्रही वीरदेव है। इस शासन पत्रकी तिथि आश्विन कृष्ण चतुर्दशि संवत १२७७ विक्रम।

# कर्ण देव के शासन पत्र

## का

## -:विवेचन:-

प्रस्तुत शासन पत्र मगलपुर वासन्तपुर के चौलुक्य कर्णदेव के अपनी गादी के अर्थ वार्षिक और माता के श्राद्ध तथा पिता के पार्वण श्राद्ध कालमें उनकी आत्माकी शान्ति के उद्देश्य मे ब्राह्मणों को दान में दिये हुए ग्रामका प्रमाण पत्र है। इसका लेखक जबुकेश्वर का रहने वाला नागर सोमदेव का पुत्र गर्ग और दूतक वीरदेव तथा लेखकी तिथि आश्विन कृष्णा १४ सवत १२७७ है। चौलुक्याकी वशपरपरा देने पश्चात दाता कर्णदेवकी वशावली निम्न प्रकार से दी गई है।

वशावली—

| | |
|---|---|
| (१) विजयसिंह | (४) रामदेव |
| \| | \| |
| (२) धवलदेव | (५) वीरदेव |
| \| | \| |
| (३) याम तदेव | (६) कर्णदेव |

शासन पत्र से प्रकट होता है कि कर्णदेवको अपने दादा से गदी मिली थी। परन्तु उसकी मृत्यु कब हुई शासन पत्र से प्रकट नही होता। परन्तु शासन पत्र कर्ण के पिता के पार्वण श्राद्ध काल म लिखा गया है। पार्वण श्राद्ध प्रथम वार्षिक तिथि पर होता है। अत कर्णदेवके पिताकी मृत्यु काल आश्विन कृष्णा १४ सवत १२७६ ठहरता है। इससे प्रकट होता है कि कर्णदेवको उसके दादाने उसके पिताकी मृत्यु पश्चात शोक से समाप्त हो अपने जीते जी गदी पर बैठा दिया था और शासन पत्र लिखे जाने के समय वह जीवित था। यदि ऐसी बात न होती और कर्णका दादा पहले मरा होता तो उसे राज्य अपने पितासे उत्तराधिकारमे मिला होता। वीरदेवका शासन पत्र विक्रम सवत १२३५ का हमे प्राप्त है। अत उसका राज्यकाल १२३५ से १२७६ पर्यन्त ४२ वर्ष है।

दान ग्रहिता ब्राह्मणा का विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है। वर्धमान निवासी हरिकृष्ण - रामकृष्ण सोमदत्त प्रभृति तीन ब्राह्मण देवसारिका निवासी वासिष्ठ गोत्री यशदत्त वेद स - कृष्णदत्त प्रभृति तीन ब्राह्मण, वार्धवली प्रतिवासी भारद्वाज गोत्री विज्ञान दत्त हरिदत्त देवादत्त तीन ब्राह्मण और कन्द्धावली प्रतिवासी गौतम गोत्री विश्वनाथ आदि एकादश ब्राह्मण।

इनको विहारिका विषयका कर्पराग्राम समान भाग रूपसे दिया गया है।

प्रदत्त ग्राम और प्रतिगृहिता ब्राह्मणों के निवास का वर्तमान समयमें परिचय मिलता है अथवा नहीं। हमारी समझमें शासन पत्र कथित विहारीका वर्तमान व्यारा है। क्योंकि विहारी का विआरा और विआरा का व्यारा बन सकता है। विहारिका को व्यारा मान लेने के बाद हमें उसके आसपास में ही प्रदत्त कर्पर ग्रामका परिचय प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना होगा। वर्तमान व्यारा नगरसे लगभग सात आठ मील की दूरी पर दक्षिण दिशा में कपुरा ग्राम है। शासन पत्र कथित कपुरा के पूर्व में सिमलद, दक्षिण में शाकंभरी नदी, पश्चिम में वालाधेन और उत्तरमें विशालपुर है। वर्तमान कपुरा के पूर्व में चिखलद, दक्षिण में झाखरी, पश्चिम में वालोड, और उत्तर में खुशालपुर है। हमारी समझमें शासन पत्र कथित शाकंबरी नदी वर्तमान झाखरी है क्योंकि शाकंभरीसे अनायास ही शाखभरी और शाखरी से झाखरी बन सकता है। शासन पत्र के वालाधेनका अनायास ही वालोढन और वालोढन का वालोड हो सकता है। अतः वर्तमान वालोड़ही वालाधेन का रूपान्तर है। इसी प्रकार विशालपुर का खुशालपुर भी बन सकता है। हा शासन पत्र कथित सिमलद का वर्तमान परिचय प्राप्त करने का हमारे पास कुछभी साधन नही है।

ब्राह्मणों के निवास वाले ग्रामों के सम्बन्ध मे हमारा विचार है कि शासन पत्र का बहुधान ताप्ती तट का बोढाण है। देवसारिका सम्भवतः विल्लीमोरा के पास वाले देवसर या देसरा में से कोई एक ग्राम हो सकता है। परंतु हमारी प्रवृत्ति शासन पत्र के देवसारिका को वर्तमान देवसर ही मानने को अधिक होती है। अन्ततोगत्वा शासन पत्र कथित कच्छावली ग्राम गणदेवी और अमलसाड के मध्यवर्ती कछोली नामक ग्राम है। इस ग्राम का उल्लेख पाटन पति कर्णदेव के विक्रम संवत ११२१ वाले लेख मे है। उक्त लेख का विवेचन चौलुक्य चन्द्रिका पाटन खण्ड में हम विशेष रूपसे कह चुके हैं।

शासन पत्र के बारम्बार पर्यालोचन से भी वीरसिंह के पुत्र और शासन कर्ता कर्णदेव के पिता का नाम ज्ञात नही हुआ। संभव है कि लेखक के हस्त दोष से उक्त नाम छूट गया हो। यदि वास्तव में उसका नाम जान बूझकर छोड़ दिया गया है तो हम कह सकते है कि वंशावलीमें केवल राज्य करने वालों के ही नाम दिये गये है। अन्यान्य शासन पत्रों के अध्ययन से भी यह सिद्ध होता है कि शासन पत्रोंकी वंशावली में केवल शासन करने वालों ही का नाम दिया जाता है। अतः कर्णदेव के पिता, शासन पत्र कथित वंशावली में, के नामका अभाव शासन पत्र का दोष नही है।

इस लेख से प्रगट होता है कि कर्ण के पिता के पार्वण श्राद्ध समय शासन पत्र लिखा गया था। अतः कर्ण के पिताकी मृत्यु इस लेख की तिथि से एक वर्ष पूर्व होनी चाहिये। क्योंकि पार्वण श्राद्ध मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् किया जाता है। अतः कर्ण के राज्यरोहण का समय भी इस प्रकार हमें विक्रम संवत् १२७६ प्राप्त हो जाता है।

# वारोलिया का प्रथम लेख

(१) स व त श्री १ ३ ७ ३ का र्ति क कृ ष्ण
(२) ७ श्री आ दि दे व य न म । श्री
(३) रा ज कृ ष्ण दे व त स्य——— श्री
(४) क्षे म दे व र ज स्या – म न श्री र म
(५) दे व रा ज स———श्री कृ ष्ण दे
(६) व रा ज स्य क ला रा वि ज रा ज्ये

# परिष्कृत प्रतिलिपि

सवत श्री १ ७३ कार्तिक कृष्ण ७ श्री आदि देवाय नम । श्री राना कृष्ण देवतस्य (। समजो ) श्री क्षेम ( सोम या भीम ) देव राजस्या ( न ) मन श्री रामदेव स्तस्या ( त्मज ) श्रीकृष्ण देव राजस्य कला ( स्या ) ण विज ( य ) राज्ये ( ज्य ) ॥

# वारोलिया का द्वितीय लेख

(१) म व त १ – – ३ व र्ष का र्ति क कृ
(२) ष्ण ७ सा में श्री कृ ष्ण रा य दे व म श्री
(३) श्री उ द य रा ज पौ त्र —— श्री कृष्ण
(४) दे व रा जे न प्र ति ष्ट तो य श्री आ दि
(५) दे व स कृ त य च द्र र्के
(६) य तु श्री कृ ष्ण रा ज मू श मि ति

# परिष्कृति लेख

सवत १३–( ७ ) ३ वर्ष कार्तिक कृष्ण ७ सोमे श्री कृष्ण रायदेव म ( स्य ) श्री उदयराज पौत्र ( त्रे )—( ण ) श्रीकृष्ण देवराजे न प्रति ( ष्ठि ) ताय श्री आद ( दि ) देवम ( सु ) कृत ( तो ) य——( याव ) चन्द्रार्क—— —( । सैय शिवति म ) यतु श्रीकृष्ण राजस्य शमिति ।

# श्री चौलुक्यराज कुम्भदेव
## का
## शासन पत्र

स्वस्ति श्री मदादि देवाय नम. ।

अस्ति भूवन विदिता पुराण प्रख्याता चौलुक्य नगरी मगलपुरी नामा । तस्या अधि राजा परम भाट्टारक परमेश्वर महाराजा श्री कृष्णराज स्तत्पादानुध्यात परम भट्टारक परमेश्वर महाराजा श्री उदयराज तत्पादानुध्यात महाराजा श्री रुम्मदेव तत्पानुध्यात् राजा श्री क्षेमराज स्तत्पादानुध्यात राजा श्री कृष्णराज स्तस्यानुजन्मा तद्विजय राज्ये श्री कुम्भदेवेन भूपतिना धवल नगर्या मादिदेवोऽयं प्रतिष्ठितः ॥ शमिति सुकृतोऽयं श्री कृष्णराजस्य ॥ सम्वत १३७३ विक्रमातीत १२३८ शाली वाहन शाके । कृष्ण सप्तमी कार्तिक मासे

# श्री कुम्भदेव के शासन पत्र
## का
## छायानुवाद

कल्याण हो । श्री आदि देवको नमस्कार । भूवन विदित पुराण प्रख्यात चौलुक्यों की मंगलपुरी नामक नगरी है । मंगलपुरी का अधिराजा परम भट्टारक परमेश्वर महाराजा श्री कृष्ण देव हुआ । श्री कृष्णदेवका पादानुध्यान् पर भट्टारक श्री महाराज उदयराज । श्री उदयराज का पादानुध्यान महाराज श्री रुम्मदेव । श्री रुम्देव काम पादानुध्यान् श्री क्षेमराज और श्री क्षेमराज का पादानुध्यान् श्री कृष्णराज । श्री कृष्णराज का छोटाभाई कुम्भ देवने उसके विजय राज्य काल मे धवल नगरी के अन्तर्गत श्री आदि देवकी स्थापनाकी । कल्याण हो । इस देव स्थापना की सुकृति श्री कृष्णराज को प्राप्त हो । कार्तिक कृष्ण सप्तमी संवत् १३७३ विक्रम तदनुसार १२३८ शक।

# विवेचन

प्रस्तुत लेख मंगलपुरी के चौलुक्य राजा कृष्णराज के भाई कुम्भदेव का है। यह लेख सूरत जिले के चिखली नामक तालुका के अन्तर्गत वारोलिया नामक ग्राम के पास बहने वाली नदी के किनारे पर पत्थर पर खुदा हुआ है। पत्थर के आकार से प्रतीत होता है कि उक्त पत्थर किसी मन्दिर की दिवाल का पत्थर है। हमारी इस धारणा का समर्थन इस बात से होता है कि लेख में आदि देव की स्थापना का उल्लेख है। पुनश्च जहां पर यह पत्थर पड़ा है वहां से कुछ पश्चिम हटकर दो मूर्तियां जमीन में गड़ी हुई थीं। उक्त मूर्तियां का अधिकांश पृथिवी के गर्भ में था। उनको खोदकर निकालते ही पर प्रत्येक पर खुदे हुए लेख मिले। इन मूर्तिओं का पत्थर एक फिट मोटा, लगभग दो फिट चौड़ा और पांच फिट लम्बा है। इनके नीचे के भाग में लेख खुदा है। लेख का अक्षर प्रायः नष्ट गया है। परन्तु "कृष्णराज विजयराज्ये" बहुत ही स्पष्ट है। इन्हीं मूर्तिओं के समान गणदेवा नामक ग्राम के एक शिव मन्दिर में दो मूर्तियां दिवाल में चुनी हुई है। इन मूर्तिओं के भी निम्न भाग में लेख है। वारोलिया और गणदेवा दोनों स्थानों की मूर्तिओं का लेख प्रायः एकही है। यदि कुछ इनमें अन्तर है तो वह केवल तिथि संबंधी है। इन चारों मूर्तियों के टूटे फूटे अक्षरों को प्रस्तुत लेख के साथ मिला कर पढ़ने से इन लेखों का यथार्थ परिचय मिल जाता है। क्योंकि प्रस्तुत लेख के अक्षर ईश्वर कृपा से स्पष्ट और सुरक्षित है। इस लेख से मूर्तियों के लेख के टूटे हुये अंश को पूरा करने में प्रचुर सहायता मिलती है। वारोलिया की मूर्तियों के लेखों को इस लेखकी सहायता से रूपान्तर कर हम इस लेख के पूर्व में दे चुके है। गणदेवाकी मूर्तियों के लेख का अवतरण अनावश्यक मान हम नहीं देते है। प्रस्तुत लेख में कुम्भदेव और उसके भाई कृष्णराज की वंशावली निम्न प्रकार से दी गई है।

कृष्णदेव
|
उन्यराज
|
रुद्रदेव
|
क्षेमराज
|
कृष्णराज — कुम्भदेव

परन्तु लेखकी तिथि के अतिरिक्त किसी भी राजा के राज्यारोहण आदि की तिथि नही दीगई है। प्रस्तुत लेख की तिथि विक्रम संवत १३७३ है परन्तु गणदेवा के मूर्तियों के लेख की १३६२ और १३६३ है। और वारोलिया की मूर्तियों के लेख का सवत १३७१-१३७३। अतः दोनों स्थानोंकी मूर्तियो और प्रस्तुत लेखकी तिथि में १० वर्षका अन्तर है। संभव है कि कुम्भदेव ने प्रथम गणदेवा में मूर्तियों की स्थापना की हो और बाद को धवलधोरा-वारोलिया में इनके लेखों के अन्तर से कोई महत्व पूर्ण परिवर्तन नही होता। कृष्णराज और कुम्भदेवका समय १० वर्ष पूर्व और चला जाता है। अब यदि हम कुम्भदेव और कृष्ण का प्रारंभिक समय १३६१ ही मान लेवे और प्रत्येक के लिए २२ वर्ष और ५ महीना का औसत मान लेवें जैसा कि तत्कालीन राजवंशो का औसत हैं तो उसके पूर्वज वंश संस्थापक कृष्णराज का समय विक्रम १२७१ प्राप्त होगा। अब विचार उपस्थित होता है कि कृष्णराज किस मंगलपुरी का राजा था। क्या यह वही मंगलपुरी है जिसको वसन्तपुरी के चौलुक्यो के पूर्वज विजयसिंह ने अपनी राजधानी बनाई थी। जहां से हटकर वासन्तपुरको वीरसिंह ने अपनी राज्यधानी बनाई थी। क्या वीरसिंहके पूर्वजोंके हाथ से मंगलपुरी छीननेवाला प्रस्तुत लेख का कृष्णराज ही हैं मंगलपुरी के इन चौलुक्यों का संबंध किन चौलुक्योंके साथ था। इन प्रश्नों का उत्तर देनेका साधन पर्याप्त उपलब्ध नहीं है तथापि अनुमान के बल से कुछ प्रश्नों का समाधान करने का प्रयास करते हैं।

अनुमान द्वारा प्रस्तुत लेखके वंश संस्थापक कृष्णराज का समय विक्रम १२७१ के लगभग प्राप्त हुआ है। अब देखना है वसन्तपुरीके चौलुक्योंकी राज्यधानी मंगलपुरी में कबतक रही। वीर को विक्रम सवत १२३५ के लेख में स्पष्ट रूपेण लिखा है कि उसने वासन्तपुर अपनी राजधानी बनाया। इससे स्पष्ट है कि वसन्तपुर वालों के हाथ से मंगलपुरी विक्रम १२३५ के पूर्व छिन गई थी। अथवा उसकी राज्य लक्ष्मीका अपहरण पाटन वाले कर चुके थे। इधर कृष्णराजका समय १२७१ है। इससे आगे इसका समय नहीं मान सकते। अतः यह मंगलपुरी का छीनने वाला नही हो सकता। पुनश्च मंगलपुरी की राजलक्ष्मी का पाटन वालों के हाथ से उद्धार करने वाला वीरसिंह प्रकृत वीरसिंह था। जब उसने पाटन वालों के हाथ से अपने वंश की लक्ष्मी का उद्धार किया था तो ऐसी दशा में मंगलपुरी को भी अवश्य स्वाधीन किया होगा।

वीरसिंह के बाद उसका पौत्र कर्णदेव गद्दी पर बैठा। उसके १२७७ के लेख के विवेचन में उसका राज्यारोहण और वीर का अन्तकाल १२७६ दिया हैं। इधर कृष्णराज का अनुमानिक समय १२७१ है। जब तक वह वीरसिंहका संबन्धी भाई भतीजा चचा प्रभृति न हो तबतक उसका मंगलपुरी प्राप्त करना असभव है। परन्तु इसके और न वीरसिंह के सम्बन्ध का परिचायक सूत्र न तो इसके अपने लेख में है और वीरसिंह अथवा उसके पौत्र के लेख में मिलता है।

संभव है कि वीरदेवका कोई संबन्धी हो और उसने इसको मंगलपुरी का शासक नियुक्त किया हो।

मगलपुरी का परिचय पाना असम्भव है। अतएव इस प्रयास को छोड़ लेख कथित धवल नगरी का विचार करते है। लेखसे प्रगट होता है कि कुम्भदेव ने धवल नगरी म आदि देव की प्रतिमा स्थापित की थी। परन्तु प्रस्तुत लेख और एक दानो मूर्तिया जिस स्थान म पाई गई है उसका नाम वारोलिया है। हा उसके समीप बहने वाली नदी को धवलधरा कहते है धवलधरा का शाब्दिक अर्थ होता है धवल के पास। अत इस स्थान के समीप धवलनगरी का होना प्रगट होता है। वारोलिया ग्राम के चारों तरफ मिलो आप चाहे जिस खेत अथवा टीले को खोदें आपको सवत्र पुरातन जनपद का अवशेष मिलेगा। यहा पर वर्षाऋतु म पुरातन सिक्के मिलते है। खोदने पर बडी २ ईंटें और मिट्टी के बर्तन दृष्टिगोचर होते है। यहा की जनता म प्रसिद्ध है कि यहा पर धवल नामक बहुत बडा नगर था जो किसी राजा की राजधानी थी। हमारी समझ धवल नगर का अवशेष यही स्थान है।

धवलनगरी के अवस्थान का विचार करने के बाद अब हम आदि देव के सम्बध विचार करते है। प्रस्तुत लेख के आदि देव से अभिप्राय चौलुक्यों के कुलदेव वाराह या आदि वाराह से है। एव आदिदेव विष्णु का भी नाम है। किन्तु मूर्ति के आकार प्रकार से वह विष्णुकी मूर्ति नही कही जा सकती। हा इस प्रकार की वाराहकी मूर्ति सह्याद्रि प्रदेश म अनेक स्थानों में हमें देखने को मिली है। एव नासिकम मूलगगा जाते समय अमृतकुण्ड के समीप एक मूर्ति ठीक वारोलिया के मूर्ति क समान है। अत हम नि शक हो कह सकते है कि लेख का आदि देव वाराह का द्योतक है।

वशसस्थापक कृष्ण के बाद उसके वशजो क विरुद बदते गये है। वश स्थापक कृष्णराजके विरुद "परम भट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज" है। उसके पुत्र ध्न्यराज के भी उसके समान ही है। परन्तु पौत्र रुद्रदेव महाराजा तथा प्रपौत्र क्षेमदेवका तथा उसके पुत्र कृष्णराज के केवल राजा रह गये है। इससे प्रगट होता है कि कृष्णराज के वशजोंने स्वातन्त्र्य सुख का भोग नहीं किया था।

कृष्णराज के वशजो का क्या हुआ इसका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। सभव है कि वे मुसलमानो के झपट म आ गए हो। क्योंकि वह समय अलाउद्दीन खिलजी के गुजरात और दक्षिण तथा मालवा और राजपुताना क विलोडन करने का है। धवलधरा ( वारोलिया ) के मन्दिरों का अवशेष प्रगट करता है। कि उनका विनाश मुसलमानो के धार्मिक उन्मादका देदीप्यमान चिन्ह है।

# बलाक ( अजराभील ) क्षेत्र
## का
# शिला प्रशस्ति.

स्वस्ति श्री । श्रीगणेशाय नमः । श्री साम्ब शिवाय नमः । श्री गुरु चरणारविन्दाभ्यां नमः ।

आसीत्पुरा परा काश्यां क्षेत्रे तापत्या संन्निधौ ॥
महात्मा योग युक्त स्मा वेद वेदान्त पारगः ॥ १ ॥
उपदेष्टा ज्ञान मार्गस्य लोकानां हित कांक्षया ॥
साक्षाच्छंकर रूपस्तु श्री मच्छंकर भारती ॥ २ ॥
तच्छिष्योहं संप्रति वरः कृष्णा नन्द भिधो मुनिः ।
वासन्तपुरे निवसन वर्षायां यति धर्मतः ॥ ३ ॥
चौलुक्य राज महिषी मुपदिष्य शिवाज्ञया ॥
सम्प्राप्य बहुलश्चार्थं कृतोऽयं शिव मंदिरं ॥ ४ ॥
वस्वग्नि वेति वेदार्के विक्रमाती त वत्सरे ॥
मधुमासे सिते पक्षे द्वादश्यां भौम वासरे ॥ ५ ॥

अङ्कतोपि १४३८ चैत्र सुदी १२ भौमवारे समाप्तोऽयं शिव मन्दिर मिति । सुकृतोऽयं फलदः भूयात । कल्याणमस्तु । शमिति ॥

## छायानुवाद

कल्याण हो । श्री गणेश को नमस्कार । श्री साम्ब शिवको नमस्कार ! श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों को नमस्कार ।

पूर्व समय तापी तटवर्ती अपराकाशी ( परा काशी ) नामक क्षेत्र में साक्षात भगवान शंकर स्वरूप योगयुक्त वेदवेदांग पारगामी संसार के कल्याणार्थ ज्ञान उपदेष्टा श्री शंकर भारती नामक महात्मा निवास करते थे ।

उक्त महात्मा शंकरानन्दके शिष्य कृष्णानन्द ने संप्रति वर्षा ऋतुमें सन्यास धर्मके नियमानुसार वासन्तपुर में निवास करते समय चौलुक्य राज्य महिषी को भगवान शंकर की आज्ञा से उपदेश देकर बहुत सा धन प्राप्त कर इस शिव मन्दिर का निर्माण किया है । ३-४ ॥

वसु = आठ, अग्नि = तीन, वेद = चार, और अर्क = एक अर्थात १४३८ विक्रम चैत्र शुक्ल द्वादशी भौमवार । अंक से भी १४३८ चैत्र सुदी १२ भौम वार । यह सुन्दर कृत फलदायक हो । कल्याण हो । इति ।

## विवेचन

प्रस्तुत प्रशस्ति शंकरानन्द स्वामी के शिष्य कृष्णानन्द कृत किसी शिव मन्दिर की प्रशस्ति है। यह वर्तमान समय अजराभील नामक तापी तटपर एक-पीपल के नीचे पडी है। भील लोग इसको देवता मान पूजा करते हैं। प्रशस्ति की शिला ६॥ हाथ लम्बी ६॥ हाथ चौडी और १॥ वालिश्त के करीब मोटी है। चाडाई वाले अश में सात पक्तिया खुदी है। लेख की लिपि देवनागरी और भाषा संस्कृत है। प्रथम और सातवीं पक्तिया गद्यमय और शेष पाच पक्तिया अनुष्टुप छन्दमय है। श्लोकों की सख्या पाच है। प्रारम्भिक गद्य मे गणेश शिव और गुरु को नमस्कार। प्रथम श्लोक के प्रथम भाग मे तापी के समीप पराकाशी नामक क्षेत्र का वर्णन है। प्रथम दो श्लोक के द्वितीय भाग और द्वितीय श्लोक मे शकरानन्द स्वामी की प्रशंसा है। तीसरे श्लोक में लिखा गया है कि शंकरानन्द के शिष्य कृष्णानन्द ने वर्षाऋतु मे वासन्तपुर निवास किया था। चौथे श्लोकमें वर्णन किया है कि कृष्णानन्दने चालुक्य राज्य की पटराणीको उपदेश कर धन प्राप्त किया और उक्त धनमें शिव मन्दिर बनाया। पाचवे श्लोक में लेखकी तिथि है। अन्तिम गद्य मे तिथि अक देने पश्चात शुभ कमना के वाक्य है।

लेख में राजा का नाम नहीं दिया गया है। परन्तु लेखकी तिथि विक्रम सवत १४३८ दी गई है। अत इससे सिद्ध होता है कि वासन्तपुर का चौलुक्य वश १४३८ पर्यन्त शासन करता था। वासन्तपुर के राजा कर्णदेव का लेख हम पूर्व मे उधृत कर चुके है। इसकी तिथि १२७७ है। उक्त लेख के समय से १४३८ पर्यन्त १६१ वर्ष का अन्तर पडता है। अत इस अवधि में वसन्तपुर की गद्दी पर कमसे कम ६ राजा होना चाहिए। प्रशस्ति कथित अपरा काशी तापीतट का प्रकाशा है। प्रकाशा क्षेत्र का तापी पुराण में बहुत महात्म्य लिखा है। इसकी तुलना वरानसी से की गई है। प्रकाशा तापी के उत्तर तट पर है। प्रकाशा मे पुरातन नगर का अवशेष है। एव आजभी सैकडा की सख्या में मन्दिर है। प्रकाशा ग्राम से एक मील की दूरी पर प्रकाशा क्षेत्र है। जहा पर विश्वनाथ, केदार और पुष्पदन्तेश्वरके गगनस्पर्शी मन्दिर बने है। और तापीका घाट बधा है। इससे वाराणसी की छटा दीखती है। केदार मन्दिरसे कुछ दूर तट पर ५६ समाधि मन्दिर है। इनमे १७ बडे, २६ छोटे और शेष मझले है। यहापर भारती बाबा की बहुत ख्याति है। इनमें का विशाल मन्दिर भारतीबाबा की समाधि बताई जाता है। इन समाधि मन्दिरोंकी दशा बिगड रही है। इन मन्दिरो के अवशेषो मे ईंट पत्थर स्थान पर हमें तीन पटिया मिलीं जिन पर लेख खुदे है।

प्रथम लेख वैशाख तृतीया विक्रम सवत १४२८ का है। इससे प्रगट होता है कि तापी तटवर्ती पराकाशा के केदार मन्दिर मे शकरानन्द का स्वर्गवास हुआ था। दूसरा लेख माघ शुक्ल पचमी विक्रम सवत १४६६ का है। इससे प्रगट होता है कि पराकाशी केदार मन्दिर मे कृष्णानन्दकी मृत्यु हुई थी। तीसरा लेख वैशाख कृष्ण षष्ठी विक्रम १४०१ अथवा १४११ का है। इससे प्रगट होता है कि कृष्णानन्द के शिष्य आमानन्द की मृत्यु हुई थी। इन लेखो से कृष्णानन्द की प्रशस्ति कथित प्रकाशा में शकरानन्द के निवासका समर्थन होता है।

# वासंतपुर की राज प्रशस्ति

आसीत् दण्डका रण्ये सुरम्या नगरी पुरा ॥
वेष्टिता दुर्ग चक्रेण देवद्वार समाकुला ॥ १ ।

मंगलादौ पुरी चान्ते विश्रुतया भुवि नाम्ना ॥
शक्रपुरी समालोके विभाति दक्षिणा पथे ॥२॥

श्री जयसिंह देवस्य चात्मजो विजयाभिधः ॥
चौलुक्य वंश तिलको बभूव भूभुवश्चाचौ ॥३।

योधिष्ठितस्तु नगरं स्वप्रान्ते विजयापुरं ॥
ततो बभूवो तद्वंशो धवलदेवो भूपतिः ॥ ४ ॥

जाता स्तस्मा लीलादेव्यां सुनुवः पाण्डवाः समाः ॥
ज्येष्ठो वासन्त देवश्च कृष्णदेवो तथापरः ॥५॥

तृतीयस्तु महादेव श्चतुर्थ श्चाचिक स्मृनः ॥
भीमस्तत्र कनिष्ठोऽभूतिनृपदे परायणः ॥ ६ ॥

धवलस्य पंचत्वेतु वासन्तो राजा बभूव ॥
जातौ तस्मा द्वागदेव्यां तनुजौ राम लक्ष्मणौ ॥७॥

निर्मिता रामदेवेन पुरीचैका मनोहरा ॥
वासन्तपुर नाम्नासा ख्याता जगती तले ॥ ८ ॥

तद् भ्रातृ पुत्रोऽसौ वीरः वीर नां मुकुट मणिः ॥
पराभूयं श्चारी न्सर्वा न्वासन्ते विर राज सः ॥ ९ ॥

तद्राज्ञी विमलादेवी प्रसूता यमलौ सुतौ
मूलदेवस्तु कृष्णाख्यौ द्वयोपि भूरि विक्रमौ १०

वयसि संगते कृष्णः राज लिप्सा भिकांक्षया
धार्तराष्ट्रा न्समान्धस्तु दुरात्मा ज्ञान वर्जितः ११

औदण्ड्य च्चापलत्वेन वन्धु घातेन कण्टकः
पित्रव वेदक श्लोके संबभूव स दुष्कृतः १२

तु ग्वालं श्शक सतत्न वीरसिंहश्च भूभुज
त स्वराज्यादूवहिस्कृत्य वार्य्यमानो (ऽपि) मात्रिणा १३
निधाय स्वपौत्र स्वराज्ये कर्ण मूलस्य चात्मज
विलपन्तीं प्रजा त्यक्त्वा वाणप्रस्थे जगाम ह १४
तन्महिषी बकुलादेवी माधवी नाम्ना विश्रुता ॥
अजीजनत्पुत्राल्लोके रामार्जुन भीमोपम न् १५
सगते विष्णु सायुज्य पचत्वे करणे दिवि ॥
क्रमेण चक्रु वासन्ते शासन चान्धवास्त्रयः १६
ज्येष्ठ सिद्धेश्वरो नामा विशालस्तु द्वितीयक
जातश्चान्ते धवलस्तु वीरनामा परोऽपि य १७
वासुदेव स्ततो राजा धार्मिको धवलात्मज
ततो बभूवो नृपति भीमो भीम पराक्रम ॥१८
आम्बिका कुल सन्गो सहवेणु कुंज समन्विते ।
वासुदेव पुर भव्य विष्णु विग्रह संयुतम् ॥१९
तत्पुत्रो वीरदेवस्तु रामनामा परोऽपिय ॥
जातो हेमवती देव्या चन्द्र श्रीलुक्य वारिधे २०
शौर्ये राम समा यस्तु धर्मे धर्मसुतोऽपर ॥
शत्रोः कालान्तक स्लोके चाश्रितपु च शंकर ॥२१
तन्महिषी सीतादेवी प्रेयसी पद सगता ॥
शची शिवा रमाभिश्च यालमत्समता भुवि ॥ २२
सीता प्रसूता रामाय सुतान् चत्वारि सत्यकान ॥
वासन्तदेवोऽभत्तेपु ज्येष्ठ राम समो भुवि ॥ २३
सौमित्रेयोपमालोके महादेव द्वितीयक ॥
भरतेव कृष्णस्तत्र कीर्तिदेवोऽपि तद्वत ॥ २४
एमि पुत्रै ससमावृत्त प्रजाभि श्चाभि पूजित ॥
आहतस्तु द्विजे रामोऽलभसाक सुखं भुवि ॥२५

रराज रामो राजधान्यां यथा स्वर्गे शचीपतिः
पृच्छ्य परिजनश्चैव मोदतः स्वजनं तथा ।२६
सहस्या संप्लवे जाते निहतो वसन्ताहवे
अराति लुंठिता सर्वा निमिरा छन्नमेदिनी २७
रामाभिषेक वार्तायाः साकेतिकाः हर्षोन्मत्ताः
अनन्ताद दुःखार्तास्तु. जाता मुमूर्षतां यथा २८
चौलुक्य चन्द्र सम्राड् वासन्तिका सर्वे तथा
भिगन संकुले रामो वासुदेवे समागतः २९
तदा सर्वान्समाहूय पुत्रान् परिजनां स्तथा
कर्णेयं कृष्णाय महादेवाय मधुपुरं ३०
कीर्तिराजाय पार्वतं क्रमेण विषया ददौ
दत्वा स्वराज्यं पौत्राय रामो विष्णु गृहं गतः ३१
वीरोऽपि राज्यं संप्राप्य प्रवृत्तः प्रजारंजने
तमनु रंजयामास प्रशस्ति माला गुम्फिता ३२
शंकरानंद शिष्येण कृष्णानंदेन धीमता
चलु श्चत्वारिंश च्चैव चतुर्दश शतो परि ३३
श्रावणे च सिते पक्षे द्वादश्यां रवि निर्गते
विक्रमादित्य कालस्या तनिपु तिथि वासरे ३४

# वसन्तपुर राज प्रशस्ति

## का

## छायानुवाद

पूर्व समय दण्डक अरण्य नामक भूभागके अन्तर्गत दुर्ग प्रकोट और चक्रा से वेष्टित तथा देव मन्दिरों से परिपूर्ण एक अति मनोहर नगरी थी। १ ॥

उक्त नगरी का नाम-जिसके प्रथम मगल और अन्त में पुरी ऐसे दो शब्द है अर्थात मगलपुरी था। उक्त मगलपुरी दक्षिणा पथमें देवेन्द्र इन्द्रकी अमरावती के समान शोभायमान थी -२-॥

कथित मगलपुरी का चौलुक्य वशाद्भूत चौलुक्य कुल तिलक श्री जयसिंह का पुत्र श्री विजयसिंह प्रथम राजा हुआ। ३ ॥

विजयसिंह ने अपने राज्य के अन्तर्गत विजयपुर नामक नगर बसाया। विजयसिंह के पश्चात धवल देव राजा हुआ। ४ ॥

धवल को अपनी महिषी लीलादेवी के गर्भ से पाण्डवा के समान पुत्र हुए। उनमे वसन्त देव ज्येष्ठ, कृष्णदेव द्वितीय, । ५ ॥

महादेव तृतीय, चाचिक देव चौथा और पाचवा भीम जो अपने पिताका परम भक्त था। ६ ॥

जब धवलदेव काल कवलित हुआ तो उसका उत्तराधिकारी वासन्तदेव हुआ। वासन्त देव को अपनी राणी वाग्देवीके गर्भ से राम और लक्ष्मण नामक दो पुत्र हुए। ७ ॥

रामदेवने अपने पिता के नामानुसार वासन्तपुर नामक एक अति मनोहर नगर बसाया। ८ ॥

रामका भ्रातृ पुत्र वीरा का मुकुटमणि वीरदेव ने शत्रुओं का पूर्ण रूपसे नाश कर वासन्तपुर में निवास किया। ९ ॥

वीरदेव की विमला देवी नामक राणी ने मूलदेव और कृष्ण देव नामक दो पराक्रमी पुत्र प्रसव किया। १० ॥

कृष्ण देव जब यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ तो राज्यलोभ में पड़कर धार्तराष्ट्रों अर्थात् दुर्योधनादि के समान मदान्ध दुर्बुद्धि और दुरात्मा हुआ। ११ ॥

कृष्णदेव अपनी उद्दण्डता और चपलता तथा बन्धुघात के कारण अपने पिता को संसार में कष्ट देने वाला तथा दुष्कृत हुआ। १२ ॥

वीरसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मूलदेव की मृत्यसे दुःखी और शोक संतप्त हो मंत्रिओंके मना करने पर भी छोटे पुत्र कृष्णदेव को राज्य से वहिष्कृत किया। १३ ॥

और मूलदेव के पुत्र कर्णदेव को राज्य सिंहासन पर बैठा प्रजा को विलपती हुई छोड़ कर जंगल में जाकर वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण किया। १४ ॥

कर्णदेव की महिषी वकुला देवी उपनाम माधवी ने राम अर्जुन और भीम के समान पराक्रमी पुत्रों को प्रसव किया। १५ ॥

जब कर्णदेव ने अपनी इह लीला को समाप्त किया और विष्णु लोकमें जाकर विष्णु की सायुज्यता प्राप्त की तो तीनों भाइओं ने क्रमश वासन्तपुर का राज्य शासन किया। १६ ॥

इन तीनों भाइयों में ज्येष्ठ सिद्धेश्वर, मध्यम विशालदेव और कनिष्ठ धवलदेव उपनाम वीरदेव था। १७ ॥

धवलदेव उपनाम वीरदेव के पश्चात उसका परम धार्मिक पुत्र वासुदेव गद्दीपर बैठा। वासुदेव के पश्चात उसका पुत्र भीम समान पराक्रमी भीमदेव राजा हुआ। १८ ॥

भीम ने अपने पिता के नामानुसार-अम्बिका और कुलसेनी नामक नदियों के मध्य वेणु वन के बीच विष्णु विग्रहयुक्त सुन्दर और भव्य वासुदेव पुर नामक नगर बसाया। १६ ॥

भीम को अपनी हेमवती नामक राणी के गर्भ से चौलुक्य वंश रूपी वाराधि का आल्हादक चंद्र वीर उपनाम रामदेव नामक पुत्र हुआ। २० ॥

वीरदेव शौर्य में राम, धर्म में युधिष्ठिर, शत्रु नाश में कालान्तक यम और आश्रितों को आश्रम देने में भगवान शंकर के समान था २१ ॥

वीरदेवकी राणी सीता देवी परं पतिव्रता और संसार में इन्द्रकी स्त्री शची, विष्णुकी स्त्री रमा और शंकर की स्त्री पार्वती की समता को प्राप्त करने वाली थी। २२ ॥

वीरदेव उपनाम रामदेवको अपनी राणी सीतादेवी के गर्भ से चार पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ वसन्त देव रामके समान। २३ ॥

लक्ष्मण के समान दूसरा महादेव, भरत के समान तीसरा कृष्णदेव और शत्रुघ्न के समान चौथा कीर्ति देव हुआ। २४ ॥

अपने इन चार पुत्रों से घिरा हुआ-प्रजा से पूजा और ब्राह्मणों से आदर प्राप्त कर राम को उस संसार में ही स्वर्ग का सुख उपलब्ध था। २५ ॥

राम अपनी राज्यधानी में प्रजा-परिजन और स्वजनों को आनन्द देता हुआ-इन्द्र के

समान विराम करता था । २६ ॥

अचानक सल्तन उपस्थित हुआ । रामचन्द्र युद्ध में मारा गया । अरातियों ने सर्वस्व लूट लिया और ससार में अन्धकार छा गया । २७ ॥

रामचन्द्र के अभिषेक का सवाद पाकर जिस प्रकार भरत अथात अयोध्या निवासी आनन्दित और राम के वनवास की बात सुनकर मूर्छित हो गये थे । २८ ॥

उसी प्रकार चौलुक्य चन्द्र के संग्राम उपस्थित होने पर रामतपुर निवासीयोंकी दशा हुई थी । जब सकुल का समाधान हुआ तो रामदेव वासुदेवपुर में चले आये ॥ २९ ॥

वासुदेवपुर में आने के पश्चात रामदेव उपनाम वीरदेव ने अपनी प्रजा पुरजन तथा पुत्र और परिजनाको बुलाकर-कृष्णदेव को कार्मण्य और महत्व को समझा ॥ ३० ॥

और कीर्तिदेवको पार्थिव नामक विषय दिया । एव पात्रको राज्य सिंहासन पर बैठा विष्णु लोक को प्रयाण किया ॥ ३१ ॥

वीरदेव अपने दादा से राज्य प्राप्त कर प्रजा पालन में प्रवृत्त हुआ । वीरदेव के मनोरजनार्थ यह प्रशस्ति माला का निर्माण ॥ ३२ ॥

शङ्करानन्द के शिष्य बुद्धिमान कृष्णानन्द ने किया । चार-चालीस-चार दशमी में कथा १२४४ ॥ ३३ ॥

श्रावण शुक्ल द्वादशी के दिन साय काल में रचित विक्रम सवत की शुभ तिथि में पूर्ण किया-॥ ३४ ॥

# विवेचन

प्रस्तुत प्रशस्ति वसन्तामृत नामक ग्रंथ में लगी है। वसन्तामृत ग्रन्थ के कर्ता शकरानन्द भारती स्वामी के शिष्य कृष्णानन्द स्वामी है। वसंतामृत ग्रंथ श्रीमद्भागवत गीता का अनुवाद है। इस ग्रंथ के लिखे जाने की तिथि वैशाख कृष्ण शिवरात्री विक्रम संवत १४४४ है। और स्थान तापी नदी का वालाक क्षेत्रवर्ती शंकर महादेव मंदिर है। एवं प्रशस्ति की तिथि श्रावण शुक्ल द्वादशी संवत् १४४४ है।

वसन्तामृत ग्रंथ के उपलब्ध प्रति की तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी संवत १७६३ विक्रम है। इसका आकार लगभग एक बालिश्त चौड़ा और डेढ़ बालिश्त लम्बा है। इसकी पृष्ठ संख्या ३६१ है। प्रत्येक पृष्ठ में चारो तरफ दो अंगुल के करीब हांसिया छोड़ कर तीन लाईन बनाई गयी है। इन तीनों लाइनों में से एक पीली, दूसरी लाल और तीसरी नीली है। प्रथम २१ पृष्ठ तापी नदी के महात्म्य और प्रकाशा क्षेत्र की स्तुति में लगे है। दूसरे सात पृष्ठ गुरु की महिमा वर्णन करते है। पश्चात् तीन पृष्ठ शंकरानंद भारती के गुणगान और अलौकिक योग सिद्धियो के चित्रण में लगे है। इसी प्रकार अन्त के तीन प्रष्ठों में वासन्तपुर प्रशस्ति दो प्रष्ठ में विजयदेव का शासन, दो प्रष्ट में वीरदेव का शासन, और दो प्रष्ट में कर्णदेव के शासन को अभिगु ठन में लगे है। इस प्रकार पुस्तक के ४० प्रष्ट प्रस्तावना और प्रशस्ति, आदि में लगे हैं। पुस्तक की लिपि देवनागरी है। तापी, प्रकाशा, गुरुमहिमा और शकरानंद भारती के चरित्र की भाषा संस्कृत है। उसी प्रकार राज प्रशस्ति की भाषा संस्कृत है। पुस्तक की भाषा यद्यपि हिन्दी है परन्तु उसमें गुजराती और यत्रतत्र मराठी भाषाके शब्द पाये जाते हैं। पुस्तक के आदि और अन्त में लकड़ी की पट्टियां लगाई गई हैं। जो चंदन आदि से परिपूर्ण है। पुस्तक खरवा के वेस्टन में बधी है। वेस्टन की दशा भी पट्टिये के समान है। इससे प्रगट होता है कि पुस्तक की पूजा वंश परम्परा से होती आ रही है। पुस्तक से हमारा अधिक सम्बन्ध न होने से हम अब निम्न भाग में प्रशस्ति के विवेचन में प्रवृत्त होते हैं।

प्रस्तुत प्रशस्ति के श्लोकों की संख्या २४ है। प्रथम दो श्लोकों में मंगलपुरी का वर्णन है। तीसरे श्लोक में जयसिंह के पुत्र विजयसिंह का मंगलपुरी का प्रथम राजा होना और चौथे श्लोक के प्रथम चरण में उसका अपने राज्य में विजयपुर नामक ग्राम बसाने का उल्लेख है। चौथे श्लोक के दूसरे चरण में विजयसिंह के बाद धवल का राजा होना वर्णन किया गया है। पांचवें और छठे श्लोकों से धवल को अपनी रानी लीलादेवी के गर्भ से पांडवों के समान वसन्त कृष्ण, महादेव चाचिक और भीम नामक पांच पुत्रोंका होना प्रगट होता है। एवं इससे यह भी प्रगट होता है कि भीम परम-पितृ भक्त था सातवां श्लोक बताता है कि धवल के पश्चात् वसंत राजा हुआ और उसको अपनी रानी वाग्देवी के गर्भसे राम और लक्ष्मण नामक

को पुत्र हुए । आठवें श्लोक में प्रगट होता है कि रामदेव ने राजा होने के पश्चात वसन्तपुर नामक नगर बसाया। नववा श्लोक ज्ञात करता है कि रामदेव के बाद उसके भाई लक्ष्मण का पुत्र बड़ा ही प्रचण्ड योद्धा था। उसने शत्रुओं का नाश कर वसन्तपुर में निवास किया। दशवें श्लोक में अभिगुण्ठन किया गया है कि वीरदेव का अपनी रानी कमला देवी के गर्भ से मूलदेव और कृष्णदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। श्लोक ११ और १२ कृष्णदेव की दुष्टता प्रवृत्ति और राज्यलिप्सा आदि का वर्णन करने पश्चात उसे बन्धुघात द्वारा अपने पिता को दुःख देने वाला बताते हैं। १३ और १४ श्लोकों से प्रगट होता है कि पुत्र शोकसे सतप्त वीरदेव ने मन्त्रियों के मना करने पर भी कृष्णदेव को राज्य से निकाल बाहर किया और मूलदेव के पुत्र कर्णदेव को गद्दी पर बैठा अपने आप विरक्त हो जगल में चला गया। श्लोक १५ १६ और १७ से ज्ञात होता है कि कर्णदेव को अपनी राणी बकुलादेवी के गर्भ से सिद्धेश्वर, विशालदेव और धवलदेव नामक तीन पुत्र हुए। जो क्रमशः उसके बाद वसन्तपुर की गद्दी पर बैठे। श्लोक १८ का पूर्वार्ध ज्ञापन करता है कि धवल के बाद उसका पुत्र वासुदेव राजा हुआ और उत्तरार्ध बताता है कि वासुदेव का पुत्र भीम था। १९ में श्लोक से प्रगट होता है कि भीम ने कुलमती और अम्बिरा नदियों के मध्य वरुणकुञ्ज में विष्णु विग्रहमय वासुदेवपुर नामक नगर बसाया। २० वा श्लोक बताता है कि भीम का पुत्र वीर उपनाम राम हुआ। जो चौलुक्य वश का चन्द्र था। २१ वा श्लोक ज्ञापन करता है कि वीरदेव बलम रामक धर्म में युधिष्ठिर के समान, शत्रुओं के लिए यमराज के और आश्रितो के लिए शकर के समान था। २२ वा श्लोक उसकी राणी सीता को इन्द्र की पत्नी शची, शिवकी पार्वती और विष्णु की रमा के समान और परमपतिव्रता बताता है। २३-२४ श्लोक बताते हैं कि वीरदेव की सीता के गर्भ से वसन्तदेव, महादेव, कृष्णदेव और कीर्तिराज नामक चार पुत्र हुए। २५-२६ से प्रगट होता है कि रामदेव इन पुत्रों का पा, प्रजा से पूजित और ब्राह्मणों से आश्रित हो ससार में ही स्वर्ग सुख का अनुभव करता था। २७ से ज्ञात होता है कि अचानक उपद्रव उपस्थित हुआ जिसमें वसन्तदेव मारा गया, वसन्तपुर लूटा गया और समस्त राज्य में अन्धकार छा गया। २८-२९ से प्रगट होता है कि वसन्तदेव के मारे जाने और चौलुक्य राज्य के लूटे जाने से वसन्तपुर की प्रजा अत्यन्त दुःखी हुई थी। अब जब शत्रु का आतक मिट गया तो वीरदेव वासुदेव पुर में चला गया। श्लोक ३०-३१ से प्रगट होता है कि वीरदेव वासुदेवपुर में आने पश्चात स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र वसन्तदेवके पुत्र वीरदेव को गद्दी पर बैठा, अन्य पुत्रों को ... देकर स्वर्गवासी हुआ था। अत वीरदेव के पुत्र कृष्ण को कार्मणेय, महादेव को मधुपुर ... कीर्तिराज को पार्वत्य नामक विषय का मिलना प्रगट होता है। ३२ वा श्लोक प्रगट करता है कि वीरदेव अपने दादा वीरदेव से राज्य प्राप्त करने पश्चात प्रजापालन में प्रवृत्त हुआ। ... समय उसके मनोरंजनार्थ प्रशस्ति का निर्माण किया गया। श्लोक ३३ और ३४ ... का नाम कृष्णानन्द और इसकी तिथि श्रावण शुक्ल द्वादशी विक्रम सवत १५४४ बताते हैं

प्रशस्ति के पर्यालोचन से प्रगट होता है कि इसमें वसन्तपुर के चौलुक्य राजवंश की पुरावृत्त प्रारंभ से लेकर लेखक के समय पर्यन्त दिया गया है। प्रशस्ति के अनुसार वसन्तपुर की वंशावली निम्न प्रकार से होती है।

वंशावली पर दृष्टिपात करने से प्रगट होता है कि इसम वंश श्रेणी की संख्या १४ और गद्दी पर बैठने वाले राजाओं की संख्या १३ है। वंशावली के पर्यालोचन से प्रगट होता है कि राज्य संस्थापक विजयसिंह के पिता जयसिंह का वसन्तपुर राज्य से कुछ भी सम्बंध नही था। इसके अतिरिक्त छठ राजा के पिता मूलदेव और तेरहवें राजा वीरदेव चतुर्थ के पिता वसन्तदेव द्वितीय गद्दी पर नही बैठे। क्योंकि मूलदेव की मृत्यु इसके भाई कृष्णदेव के हाथ से और वसन्तदेव द्वितीय की मृत्यु युद्ध में किसी शत्रु के हाथ से हुई थी। अत वंशावली म राजाओं की संख्या ११ होनी चाहिए। किन्तु संख्या १३ है। इसका कारण यह है कि छठे राजा कर्णदेव की मृत्यु पश्चात् उसके तीनों पुत्रों ने राज्य किया और छोटे पुत्र धवलदेव से वंश तंतु का आगे विस्तार हुआ।

प्रशस्ति लिखे जाने की तिथि विक्रम सम्वत् १४४८ है। इधर कृष्णानंद की शिला प्रशस्तिका समय विक्रम संवत् १४२८ है। उक्त प्रशस्ति में भी वसन्तपुर की रानी से धन पाकर मन्दिर बनाने का स्पष्ट उल्लेख है। प्रस्तुत प्रशस्ति में अन्तिम राजा वीरदेव के दादा और दादी महाराज रामदेव और महारानी सीतादेव की भक्ति व प्रशंसा दृष्टिगोचर होती है। इससे प्रगट होता है कि प्रशस्तिकार को मन्दिर बनाने के लिये महाराज रामदेव की रानी सीतादेवी से धन मिला था और वे दोनों मंदिर की प्रशस्ति लिखे जाते समय वसन्तपुर सिंहासन पर आसीन थे। इधर प्रशस्ति में रामदेव को अपनी मृत्यु के पूर्व ही पुत्री को जागीर देने और पौत्र वीरदेव को गद्दी पर बैठाने का उल्लेख है। पर वीरदेव को गद्दी पर बैठाने के पश्चात् उसकी मृत्यु का होना प्रगट होता है। अत इससे प्रगट होता है कि या तो रामदेव अधिक रुग्ण था अथवा उसकी मृत्यु के पूर्व होने वाले युद्ध म वह लड़ता हुआ घोर रूप से आहत हुआ था। इन सब कारणों को लक्ष कर हम कह सकते हैं कि प्रशस्ति लिखे जाने और वीरदेव का राज्यारोहण समय होना एक है। और वह विक्रम संवत् १४४८ है।

प्रशस्ति में प्रशस्ति की तिथि के अतिरिक्त किसी भी राजा के राज्यारोहण आदि का समय नहीं दिया गया है। परन्तु राज्य संस्थापक विजय का शासन पत्र हमें विक्रम संवत् ११४६ का प्राप्त है। अत राज्य संस्थापना और प्रशस्ति की तिथि में ३०४ वर्ष का अन्तर है। अब यदि हम अन्तिम राजा वीरदेव को छोड़ दें, क्योंकि प्रशस्ति उसके राज्यारोहण वर्ष में लिखी गई थी तो राजाओं की संख्या केवल १२ ही रह जाती है। अत हम इनका समय ज्ञात करने के लिये ३०५ वर्ष को १२ में बांटना पड़ेगा परन्तु इन १२ राजाओं में तीन राजा सहोदर भाई हैं अत उनका औसत कम पड़ेगा तथापि हम बराबर औसत मानते हैं। उक्त समय ३०४ को १२ म विभक्त करने से प्रत्येक शासन करने वाले राजा के लिए २५ वर्ष ४ महीने उपलब्ध होता है। इस औसत काल की परीक्षा करने के लिए अनन्य साधन राज्य संस्थापक विजय और अन्तिम राजा वीरदेव के मध्यवर्ती पाचवें राजा वीरदेव प्रथम विक्रम संवत् १२३४ का और छठे राजा कर्णदेव का विक्रम संवत् १२७७ का शासन पत्र उप-

लब्ध है। वंश संस्थापक विजय और चौथे राजा रामदेव के पर्यन्त चार राजाओं का सामूहिक समय ८६ वर्ष है। और प्रत्येक के लिए औसत २२ वर्ष का पड़ता है। छठे राजा कर्णदेव और १२ वें राजा वीरदेव तृतीय के पर्यन्त सात राजाओं का सामुहिक समय १६८ वर्ष है। इसको सात राजाओं में बांटने से प्रत्येक का औसत राज्य काल २४ वर्ष प्राप्त होता है। हम ऊपर बता चुके हैं कि पांचवें राजा वीरसिंह का राज्य काल १२३४ से १२७६ पर्यन्त ४१ वर्ष है। अतः सम्भव है कि किसी अन्य राजा ने भी कुछ अधिक लम्बे काल पर्यंत राज किया हो। इस कारण प्राप्त औसत काल में किसी प्रकार की आपत्ति का समावेश नही।

प्रशस्ति कथित वंशावली और तद्भावी राजाओं के समयादि का विवेचन करने पश्चात हम अन्य बातों के विवेचन में प्रवृत्त होते हैं। प्रशस्ति कथित स्थानों का वर्तमान समय में कुछ परिचय मिलता है या नही, वीरदेव के पुत्र कृष्णराज का क्या हुआ और अन्तोगत्वा वसन्त पुर राज्य पर आक्रमण कर उसे लूटने वाला कौन था प्रभृति तीन विषय का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। अतएव हम निम्न भाग में इस विषय में यथा साध्य विचार करने का प्रयत्न करते है।

प्रशस्ति कथित स्थानों का अवस्थान आदि विचार करने के पूर्व कथित नगरों की संख्या आदि का ज्ञान प्राप्त करना असंगत न होगा। प्रशस्ति में सर्व प्रथम मंगलपुरी का उल्लेख है। मंगलपुरी के वर्णन में प्रशस्ति के दो श्लोक लगे है। उनसे प्रगट होता है कि दण्डकारण्य में दुर्ग और चक्रों से वेष्टित तथा अनेक देवमन्दिरों से युक्त इन्द्रपुरी के समान मंगलपुरी नामक नगरी थी। अनन्तर तीसरे श्लोक से ज्ञात होता है कि विजयसिंह उसमें चौलुक्य वंश का प्रथम राजा हुआ। इसके अतिरिक्त मंगलपुरी के सम्बन्ध में यही ज्ञात होता है कि वह दक्षिण पथ में थी। हमारी समझ में कथित विवरण से वास्तव में मंगलपुरी के अवस्थान का और उसके वर्तमान अस्तित्व का परिचय पाने का प्रयास पंगुके हिमालय अतिक्रमणके समान निरर्थक है। भारतीय पुराणादि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनु के पुत्र दण्ड के नामानुसार विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण भाग का नाम दण्डकारण्य पड़ा। पुनश्च पुराणों से प्रगट होता है कि नर्मदा नदी के दक्षिण का प्रदेश दक्षिणापथ कहलाता था। वाल्मीक रामायण से नर्मदा के दक्षिण वाले भूभाग का अर्थात नासिक के चतुर्दिक वर्ती प्रदेशका नाम दण्डकारण्य विदित होता है। परन्तु महाभारतमे दण्डकारण्यके बाद चोल-पांड्य आदि भूभागके अनन्तर दक्षिणापथका आरंभ प्रगट होता है। ऐसी दशा में प्रशस्ति कथित दक्षिणापथ दण्डकारण्य में अवस्थित मंगलपुरी का अवस्थान निश्चित करना अत्यन्त दुसाध्य है। परन्तु हमारे सौभाग्य से मंगलपुरी राज्य के संस्थापक केशरी विक्रम विजयसिंह देवका शासन पत्र संवत ११४६ विक्रमका मिल गया है। इस में मंगलपुरी के अवस्थान का परिज्ञापक आकाङ्क्ष्य सूत्र उपलब्ध है। उक्त शासन पत्र में विजय-पुर नामक स्थान का अवस्थान सह्याद्रिगिरि के उपत्यका में वर्णन किया गया है। सह्याद्रि पर्वत

विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण भाग का नाम दण्डकारण्य पड़ा। पुनश्च पुराणों से प्रगट होता है कि नर्मदा नदी के दक्षिण का प्रदेश "दक्षिणापथ" कहलाता था। वाल्मीकी रामायणसे भी नर्मदा के दक्षिण वाले भूभाग का अर्थात नासिक के चतुर्दिक वार्ती प्रदेश का नाम दण्डकारण्य विदित होता है। परन्तु महाभारत से दण्डकारण्य के बाद चौलपाड आदि भूभाग के अनन्तर दक्षिणापथ का प्रारभ प्रगट होता है। ऐसी दशा में प्रशस्ति कथित "दक्षिणापथ दण्डकारण्य में अवस्थित मगलपुरी का अवस्थान निश्चित करना अत्यन्त दुसाध्य है। परन्तु हमारे सौभाग्य से मगलपुरी राज्य सस्थापक केशरी विक्रम विजयसिह देव का शासन पत्र सवत ११४१ विक्रम का मिल गया है। इस में मगलपुरी के अवस्थान का परिज्ञापक आकस्त्र सूत्र उपलब्ध है। उक्त शासन पत्र में विजयपुर नामक स्थान का अवस्थान सह्याद्रिगिरी के उपत्यका में वर्णन किया गया है। सह्याद्रि पर्वत श्रेणी का प्रारभ तापी नदी के दक्षिण से लेकर मैसूर राज्य पर्यन्त चला गया है। यदि विजयपुर का विशेष परिचय तापी नदी के तट पर न बताया गया होता तो इस शासन पत्र से भी मगलपुरी के अवस्थान सबध में कुछ भी सहायता न मिलती। मगलपुरी का अवस्थान उक्त शासन पत्र के अनुसार उसके विवेचन में पूर्ण रूपेण विचार करने के पश्चात बडोदा राज्य के सोनगढ तालुक में तापी नदी से लगभग २५-३० मील दक्षिण और पूर्णा नदी के उद्गम स्थान से लगभग १४-१५ मील उत्तर म निश्चित कर चुके है और प्रशस्ति तथा शासन पत्र कथित मगलपुरी को वर्तमान मगलदेव नामक स्थान सिद्ध कर चुके है। अत यहा पर पुन विवेचन क्षेत्र में प्रवृत्त होना एव युक्तिओं तथा प्रमाणों का अवतरण देना अनावश्यक मान अपने पाठकों का ध्यान उक्त शासन पत्र के विवेचन प्रति आकृष्ट करते है।

मगलपुरीके अनन्तर प्रशस्ति मे दूसरे स्थान का नाम विजयपुर है। विजयपुर के सबध में कुछ भी विवरण नही पाया जाता। श्लोक चार के पूर्वार्ध से प्रगट होता है कि विजयसिंह ने अपने राज्य में विजयपुर नामक नगर बसाया था। हम पूर्व में विजयसिंह के शासन पत्र का उल्लेख करके बता चुके है कि मगलपुरी का अवस्थान निर्णायक विजयपुर है। अत विजयपुर का अवस्थान ज्ञापक अन्य प्रमाण प्राप्त करने के स्थान में उक्त शासन पत्र के विवेचन प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते है।

प्रशस्ति मे तीसरे स्थान का नाम वसन्तपुर है। इसका परिचय हम प्रशस्ति के श्लोक ६ मे मिलता है। उक्त श्लोक स प्रगट होता है कि रामदेव ने वसन्तपुर नामक सुन्दर नगर बसाया था। पुन प्रशस्ति के श्लोक ६ के उत्तरार्ध से प्रगट होता है कि वीरसिंह ने शत्रुओं का नाश कर वसन्तपुर को अपनी राज्यधानी बनाया। इसके अतिरिक्त प्रशस्ति मे वसन्तपुर का कुछ भी परिचय नही। मिलता हा वीरसिंह के विक्रम सवत १०३४ के शासन पत्र में वसन्तपुर का ज्ञापक चिन्ह है। उक्त शासन पत्र के विवेचन में हम सिद्ध कर चुके है कि वसन्तपुर पूर्णा नदी के

समीप वसा था और संप्रति वसन्तपुर का अवशेष अन्तापुर के रूपमें पाया जाता है। पाठकों से आग्रह है कि विशेष विवरणके लिए वीरसिंह के कथित शासन पत्र का विवेचन अवलोकन करे।

प्रशस्ति में चौथे स्थान वासुदेवपुर का उल्लेख है। श्लोक २० से प्रगट होता है कि भीम ने अम्बीका और कुलसनी नदियों के मध्य वेणुवन के बीच विष्णु मन्दिर से युक्त वासुदेवपुर नामक भव्य नगर वसाया था। श्लोक ३० के उत्तरार्ध से प्रगट होता है कि रामदेव ने वासुदेवपुर को अपनी राज्यधानी बनाया। इसके अतिरिक्त वासुदेवपुर के संबध में कुछ भी ज्ञान प्राप्त नही होता। अतः हमें विचारना है कि प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर कहां पर अवस्थित था और संप्रति उसका अस्तित्व है या नही।

प्रशस्ति के अतिरिक्त दुर्भाग्य से हमारे पास वासुदेवपुर का ज्ञापक अन्य साधन नहीं है। अत. हमें वासुदेवपुर के अवस्थान और वर्तमान अस्तित्व निर्णय करने मे केवल अनुमान और वाह्यप्रमाणो से काम लेना होगा। अम्बीका नदी संह्याद्रि पर्वत के मूल से पश्चिम उत्तर भावी डांग नामक भूभाग के पहाड़ों से प्रारंभ होती और प्रथम कुछ दूर लगभग १५-२० मील तक सीधे पश्चिम वह कर कुछ दूर उत्तराभिमुख वहती हैं। अनन्तर पश्चिमाभिमुख मार्ग का अवलम्बन कर वडोदा राज्य के व्यारा नामक तालुका में प्रवेश करती और पश्चिमोत्तर गामी होती है। एवं व्यारा तालुका का अतिक्रमण कर ब्रिटीश इलाके के सूरत जिला के चिखली तालुका में प्रवेश कर उसका अतिक्रमण करती है। वाद को वडोदा के गणदेवी तालुका में घुसती और कावेरी का जल लेकर खडी मे गिरती है। अम्बीका डांगसे निकने पश्चात् और व्यारा तालुका मे प्रवेश करने के पूर्व वांसदा राज्य में वहती है।

अम्बीका और कुलसनी के उदगम स्थान से लेकर समुद्र समागम पर्यन्त दोनों कुलों पर कोई भी ऐसा स्थान नही है जिसे हम प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवशेष कह सकें। हां अम्बीका जल प्लावित कुछ भूभाग पर वांसदा नामक चौलुक्योंका राज्य है। वांसदा की राज्यधानी का नाम भी वांसदा है। वांसदा और वासुदेवमें नाम साम्य पाया जाता है। वासुदेवका रूपान्तर वांसदा हो सकता है। यदि हम यहांपर वासुदेवके रुपान्तर वांसदाके परिवर्तन पर कुछ प्रकाश डाले तो असंगत न होगा क्योंकि पूर्व में प्राक्कथन पृष्ट ४६ में वांसदा राज्यवंश के परम्परानुसार उनके वासुदेवपुर वालो का वंशधर होनेकी संभावना प्रगट कर चुके हैं। एवं अपनी पुस्तक "लाटचे मराठी ऐतिहासिक लेख" के प्रस्तावना पृष्ट में अपनी पूर्व कथित संभावना को स्थान दे चुके हैं।

कथित परिवर्तन नीति के अनुसार वासुदेव का वांसदा निम्न प्रकार से हो सकता है। वासुदेव से वासदेव। वासदेव से वासदे। वासदे से वासदो। और वासदो से वासदा। वासदो

और वामदाका उर्दू लिपि में लिखने पर इतनास्म अन्तर होगा कि विना सूक्ष्म विचारके उक्त अन्तर परखा नहीं जा सकता। पुनश्च वासदाका वासदे नामसे अभिहित होनेका हमारे पास लगभग ३०० वर्ष का प्रमाण। सन १६७० के मराठी पत्र में वासदा का उल्लेख वासदे नाम से किया गया है। परतु वर्तमान वासदा नगर को प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवशेष होने के संबंध म अनेक बाधाएं विकराल रूप धारण कर सामने खडी है। प्रथम बाधा वासदा का अवस्थान है क्यों कि वासदा कावेरी नामक नदी के कुलमें बसा है। दूसरी बाधा वासदा की नवीनता। वर्तमान वासदा नगर के निर्माण का सूत्रपात सन् १७७४-७६ के मध्य महारावल वीरसिंह ने किया था। इसके विपरित प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का निर्माण आज से लगभग ५६६-६७ वर्ष पूर्व होना चाहिए क्यों कि इसके निर्माता भीमदेव का राज्यारोहण लगभग सवत १०६४ विक्रम में हुआ था।

वर्तमान वासदा नगर को प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवशेष या रूपान्तर होने के प्रतिकुल उद्भावित शङ्काद्वय के प्रतिहार में हम प्रवृत्त होते हे और प्रथम शका अर्थात वासदा की अर्वाचीनता सबधी आपत्ति का समाधान करते है। यह बात ठीक है कि वर्तमान वासदाका निमाण वासदा की परपरा के अनुसार लगभग १५६ वर्ष पूर्व हुआ था। इसका समर्थन मराठी ऐतिहासिक लेखोंसे भी होता है। परन्तु साथही वासदाकी परपरासे यह भी प्रगट होता है कि वासदाका निमाण वर्तमान वासदा नरेश श्रीमान् महाराजा श्रीइन्द्रसिहजी से २७ वी पुस्त पूर्व होने वाले वसन्त देव के पुत्र वीरमदेव ने किया था। एव वासदा वालों को दिल्ही के सुल्तान अलाउदीन खिलजी से मान प्राप्त हुआ था। पुनश्च वासदा की परम्परा से प्रगट होता है कि वर्तमान वासदा बसाये जाने के पूर्व वासदा की राज्यधानी नवा नगर में थी। उक्त स्थान वासदा से दो मील की दूरी पर है। जहा पर पुरातन नगरका अवशेष आज भी पुरातन वासदाका गौरव द्योतन करता है। एव मराठी लेखों से वासदा की राजधानी में गोमुख और कर्मेश्वर का होना सिद्ध है। ये दोनों स्थान वर्तमान वासदा म नहीं नवानगर में आज भी टूटी फूटी अवस्था में दृष्टिगोचर होते हे। अब यदि वासदा नगर बसाने वाले, २७ वी पुस्त में होने वाले, वीरमदेव का समय निकाला जाय तो वह कम से कम आज से ५२० वर्ष पूर्व होगा। वर्तमान महाराज इन्द्रसिंहजी का राज्यरोहण सन १६११ में हुआ था। अत हमें सन १६११ में से ५२० को घटाना न पडेगा। इस प्रकार वासदा का अस्तित्व ई स १३६१ तदनुसार सवत १४४८ विक्रम में चला जाता है।

इसके अतिरिक्त पारसिओंके इतिहास से वासदा या वासदो नामक राज्यका अस्तित्व-४०० वर्षके पुराणे लिखित ग्रथ के आधर पर विक्रम सवत १४८४ तदनुसार इस्वी १४२७ के पूर्व चला आता है। इससे भी सिद्ध होता है कि वर्तमान वासदा नगर कथित वासदा राज्य की राज्यधानी

न था। यद्यपि वांसदा की परंपरा और पारसिओं के इतिहास कथित वांसदा की प्राचीनता के मध्य ३६ वर्ष का अन्तर है तथापि हम वांसदा की परंपरा को प्रमाणिक मानते हैं क्योंकि पारसिओं के इतिहास में वांसदा नगर के निर्माण का समय नहीं वरण अस्तित्व के समय का उल्लेख हैं। क्योंकि हम देखते हैं कि पारसिओं के इतिहास में उनको वांसदा के राजा से आश्रय मिलने का उल्लेख है।

वांसदा राज्य की परंपरा और पारसिओं के इतिहास के आधार पर वांसदा राज्य और वांसदा नगर का अस्तित्व को संवत १४४८ के लगभग सिद्ध करनेके पश्चात हम प्रशस्ति कथित वांसुदेवपुर और वांसदा के अस्तित्व के अन्तर का विचार करते है। प्रशस्ति के वांसुदेवपुर का निर्माण काल लगभग संवत १३६४ विक्रम है। इस प्रकार दोनों में ७४ वर्ष का अन्तर पड़ता है। यहां पर हम वासदा के परंपरा कथित वंशावली के २० वर्ष औसत के अनुसार ग्राम वांसदा के अस्तित्व काल १४४८ को पटतर करते हैं। इसको पटतर करने का कारण यह है कि वसन्तपुर-वांसदेवपुर के राजाओं का औसत काल २२ वर्ष ५ महिना है। यही औसत तत्कालीन वातापि कल्यण के चौलुक्य, दक्षिण कोकण (करहाट और कोल्हापुर) उत्तर कोकण (स्थानक) के शिल्हार, लाट नंदिपुर के चौलुक्य और पाटण के सोलंकी आदि सभी राजवंशो का पाया जाता है। अतः वंशावली कथित २६ राजाओं के लिए यदि हम केवल २२ वर्ष का ही औसत देवे तो ५७२ वर्ष सामुहिक समय प्राप्त होगा। इस ५७२ वर्ष को वर्तमान वांसदा नरेश के राज्यारोहण समय १६११ में से घटाने पर इ. स. १३३६ तदनुसार संवत १३६६ विक्रम है। यह समय प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर के निर्माण कालसे पूर्णरूपेण मेल खाता है। अतः हम निःशंक हो कर कह सकते है कि वांसदा की अर्वाचीनता संबंधी आशंका का पूर्ण रुपेण समाधान हो चुका।

यद्यपि वांसदा की अर्वाचीनता संबधी आशंका का समाधान हो चुका तथापि वर्तमान वांसदा नगर में जब पुरातन वासदा के गौरव का द्योतन प्राचीन नगर के ध्वंशावशेषका पूर्ण अभाव होने के कारण वांसदा की अर्वाचीनतात्मक आशंका का परिहार का होना या न होना दोनों बराबर है। हमारे पाठकों को अवगत है कि हम पूर्व में बता चुके है कि वर्तमान वांसदा से लगभग दो मील की दूरी पर नवानगर स्थान में पुरातन नगर का अवशेष है। वहां पर पुरातन नगर के गौरव को द्योतन करने वाले अनेक मन्दिरों और प्रासादो का ध्वंश पाया जाता है। मन्दिरकी निर्माणकी कला और उसमें लगी हुई इंटोंसे स्पष्टतया प्रकट होता है कि उक्त नगर छ सात सौ वर्ष पूर्व अपने भव्य राज्य महलों और मन्दिरोसे आगन्तुको को चकित करता होगा। नवानगर के चारो तरफ नगर का अवशेष पाया जाता है। इतनाही नही नदी को बन्ध द्वारा रोक कर नगर को जल देने के लिये किये गये प्रबन्ध का आज भी नदी में अवशेष पाया जाता है।

अतः उक्त नगर को पुरातन वामन्त नगर मान लेनेसे सारी आपत्तियां अपने आप टल जाती हैं। परन्तु उक्त स्थान के साथ नवानगर विशेषण और विष्णु मन्दिर का अभाव प्रकट करता है कि उक्त स्थान प्रशस्ति कथित वासुदेवका रूपान्तर नहीं हो सकता। क्योंकि नवानगर विशेषण किसी दूसरे पुराणे नगर का अस्तित्व द्योतन करता है। और साथ ही उक्त स्थानमें विष्णु मन्दिर न होकर शिवमन्दिर आज भी उपस्थित पाया जाता है। किन्तु प्रशस्तिके वासुदेवपुरमें विष्णु मन्दिर का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसका समाधान यह है कि वासुदेव के समीप में किसी राजा ने उपनगर बसाया होगा जो नवानगर के नाम से विख्यात हुआ होगा। सम्भवतः उपनगर बसाने वाले राजा ने अपना निवास वहां पर बनाया हो। और उसके निवास के कारण नवानगर अधिक प्रसिद्धि प्राप्त किया हो। ऐसी दशा में नवा नगर के समीप ही किसी पुरातन नगर का भग्नशेष होना चाहिए। नवा नगर से कुछ दूरी पर कावेरी नदी के दूसरे तट पर आज भी मन्दिर और मकानों का अवशेष पाया जाता है। उक्त स्थान को १०० वर्णी की देहरी कहते हैं। इसके अतिरिक्त नवा नगर और वर्तमान वामन्त के मध्य में वासीयातलाव नामक गांव है। इन सब बातों को लक्ष कर नवा नगर वामन्त को ही प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवशेष मानते हैं।

इतना होते हुए भी हम न तो नवा नगर वासदा अथवा उसके समीप वर्ती वासीयातलाव को प्रशस्ति कथित वामन्त मान सकते हैं। क्यों कि जिस प्रकार वर्तमान वासदा कावेरी नदी के तटपर बसा है उसी प्रकार नवा नगर वासदा भी है। प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का परिचायक अम्बीका नदी वेणुकुञ्ज है। जिसका वासदा के साथ शशशृगवत् है। प्रशस्ति के श्लोक संख्या २० का और पूर्वार्ध "अम्बीका कुलमन्योरसुवेणुकुञ्जसमन्विते" है। इसवाक्यके उत्तरार्ध "सुवेणु कुञ्ज समन्विते" के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। परन्तु पूर्वार्थ 'अम्बीका कुल सन्यो' के सम्बन्ध में कुछ सदेह को स्थान मिलता है। क्योंकि उसमें से जबतक "अम्बीका कुल" और 'सन्यों' दोनों को भिन्न पद नहीं मानते तबतक 'अम्बीका नदीके तटपर' ऐसा अर्थ नहीं हो सकता। और ऐसा अर्थ करनेके लिये 'अम्बीकाकुल'को 'सन्यो' से विभाजित करते ही 'सन्यो' निरर्थक होजाता है। अतः हम 'अम्बीकाकुलमन्यो' को समासांत द्विवचन पद मानना होगा। इसे द्विवचनान्त पद माननेसे इसका अर्थ 'अम्बीका कलमनी' और इसको "सुवेण कुञ्ज समन्विते," के साथ मिलानेसे अर्थ होगा 'अम्बीका कुलमनी के सुन्दर वेणु कुञ्ज में' जिसका भावार्थ होगा कि अम्बीका और कुलसेनी नदियों के मध्य सुन्दर वेणु कुञ्ज में। अतः प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर अम्बीका के तटपर नहीं वरण अम्बीका और कुलमणी के मध्य वेणु कुञ्ज में बसा था। अतः हमें प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का यथार्थ परिचय पाने के लिये 'कुलमनी नदी का परिचय प्राप्त करना होगा। अम्बीकाके दोनों पार्श्वों पर बहने वाली नदियां भासरी कोस और ओलाण है इनमें भासरी और कोस अम्बीका के वाम पार्श्व और ओलाण दक्षिण पार्श्व में बहती हैं। इन तीनों नदियों में से कोई भी ऐसी नहीं जिसे हम 'कुलसनी'

का नाम वाचक कह सके" इन नदियों के वाद अम्बीका के दक्षिण पार्श्वमें पूर्णा और वाम पार्श्व में कावेरी हैं। न तो पूर्णा ही और न कावेरी ही 'कुलसनी'का रूपान्तर प्राप्त कर सकती है। ऐसी दशामें हमें कहना पड़ेगाकि 'कुलसेनी' इन नदियों मेसे किसीका भी नामांतर नही है। अतः हमें भौगोलिक अन्वेषण को छोड़ साहित्य समुद्र का द्वार खटखटाना होगा।

पाटण के चौलुक्यों के ऐतिहासिक जैनाचार्य मेरुतुंग अपनी पुस्तक प्रबंध चिंतामणि में लिखते हैं। कुमारपाल अपनी राज सभा में बैठा था। इतने में बहुतसे भिक्षुक उपस्थित हुए और कोकणपति मल्लिकार्जुनका उल्लेख 'राज पितामह' के 'नामसे करके उसका गुणगान प्रारंभ किया। मल्लिकार्जुन का विरुद्ध 'राज पितामह' सुनकर कुमारपाल की भृकुटी तन गई और उसने अपने सैनिकों के प्रति दृष्टिपात किया। उदयन मन्त्रीका पुत्र आम्रभट्टने, कुमारपालका अभिप्राय: जान हाथ जोड़ सामने आकर मल्किार्जुन का मान मर्दन करने की आज्ञा मागी। कुमारपाल ने आम्रभट्ट को एक बड़ी सेना के साथ मल्लिकार्जुन पर आक्रमण करने लिये भेजा। वह सेना के साथ पाटण से चलकर कलावीणी नदी के पास उपस्थित हुआ और बड़े कष्ट के साथ उसे पारकर दूसरे तट पर छावनी डाला। परन्तु मल्लिकार्जुन ने उसे मार भगाया। आम्रभट्ट पुनः सेना लेकर कोकण पर चढ़ा। इसवार उसने कलावेणी नदी में सेतु बनाकर समस्त सेना दूसरे तटपर उतारा और रणक्षेत्र में मल्लिकार्जुन को पराभूत किया।

उधृत अवतरण से प्रगट होता है कि मेरुतुगाम्चार्य की 'कलावीणी' कोकण और लाट की सीमा पर बहने वाली नदी थी। मेरुतुगाचार्य के इस कथानक को बम्बई गसेटियर वोल्युम १–पार्ट १ के पृष्ठ १८५ में निम्न प्रकार से दिया गया है।

Another of Kumarpal's recorded victories is over Mallikarjun said to be the king of Kokan, who, we know from published list of the North Konkan Silharas, flourished about A. D. 1160. The author of Prabandhchintamani says this war arose from the Bard of the king Mallikarjun speaking of him before king Kumarpal as Rajpitamah or Grand-father of Kings. Kumarpal annoyed at so arrogant a title looked around. Ambada, one of the sons of Udayan, divining the king's meaning, raised his folded hands to his forehead and expresed his readiness to fight Mallikarjun. The king sent with him an army which marched to the Konkan without haulting. At the crossing of the Kalvini* it was met and defeated by Mallikarjan.

मेरुतुगाचार्य के कथन का भावार्थ देने पश्चात गझेटीअर कार इस ग्रन्थ के पाद टीपनी में कालवेणी के सबध में निम्न प्रकार से लिखते हैं।

Foot Note -

This is the Kaveri River which flows through Chikhali and Bulsar The name in the text is very like Karbena the name of the same river in Nasik cave inscriptions (Bom Gaz XVI 571) Kalveni and Karbena being Sanskritised forms of the original Kaveri

प्रस्तुत पाद टीपनी में कल्वेणी का अभिन्नत्व सिद्ध करने के साथ ही एक तीसरा नाम करवेणा नासिक के लेखानुसार प्रगट करते हैं। यदि हम यहा पर नासिक शिला लेखका अवतरण देवें तो असगत न होगा। अत उक्त लेख के उपयुक्त अश का अवतरण देते हैं।

१—"सिद्ध राज्ञ क्षहरातस्य क्षत्रपस्य नहपानस्य जामा ॥ दीनीकपुत्रेण उषवदातेन त्रीगो शत सहस्रदेन नद्या वणासाया सुवर्ण दान तीर्थकरेण देवताभ्य ब्राह्मणेभ्यश्च षोडशग्रामदेन अनुवषम् ब्राह्मण शत सह भोजायित्रा"

२—"प्रभासे पुण्यतीर्थे ब्राह्मणेभ्य अष्टभार्या प्रदेन भरुकच्छे दशपुरे गोवर्धने सोपारगे च चतुशाला वसध प्रतिश्रये प्रदेन आराम तडाग उदपान करेण इबा पारदा दमण तापी करबेण दहनुका नावापुन्य तरकरेण एताया च नदिनाम् उभय तो तीर सभा

३—प्रपाकरेण पिंडित कावड गोवर्धने सुवण मुखे शोपारगे च रामतीर्थ चरक पर्षभ्य ग्रामे नान गोल द्वात्रीशत नालीगेर मुल सहस्र प्रदेन गोवर्धन त्रीरश्मिषु पर्वतेषु धर्मात्मना इद लेन कारित इमा च पोदिओ।

इस लेख के पर्यालोचन से प्रकट होता है कि क्षहरात-वंशी क्षत्रप नहपान के जामाता दिनिक पुत्र धर्मात्मा उषवदात्त-जिसने वर्णासा दी म घाट बनाकर सुवर्ण दान दिया था-प्रत्येक वर्ष एक लक्ष ब्राह्मणो को भोजन कराता था-प्रभास क्षेत्र में आठ ब्राह्मणो का विवाह कराया था-भृगुकच्छ में धर्मशाला बनवाया-दशपुर में बगीचा-गोवर्धन में तलाव-सुपार्ग में कुआ-इब-पारदा-दमण-तापी-करबणा और दाहनुका नादि नदिओ के ऊपर नावका पुल बना यात्रिओं को निःशुल्क नदी उतरने का मार्ग प्रदान किया। एव इन नदिओ के दोनों तटो पर धर्मशाला और

खैर चाहे जो हो इवा कावेरी और ताप्ती के मध्य में वहने वाली कोई नदी होनी चाहिए।

सूरत गभेटिअर के पर्यालोचन से प्रगट होता है कि तापी से दक्षिण में बहने वाली एक शिवा नामक नदी है। शिवा का रूपान्तर इवा अनायासही हो सकता है। इस रूपान्तर के लिए न तो परिवर्तन नीतिका आश्रय लेना पड़ता है और न खीच खाच तोड़ मरोड करना पडता है। संभव है कि प्रशस्ति लेखक के हस्त दोष से शिवा का सरकार छुट गया हो और उसके स्थान मे इवा वन गया। इस कारण हम निःशंक हो कह सकते हैं कि कर्तमान शिवा ही प्रशस्ति कथित इवा है। अब चाहे हम शिवा को इवा माने या पूर्णा को इवा माने या गभेटिअर के कथनानुसार अम्बिका को इवा माने हमारी न तो कोई हानी है और न हमें कुछ लाभ है। क्योंकि हमारा संवन्ध संप्रति शिवा और इवा से नही है। हमें तो करवेणी और कलवेणी—कलवेनी और करवेनी से अधिक प्रेम है और हम अपनी कलवेणी के मुस्ताक होने के कारण सारे झंझटोंको छोड कर आगे वढ़ते हैं।

प्रशस्ति की करवेण, मेरुतुगकी कलवेणी या करवेणी और गभेटिअर की कालवेणी का नामान्तर हमें कावेरी मानने में कणिका मात्र भी संदेह नही है। क्योंकि उत्तर कोकण और लाट को विभाजित करने वाली वर्तमान कावेरी पुरातन करवेणी या कलवेणी से अभिन्न है। वसन्तपुर राज प्रशस्ति कथित कुलसेनी या कलसेनी और नाशिक गुफा प्रशस्ति कथित करवेणी और मेरुतुन्ग तथा गेझेटिअर कथित कलवेणी में वहुत ही नाम साम्यता है। संभव है कि मेरुतुन्ग की प्रपन्ध चितामणि की प्रतिलिपि करने वालों के हस्त दोष से कुलसेनी वा कलसेनी का कलवेणी अथवा कलवीणी वन गया हो। या राज प्रशस्ति की लिपि करने वाले के हस्त दोष से कलवेणी का कुलसनी वन गया हो। चाहे जो हो प्रशस्ति की कुलसनी और मेरुतुन्ग की कलवीणी और गझेटिअर की कलवेणी अभिन्न है।

प्रशस्ति कथित कलसेनी को वर्तमान कावेरी का नामान्तर सिद्ध करनेके साथही प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवस्थान कावेरी और अम्बीका के मध्य वेणुकुन्ज के वीच अपने आप सिद्ध हो जाता है। वर्तमान वांसदा और नवानगर वांसदा से अम्बीका की दूरी लगभग ५ मील है। अब यदि नवानगर वांसदा से पुरातन वांसदा को लगभग मील देढ़ मील की दूरी पर मान लेवे और ऐसा मानना नदी के दोनों कुलों पर भग्न अवशेषों को दृष्टिकोण में रख का असंगत भी नहीं है' तो कहना पडेगा कि नगर के अन्तिमछोर से कुलसनी और अम्बिक दोनों की दूरी समान होगी। अतः प्रशस्ति कार का वासुदेवपुर को कथित दोनों नदियों के मध्य में अवस्थित लिखना पूर्ण रूपेण युवितजुक्त और तथ्यात्मक है। कथित विवरण को लक्षी-

कृत कर हम प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का रूपान्तर निःशंक हो कर नवानगर-वासदा को घोषित करते है।

वासदा को प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का रूपान्तर होने के सम्बन्ध में पूर्व उद्भावित आशंकाओं का आपाद्त मूलोच्छेद करने और वासुदेवपुर का अवस्थान वर्तमान वासदा नगर से दो मील पर अवस्थित नवानगर वासदा के समीप पुरातन नगर का अवस्थान सिद्ध करने के पश्चात प्रशस्ति कथित अन्यान्य स्थानों के अवस्थान आदि का विचार करते है। प्रशस्ति के श्लोक ३१ और ३२ के पूर्वार्ध में कर्मणेय मधुपुर और पार्नत्य नामक स्थानों का उल्लेख है। प्रशस्ति से प्रगट होता है कि कथित तीनो स्थान विषय अर्थात परगणा थे। उनमें से रामदेव ने अपने दूसरे पुत्र महादेव को मधुपुर तीसरे पुत्र कृष्ण को कार्मणेय और चौथे पुत्र कीर्तिराज को पार्नत्य दिया था। एवं ज्येष्ठ पुत्र वसन्तपुत्र के पुत्र वीरपुत्र को राज्य दिया था। इस प्रकार अपने राज्य का प्रबन्ध करने पश्चात वह स्वर्गवासी हुआ। एवं उसका स्वर्गवास वासुदेवपुर में हुआ था।

कथित तीनो विषयों में से कार्मणेय को हम तापी तटवर्ती वर्तमान कामरेज जो बड़ोदा राज्यके नवसारी मण्डलका एक तालुका और सुरतसे ११ मीलकी दूरी पर है मानते है। इस कामरेज का कार्मणेय नाम स वर्तमान प्रशस्ति से लगभग सातसौ वर्ष पूर्व भावी लाट नवसारिका के चौलुक्य राज जयसिंह धाराश्रय के पुत्र शिलादित्य के शासन पत्र में किया है। एवं पार्नत्य विषय का विचार हम पूर्वोधृत विजयसिंह के शासन पत्र के विवेचन में कर चुके है। और पार्नत्य को बरोदा राज्य के सोनगढ तालुका के पारघट नामक स्थान सिद्ध कर चुके है। अब रहा मधुपुर इसके बारे में हम यह मानते है कि यह वर्तमान महुआ नामक नगर का नामान्तर है। वर्तमान महुआ नगर के बीच जैनिओं का विघ्नेश्वर नामक मन्दिर है। उक्त मन्दिर में चार प्रशस्तियां मन्दिर के थामर की लकड़िओं में खुदी है। इन लेखों में महुआ का नाम मधुकरपुर लिखा गया है। मधुकरपुर का प्रयाग वाचक मधुपुर है। संस्कृत साहित्य के महारथी कविता में स्थान के अनुसार मधुकरपुर या मधुपुर का प्रयोग करते हुए पाये जाते है। पुनश्च मधुपपुर और मधुपुर दोनों का अर्थ एक है। इनका प्रयोग भी साधारणतया एकके स्थान में दूसरे का अर्थ अवबोधनार्थ किया जाता है।

प्रशस्ति कथित समस्त स्थान और नगरो का अवस्थानादि विवेचन करने के पश्चात हम वीरदेव के पुत्र कृष्ण देव का देश निकाला पश्चात क्या हुआ और वसन्तपुर अपहरण करने वाला कौन था इन दो शेषभूत विषयोंके विवेचन मे प्रवृत्त होते है। और इनमें से कृष्ण देवका क्या हुआ के विवेचन को सर्व प्रथम हस्तगत करते है।

प्रशस्ति के श्लोक १२–१३ मे कृष्णदेव के दूर्गुणों का विस्तार के साथ वर्णन है। एवं श्लोक १४ क पूर्वार्ध मे उसके वसन्तपुर से निकाले जाने का वर्णन किया गया है। पूर्व कथित १२—१३ मे यद्यपि उसके दूर्गुणों का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है परन्तु वसन्तपुर से निकाले जाने वाद वह कहां गया और उसका क्या हुआ कुछ भी नही प्रकट होता। हां सुरत जिला के चिखली तालुका की धोलधारा नदी के तट पर वारोलिया नामक ग्राम मे पुराणी शिला मूर्तियां है। उनके लेखों से प्रकट होता है कि मंगलपुरी के चौलुक्य वंश में कृष्णराज नामक कोई राजा हुआ था, उसके वंशज कृष्णराज द्वितीय संवत १३६१ और १३७३ विक्रम के मध्य मंगलपुरी में राज्य करता था। और उसका छोटाभाई धवलनगरी का शासक था। इन लेखों में कृष्णराज प्रथम से लेकर कृष्णराज द्वितीय पर्यन्त पांच नाम पाये जाते हैं। इन लेखों को हम पूर्व में उधृत कर चुके हैं। और उनके विवेचन में कृष्णराज प्रथम के समय तथा वसन्तपुर के साथ उसका कुछ सम्बन्ध था या नही इस प्रश्नका भी उत्थान करके समाधान किये है। परन्तु वसन्तपुर के साथ उसके सम्बन्धका व्यापक प्रमाणाभावके कारण इस प्रश्नको ज्योंका त्यों छोड़ केवल समय निर्धारण करके ही संतोष करना पड़ा था। परन्तु प्रस्तुत प्रशस्ति में वीरदेव के पुत्रों की संख्या दो वताई गई है। जिनमें प्रथम का नाम मूलदेव और दूसरे का नाम कृष्णदेव बताया गया है। कृष्ण अपनी उद्दण्डता और वधु द्रोह के कारण पिताका अप्रिय भाजन वन वसन्तपुर से निकाला गया था। मगलपुरी वाले कृष्ण प्रथम का समय कुम्भदेव के लेखों के विवेचन में संवत १२७१ सिद्ध कर चुके है। यह समय हमने अनुमान के सहारे किया था इधर प्रशस्ति कथित कृष्ण के पिता वीरदेव का समय विक्रम १२७६ सिद्ध होता है। ऐसी दशा में मगलपुरी वाले कृष्ण को वसन्तपुर के वीरदेव का पुत्र कृष्ण हम नही मान सकते। ऐसा यदि हम कहे तो असंगत न होगा। परन्तु ऐसा हम नही कह सकते। क्योंकि वीरदेव का समय १२३५ से १२७६ है। अतः संभव है कि वीरदेव ने अपने द्वितीय पुत्र कृष्ण को मंगलपुरी का शासक वनाया हो। और जब उसे वंधु द्रोह के कारण वीरदेव ने देशनिकाला का दण्ड दिया हो तो वह स्वयं अथवा उसका पुत्र मंगलपुरी को अधिकृत कर स्वतत्र वन गये हो।

अब यदि कृष्ण के वंशज और उसके सामयिक मूलदेवके वंशजो की वंशश्रेणी में कुछ समता पाई जाय तो हमारी यह सम्भावना सिद्ध हो सकती है। अतः हम दोनो वंशावली को निम्न भाग में समानान्तर पर उधृत करते हैं।

| वासन्त पुर वंशावली | मंगलपुर वंशावली |
|---|---|
| मूलदेव | कृष्णराज |
| । | । |
| कर्णदेव | उदयराज |
| । | । |

रुद्रदेव

| | | | |
|---|---|---|---|
| सिद्धेश्वर | विशाल | धवल | क्षेमराज |
| | | वासुदेव | |
| | | भीमदेव | कृष्णराज, कुम्भदेव |

वंशावली पर दृष्टिपात करने से साम्यता अपने आप प्रकट होती है। किन्तु समय में कुछ अन्तर पडता है। हमारी समझ में समय का अन्तर का परिहार अनयास ही हो सकता है। क्योंकि वसन्तपुरीकी गद्दी पर मूलदेव नही बैठा था। अत उसके पुत्र कर्ण और उसके भाई कृष्ण देवकी समकालीनता ठहरती है। पर कर्ण के तीनों पुत्रो ने राज्य किया था। अत उनको भी वंश श्रेणी में मानना होगा इस प्रकार मंगलपुर और वसन्तपुर के दोनों राजवंशो के राजाओं की समकालिनता निम्न प्रकार से होगी —

समकालिनता

| वासन्तपुर | मंगलपुरी |
|---|---|
| कर्णदेव १२७६–१२६८ | कृष्णराज १२७१–१२६३ |
| सिद्धेश्वर १२६८–१३०१ | उदयराज १२६३–१३१६ |
| विशाल १३०१–१३४३ | रुद्रदेव १३१६–१३३८ |
| धवल १३४३–१३६६ | क्षेमराज १३३८–१३६० |
| वासुदेव १३६७ | कृष्णराज १३६० |

हमारी इस प्रशस्ति की समकालीनता में किसी को शंका नहीं हो सकती क्योंकि इसमें बहुत ही थोडा समय का अन्तर पडता है। अब यदि उक्त अन्तर को दूर करने के लिये हम कृष्णराज का ७ वर्ष समय पूर्व से हटाकर और पीछे ले जावें और दोनों अर्थात कृष्णदेव और कर्णदेव दोनाको एक समय १२७६ में मान लेवें तो यह अन्तर अनायास ही मिट जाता है। इन बातों को लक्ष कर मंगलपुरीके कृष्णराज प्रथम को वसन्तपुर के वीरदेव का द्वितीय पुत्र और कर्णदेव का चाचा घोषित करते हैं। परन्तु इसके-कुम्भदेव के लेख में कृष्णराजकी वंशावली का प्रारंभ आडे पडता है। इसका समाधान यह है कि अन्यान्य राज्यवंशों का इतिहास ऊंचे स्वरम घोषित करता है कि भाई और पिता से विद्रोह करने वाले के वंशज पूर्व की वंशावली का उल्लेख नहीं करते। इसका प्रमाण आबू के परमारों के इतिहास में विशेष रूपसे पाया जाता है। और इसकी झलक अजमेर के चौहानों के इतिहास में भी पाई जाती है। मंगलपुरी के कृष्णराज को वसन्तपुर के वीरदेव का द्वितीय पुत्र सिद्ध करने पश्चात मंगलपुर—वसन्तपुरकी वंशावली निम्न प्रकार से होगी।

—:वंशावली:—

जयसिंह
|
(१) विजयसिंह
|
(२) धवलदेव

| (३) वसंतदेव | कृष्णदेव | महादेव | चाचिक | भीमदेव |

(३) वसंतदेव के पुत्र:

(४) रामदेव | लक्षमणदेव

लक्षमणदेव
|
(५) वीरदेव

(५) वीरदेव के पुत्र: मूलदेव | (१ कृष्णदेव

मूलदेव
|
(६) कर्णदेव

(६) कर्णदेव के पुत्र: (७) सिद्धेश्वर (८) विशल (९) धवल

(९) धवल
|
(१०) वासुदेव
|
(११) भीमदेव
|
(१२.) वीरदेव

(१२.) वीरदेव के पुत्र: वसन्तदेव | महादेव | कृष्णदेव | कीर्तिराज

वसन्तदेव
|
(१३) वीरदेव

(१ कृष्णदेव
|
(२) उदयराज
|
(३) रुद्रदेव
|
(४) क्षेमराज
|
(५) — कृष्ण | कुम्भ

हमारी ममम्क म प्रशस्ति का सांगोपांग विवेचन हो चुका। एव उसमे कथित सभी घटना पर पूर्ण रूपेण प्रकाश डाला जा चुका। हा यदि कोई बात रह गई है तो वह यह है कि वसन्तपुर का स्वातन्त्र्य अपहरण के साथ ही रसन्तदेव को मारने तथा वसन्त_र को लूटने वाला कौन था। इस विषय पर प्रकाश डालने वाला कोई भी साधन हमारे पास उपल न नही है। सभव है तत्कालिन मुसलमान इतिहास के विडोलन से कुछ प्रकाश पडे।
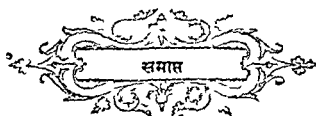
# चौलुक्य चंद्रिका के अन्यान्य खण्डों में क्या है

**ऐजन्त वातापिः—** इस खण्डमें चौलुक्य चक्रवर्ती पुलकेशी तथा उसके पूर्वज एवं वंशजोंके विक्रम संवत ६६ से लेकर ७३५ पर्यन्त शासनपत्रों का संग्रह है। इन शासनपत्रोंका अनुवाद और वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। विवेचन में तत्कालीन अन्यान्य राज्यवंशो के सामयिक लेखोंका आश्रय ले प्रत्येक लेख की यथार्थता प्रभृति सिद्ध की गई है। प्रसगवश पाश्चात्य विद्वानों और उनके अनुयायी भारतीयोंकी समीक्षा पूर्णरूपेण की गई है।

**वातापी-कल्याणः—** इस खण्ड में एजन्त वातापीके अन्तिम राजा कीर्तिवर्म्माके हाथसे राज्य लक्ष्मीका अपहरण राष्ट्रकूटों द्वारा होनेके पश्चात उसके भ्रतृपुत्रके वंशजोंने किस प्रकार लगभग १५० वर्ष पर्यन्त चौलुय राज्यचिन्ह की रक्षा करते हुए युद्ध किया था और अन्तमे विजयी हो वातापीको हस्तगत कर राज्यलक्ष्मीका उद्धार किया था। एवं वातापी छोड़ कल्याण को राजधानी बना वातापी कल्याणके चौलुक्य कहलाने वाले चौलुक्यों के वंशमें विक्रम ७३५ पश्चात १२०० पर्यन्त होनेवाले राजाओंके शासनपत्रोंका संग्रह, अनुवाद तथा विवेचन किया गया है।

**बेंगी-चोलः—** इस खण्ड में एजन्त-वातापीके भारत चक्रवर्ती चौलुक्य राज पुलकेशीके भ्रातृवंसज लगभग ३० पीढ़ी विक्रम् ५ से १४ पर्यन्त राज्य करनेवाले राजाओं के, शासनपत्रों का संग्रह, अनुवाद तथा विवेचन है। ये सब चोल को अधिकृत कर अपने राज्यमे मिला लिए तबसे बेंगीचोलके चौलुक्य नामसे प्रख्यात हुए। एवं पच द्राविड इनके अधिकार मे होने के कारण इनका चौलुक्यसे सोलुक पड़ा और संभवतः इनके वंशज जब गुजरात मे गए तो अपने साथ चौलुक्यके स्थान में सोलुकको लेते गये, जो कलान्तर में सोलंकी बन गया।

**आनर्त पाटण-धोलकाके चौलुक्यः—** आनर्त (गुजरात) पाटनके चापोत्कट राजवंशका उत्पाटन कर मूलराजने चौलुक्य वंशके राज्यका सूत्रपात किया था। इस वंशने विक्रम संवत १०१८ से १२९८ पर्यन्त गुजरात वसुन्धराका भोग किया। इस अवधिमें इस वंशके दस राजाओंने शासन किया था। इस वंशमें सिद्धराज जयसिंह नामक राजा बड़ाही प्रसिद्ध हुआ है। उसका नाम गुजरात के आबाल वृद्ध की जिह्वा पर अंकित है उसका नाम प्रत्येक गुजराती साभिमान लेता है। इस वंश का अन्तिम राजा भीम द्वीतीय था। इसके हाथ से धोलकाके बघेलों ने राज्यलक्ष्मी का अपहरण किया। बघेलो का मूल पुरुष अर्णोराज का पाटण के चौलुक्यों के साथ स्त्रीपक्षीय कुछ सम्बन्ध था। अर्णोराजव्याघ्र पाली नामक स्थान में रहता था। क्रमश इसके वंशज पाटण के चौलुक्यों के राज्य मे सर्वेसर्वा बन गए थे। इस वंश का शासनकाल १२९९ से १३६० पर्यन्त ६१ साल है। इसी वंश के चार राजाओ ने इस अवधि में शासन किया था। प्रथम राजा वीरधवल और अन्तिम कर्णवेला हैं। इन्हीं दोनो वंश के विक्रम संवत् १०१७ से लकर १३६० पर्यन्त ३४० वर्ष कालीन प्रायः प्रत्येक राजाओं के शासन पत्रों और प्रशस्तियों का संग्रह और विवेचन है।